Directorate of Distance Education

UNIVERSITY OF JAMMU
JAMMU

SELF LEARNING MATERIAL

B.A. SEMESTER-I

Subject : Sanskrit	**UNIT - I-V**
Course No. : SA-101	**Lesson No. 1-24**

Dr. Stanzin Shakya

http://www.distanceeducationju.in

Printed and Published on behalf of the Directorate of Distance Education, University of Jammu, Jammu by the Director, DDE, University of Jammu, Jammu.

B.A. IST SEMESTER (SANSKRIT)

COURSE CONTRIBUTORS :

- **Dr. Rajesh Sharma**
  Asstt. Prof. of Sanskrit,
  Govt. M.A.M. College, Jammu.

- **Dr. Mohinder Nath Sharma**
  Asstt. Prof. of Sanskrit,
  Govt. Degree College, Kathua.

- **Dr. Sandhya Sharma**
  Asstt. Prof. of Sanskrit,
  Govt. Degree College, Samba.

PROOF READING & COMPILATION BY:

- **Dr. Rajesh Sharma**
  Asstt. Prof. of Sanskrit,
  Govt. M.A.M. College, Jammu.

© Directorate of Distance Education, University of Jammu, 2020.

- All rights reserved. No part of this work may be reproduced in any form, by mimeograph or any other means, without permission in writing from the DDE, University of Jammu.
- The script writer shall be responsible for the lesson/script submitted to the DDE and any plagiarism shall be his/her entire responsibility.

Printed By : BMS Printing Press/ 2019 /

UNIVERSITY OF JAMMU
SYLLABI FOR B.A. IST SEMESTER
(SANSKRIT)

''कथा साहित्य एवं व्याकरण''　　　　　　　　　　　　　　　　　　अंक – 80

उद्देश्य – उपदेशप्रद नीतिकथाओं के माध्यम से छात्रों में संस्कृत के प्रति अभिरुचि जाग्रत करना तथा उन्हें संस्कृत व्याकरण का ज्ञान देना।

पाठ्यक्रम

प्रथम खण्ड – पञ्चतन्त्रम (अपरीक्षित कारक नामक पञ्चम तन्त्र) 7½X2=15 अंक
(अनुवाद एवं व्याख्या)

क्षपणक – कथा, (आमुख) से रासभ–शृगाल कथा पर्यन्त

(चार में से किन्ही दो पद्यों अथवा गद्यों का
अनुवाद एवं व्याख्या)

द्वितीय खण्ड– पञ्चतन्त्रम (अपरीक्षित कारक नामक पञ्चम तन्त्र) 7½X2=15 अंक
(अनुवाद एवं व्याख्या)

मन्थरकौलिक कथा से ब्राह्मण–कर्कटक कथा तक

(चार में से किन्ही दो पद्यों अथवा गद्यों का
अनुवाद एवं व्याख्या)

तृतीय खण्ड – (भाग–क) पञ्चतन्त्र सम्बन्धी प्रश्न　　　　　　　　10 अंक

i) पञ्चतन्त्र के लेखक का परिचय ।

ii) नीतिकथाओं में पञ्चतन्त्र का स्थान ।

iii) अपरीक्षितकारक नामक पञ्चम तन्त्र में वर्णित कथाओं से प्राप्त होने वाली शिक्षाओं का विवरण ।

iv) पञ्चम तन्त्र में वर्णित कथाओं का सार

(भाग–ख) हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद 5 अंक

(छोटे–छोटे पाँच वाक्य)

चतुर्थ खण्ड – (भाग–क) निम्नलिखित शब्दों के रूप पूछे जाएं 5 अंक

अजन्त शब्द – राम, हरि, गुरू, पितृ (पुल्लिंग)

फल, हरि, मधु (नपुंसकलिंग)

लता, मति, नदी, धेनु, मातृ (स्त्रीलिंग)

हलन्त शब्द – राजन्, भवत्, विद्वस्, सरित्, मनस्

सर्वनाम शब्द– सर्वम्, तद् शब्द, (तीनो लिंगों में)
अस्मद्, युष्मद् शब्द ।

(भाग–ख) निम्नलिखित धातुओं के रूप पूछे जाएं – 5 अंक

लट्, लोट्, लृट, लङ् और विधिलिंग (पाँच लकारों में)

स्वादिगण	–	भू, पठ्, गम्, स्था ।
अदादिगण	–	अद्, हन् ।
दिवादिगण	–	दिव्, नृत् ।
क्रियादिगण	–	चुर, कथ, भक्ष् ।
जुहोत्यादिगण	–	दा, धा ।

(भाग–ग) लघुसिद्धान्त कौमुदी से संज्ञा प्रकरण, सूत्र संख्या 1–14 तक । — 5 अंक

पञ्चम खण्ड –(भाग–क) संधि – स्वर, व्यञ्जन एवं विसर्ग । — 10 अंक

(भाग–ख) वस्तुनिष्ठ प्रश्न **(Objective type questions)** — 10 अंक

(Books Recommended) -

1. पञ्चतन्त्रम – चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी ।
2. पञ्चतन्त्रम – व्याख्याकार–डॉ. श्री कृष्णमणि त्रिपाठी । (अपरीक्षितकारक नामक पञ्चम तन्त्र) प्रकाशक – सुरभारती प्रकाशन ।
3. सुबोध संस्कृत व्याकरण – डॉ. यशवन्त, प्रकाशक – नंदलाल दयाराम, दिल्ली ।
4. अनुवाद चंद्रिका – डॉ. चक्रधर नौटियाल ।
5. लघु सिद्धान्त कौमदी ।

✠✠✠✠✠✠✠

CONTENT

Lesson No.	Title	Script Writer	Page No.
Lesson 1	क्षपणक–कथा	Dr. Rajesh Sharma	3
Lesson 2	क्षपणक–कथा	Dr. Rajesh Sharma	12
Lesson 3	ब्राह्मणी–नकूल कथा	Dr. Rajesh Sharma	22
Lesson 4	लोभाविष्टचक्रधर–कथा	Dr. Rajesh Sharma	29
Lesson 5	सिंहकारकमुर्खब्राह्मण–कथा	Dr. Rajesh Sharma	44
Lesson 6	मत्स्यमण्डूक–कथा	Dr. Rajesh Sharma	56
Lesson 7		Dr. Mohinder Nath Sharma	71
Lesson 8		Dr. Mohinder Nath Sharma	85
Lesson 9		Dr. Mohinder Nath Sharma	107
Lesson 10		Dr. Mohinder Nath Sharma	122
Lesson 11		Dr. Mohinder Nath Sharma	133
Lesson 12	भाग क	Dr. Mohinder Nath Sharma	140
Lesson 13	संस्कृत में अनुवाद की सामान्य विशेषताएँ एवँ नियम		157
Lesson 14	कारक का संस्कृत वाक्य रचना में महत्त्व		179
Lesson 15	पुल्लिग, नपुंसकलिंग, स्त्रीलिंग शब्दों की रूपावली		203
Lesson 16	हलन्त और सर्वनाम शब्दों		220
Lesson 17	धातुओं के रूप (भाग–ख)		236
Lesson 18	चतुर्थ खण्ड (भाग–ख)		255
Lesson 19	लघुसिद्धान्त कौमुदी (भाग–ग)		276
Lesson 20	लघुसिद्धान्त कौमुदी (भाग–ग)		283
Lesson 21	लघुसिद्धान्त कौमुदी (भाग–ग)		290
Lesson 22	सन्धि (भाग–क)		299
Lesson 23	बहुविकल्पीय प्रश्न (भाग–ख)	Dr. Rajesh Sharma	333
Lesson 24	बहुविकल्पीय प्रश्न (भाग–ख) संस्कृत–व्याकरण	Dr. Rajesh Sharma	346

Dr. Rajesh Sharma
Asstt. Prof. of Sanskrit
Govt. M.A.M. College, Jammu

(पाठ संख्या १ से ६ तक)

पाठशीर्षक :–

जम्मू विश्वविद्यालय Directorate of Distance Education द्वारा B.A.-Ist Sem पत्र संस्कृत के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम से सम्बद्ध 'प्रथम खण्ड' (Unit-I)

रूपरेखा :–

- उद्देश्य
- पाठ परिचय
- मूलपाठ (गद्य भाग)
- श्लोक (पद्य)
- सप्रसंग
- शब्दार्थ
- अनुवाद
- व्याख्या
- अभ्यास कार्य

उद्देश्य :–

1) छात्रों का कथा साहित्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना।

2) कथारूप में नीति के रहस्यों को समझाना।

3) इनमें मानव मात्र न होकर जीव जन्तु या पशु–पक्षी पात्र है इसका ज्ञान करवाना।

4) छात्रों को कथाओं के माध्यम से जीवन के व्यावहारिक पक्ष का ज्ञान करवाना।

5) छात्रों को दैनिक जीवन, दैनिक व्यवहार, व्यक्ति और समाज का सम्पर्क कर्त्तव्याकर्त्तव्योपदेश आदि से सम्बन्धित वास्तविक तथ्यों से परिचित करवाना।

6) विद्यार्थियों को छोटी–छोटी कथाओं के माध्यम से नीति, धर्म, कर्म आदि की शिक्षा देना।

7) बिना जाँचे परखे, बिना देखे, जिसका भली–भान्ति ज्ञान न हो उस कार्य को न करें इसका ज्ञान करवाना।

8) छात्र–छात्राओं को प्राचीन कथा ग्रन्थ पञ्चतन्त्र की छोटी–छोटी ज्ञानवर्धक कथाओं से परिचित करवाना।

9) नीति कथाओं के पात्र पशु–पक्षी आदि मनुष्यों की तुल्य मित्रता, प्रेम, विवाद, लोभ, छल, विश्वासघात, सन्धि, विग्रह आदि करते है और उनके भी राजा, मन्त्री, दूत आदि होते हैं इनसे विद्यार्थियों को अवगत करवाना।

10) छात्रों में संस्कृत भाषा एवं कल्पना शक्ति का विकास करना।

<u>पाठ परिचय :</u>

पाठ संख्या 1 से 6 तक विष्णुशर्मा विरचित अपरिक्षितकारक नामक पञ्चमतन्त्रम् के ''पञ्चतन्त्र'' ग्रन्थ से लिये गये हैं। इन पाठों में क्षपणक कथा से रासभ–श्रृगाल कथा तक की गद्यों एवं पद्यों का सप्रसंग, शब्दार्थ, हिन्दी अनुवाद एवं व्याख्या को सरल एवं सरस बनाकर प्रस्तुत किया गया है।

(1) क्षपणक–कथा

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

अथेदरमारभ्यते श्रीविष्णुशर्मविरचितं ''अपरीक्षितकारकं'' नाम 'पञ्चतन्त्रस्य' पञ्चंतन्त्रं, यस्याऽय–

मादिमः श्लोक :–

शब्दार्थ :– अथ = अब, आरभ्यते = आरम्भ किया जा रहा हैं, विष्णुशर्मविरचितं = विष्णु शर्मा द्वारा रचित, अपरीक्षितकारकम् = अपरीक्षित कारक, नाम् = नामक, 'पञ्चम् = पाँचवाँ, तन्त्रम = तन्त्र, तस्य = उसका, अयम् = यह, आदिमः = प्रथम, श्लोकः = श्लोक।

अनुवाद :– लब्धप्रणाश नामक चतुर्थ तन्त्र के पश्चात् विष्णुशर्मा ने महिलारोप्य नामक राज्य के राजा अमरशक्ति के तीन राजपुत्रो से कहा कि अब मेरे द्वारा यह अपरीक्षितकारक नामक पञ्चमतन्त्रम् आरम्भ किया जा रहा है जिसका प्रथम श्लोक इस प्रकार हैः–

श्लोक :– **कुदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीतिक्षतम्।**

तन्नरेण न कर्तव्यं नापितेनाऽत्रयत्कृतम्।। 1।।

शब्दार्थ :– अत्र= इस, नापितेन = नाई द्वारा, कुदृष्टम् = बिना देखे, कुपरिज्ञातम् = बिना समझे, कुश्रुतम् = बिना सुने, कुपरीक्षितम् = बिना जाँचे, यत् = जो, कृतम् = किया गया, तत् = वैसा, नरेण न कर्त्तव्यम् = व्यक्ति को नहीं करना चाहिए।

सप्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक (पद्य) अपरीक्षितकारक नामक पञ्चमतन्त्रम् के 'पञ्चतन्त्र' नामक ग्रन्थ की क्षपणक–कथा से लिया गया है। इसके रचयिता श्री विष्णुशर्मा जी हैं। जिन्होंने इस श्लोक के माध्यम से व्यक्ति को अपने जीवन में हमेशा किसी भी कार्य को

भली प्रकार सोच–समझकर कार्य करने की प्रेरणा दी है।

अनुवाद :– इस लोक मे नाई ने भली प्रकार देखे बिना, अच्छी तरह बिना जाने, बिना सुने तथा भली प्रकार परीक्षा किए बिना जिस प्रकार का कार्य किया था वैसा कार्य कभी भी किसी मनुष्य को नहीं करना चाहिए।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से भली प्रकार सोच–समझकर कार्य करने की प्रेरणा दी गई है कि जिस प्रकार क्षपणक कथा में नाई ने मणिभद्र सेठ के यहाँ ठीक प्रकार देखे बिना, भली प्रकार परीक्षा किए बिना, अच्छी तरह सुने बिना, ठीक प्रकार से जाने बिना लोभ के वशीभूत होकर निन्दनीय कार्य किया था वैसा कार्य कभी भी किसी व्यक्ति को नहीं करना चाहिए।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

तद्यथाऽनुश्रूयते–अस्ति दाक्षिणात्ये जनपदे पाटलिपुत्रं नाम नगरम्। तत्र मणिभद्रो नाम श्रेष्ठी प्रतिवसति स्म। तस्य च धर्मार्थकाममोक्षकर्माणि कुर्वतो विधिवशाद्धनक्षयः सञ्जातः। ततो विभवक्षयादपमानपरम्परया परं विषादं गतः। अथाऽन्यदा रात्रौ सुप्तश्चिन्तितवान् "अहो, धिगियं दरिद्रता"। उक्तञ्च्

सप्रसंगः– प्रस्तुत गद्य महाकवि विष्णुशर्मा विरचित अपरीक्षितकारकम् नामक पञ्चम्तन्त्रम् के "पञ्चतन्त्र" नामक ग्रन्थ की 'क्षपणक कथा' से उद्धृत् है। जिसमे दक्षिण राज्य के पाटलिपुत्र नगर के मणिभद्र नामक सेठ की कथा का वर्णन किया गया है।

अनुवाद :– जैसा सुना जाता है कि –दक्षिण–प्रदेश में 'पाटलिपुत्र' नामक एक नगर है। जहाँ पर मणिभद्र नाम का एक सेठ निवास करता था। उस सेठ ने धर्म–अर्थ–काम एवं मोक्ष विषयक कार्यों को करते हुए भाग्यवश अपना धन देवयोग से गँवा बैठा, तत्पश्चात् धन के खो जाने पर निरन्तर अपमानित एवं अत्यन्त दुःखी होकर किसी रात सोते समय उसने विचार किया कि 'अहो' इस दरिद्रता को धिक्कार है। किसी ने सच ही कहा हैः–

श्लोक :– **शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्षिण्यं मधुरता कुले जन्म।**

न विराजन्ति हि सर्वे, वित्तविहीनस्य पुरुषस्य।। 2।।

शब्दार्थ :– शीलम् = सुन्दर चरित, शौचम् = पवित्रता, क्षान्ति = क्षमा, दाक्षिण्यम् = उदारता, मधुरता = मधुरता, कुलेजन्म = कुल में जन्म, हि = निश्चय हो, पुरूषस्य = पुरूष की, विराजन्ति = शोभा बढ़ाते हैं, न = नहीं।

अनुवाद :– श्रेष्ठ आचरण, दया, उत्तम स्वभाव, पवित्रता, क्षमा एवं उत्तम कुल में जन्म होना ये सभी गुण दरिद्र (निर्धन) पुरुष में विराजमान होने पर भी उसकी कीर्ति बढ़ाने में सक्षम नहीं हैं।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में धन को सर्वश्रेष्ठ बताते हुए कहा है कि यदि व्यक्ति के पास धन नहीं है तो वे जीवन में कितना भी सदाचारी, पवित्रतापूर्ण आचरण करने वाला, क्षमावान, उदारतापूर्वक, मधुरता के साथ व्यवहार करने वाला और उच्चकुल में उत्पन्न क्यों हो उसका कोई (महत्व) अस्तित्व नहीं है क्योंकि आज के जीवन में गुणों का होना व्यक्ति के लिए इतना आवश्यक नहीं है जितना कि उसका धनवान् होना।

श्लोक :– मनो वा दर्पो वा विज्ञानं विभ्रमः सुबुद्धिर्वा।

सर्वं प्रणश्यति समं, वित्तविहीनो यदा पुरुषः।। 3।।

शब्दार्थ :– पुरुष : = व्यक्ति, यदा = जब, वित्तच्युत : धन हीन, (भवति = हो जाता है, तदैव उसी समय, तस्य = उसका), मानः = सम्मान, वा = अथवा, दर्प : = गर्व, स्वाभिमान, वा = अथवा, विज्ञानम् = विशेष ज्ञान, वा = और, सुबुद्धि = सुबुद्धि, सर्वम् = यह सब, समम् = एक साथ, प्रणश्यति = समाप्त हो जाते हैं।।

अनुवाद :– मान, सम्मान, दर्प, विषिष्ट ज्ञान (अनेकों काम चेष्टाएं एवं उत्तम बुद्धि) ये सभी गुण निर्धन पुरुष के धन के नष्ट होने पर उसी के साथ समाप्त हो जाते हैं।।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में धन की महत्ता प्रतिपादित की गई है कि जब व्यक्ति किसी कारण वश धन विहीन हो जाता है तो लोग उस धनहीन व्यक्ति का सम्मान करना भी बन्द कर देते है। इसके अतिरिक्त निर्धन व्यक्ति के पास कितना भी श्रेष्ठ बुद्धि क्यों न हो, उस समय उसकी वह बुद्धि भी व्यर्थ हो जाती है।

श्लोक :– प्रतिदिवसं याति लयं वसन्तवाताहतेव शिशिरश्रीः।

बुद्धिर्बुद्धिमतामपि कुटुम्बभरचिन्तया सततम्।। 4।।

शब्दार्थ :– बुद्धिमताम् = बुद्धि वालों की, अपि = भी, बुद्धिः = बुद्धि, कुटुम्बभरचिन्तया = बाल–बच्चों के भरण–पोषण की चिन्ता से, वसन्तवाताहता = वसन्तकालीन वायु से आहत, शिशिरश्रीः = शिशिर ऋतु की सुन्दरता इव = की भाँति, प्रतिदिवसम् = दिनों दिन, लयम् = क्षीणता को, याति = प्राप्त होती जाती है।।

अनुवाद :– अपने जनों (परिवार) के भरण–पोषण की चिन्ता के कारण अतिबुद्धिमान लोगों की बुद्धि भी निरन्तर उसी प्रकार नष्ट हो जाती है जिस प्रकार वसन्त की हवा चलने पर शिशिर काल समाप्त हो जाता है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि जिस प्रकार शिशिर ऋतु के पश्चात् वसन्त ऋतु आती है तथा वसन्त ऋतु में अत्यन्त तीव्र वायु चलती है जो सभी वनस्पतियों के पत्तों को गिरा देती हैं उसी प्रकार अपने परिवार का पेट पालने की चिन्ता में लगे हुए बुद्धिमान व्यक्ति की बुद्धि भी नष्ट हो जाती है।

श्लोक :– नश्यति विपुलमतेरपि बुद्धिःपुरुषस्य मन्दविभवस्य।

घृतलवणतैलतण्डुलवस्त्रेन्धनचिन्तया सततम्।।5।।

शब्दार्थ :– विपुलमतेः = भारी बुद्धि वाले, मन्दविभवस्य = धनहीन, पुरुषस्य = व्यक्ति की, बुद्धिः बुद्धि (अपि = भी) सततम् = सदैव, धृत–लवण–तैल–तुण्डुल–वस्त्रेन्ध न – चिन्तया = घी, नमक, तेल, चावल, वस्त्र तथा ईंधन की चिन्ता से, नश्यति = समाप्त हो जाती है।

अनुवाद :– गरीबी (दरिद्रता) के कारण बड़े–बड़े विद्वानों की बुद्धि भी अपने कुटुम्ब पोषण के लिये घी, तेल, नमक, चावल, वस्त्र तथा ईंधन आदि वस्तुओं के संग्रह की चिन्ता में नष्ट हो जाती है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में धन की महिमा के साथ–साथ जीवन के व्यावहारिक कटु सत्य को प्रस्तुत किया गया है कि अत्यधिक बुद्धिमान निर्धन व्यक्ति की बुद्धि केवल अपने परिवार की अवाश्यकताओं की पूर्ति मे ही उलझ कर रह जाती है। वह रात–दिन धी, चावल, चीनी, नमक, तेल, बच्चों के कपड़े तथा घर के लिए में ईधन आदि लाना है इसी चिन्ता में नष्ट हो जाती है।

श्लोक :– गगनमिव नष्टतारं, शुष्कमिव सरः, श्मशानमिव रौद्रम।

प्रियदर्शनमपि रुक्षं, भवति गृहं धनविहीनस्य।। 6।।

शब्दार्थ :– धनविहीनस्य = धनहीन व्यक्ति का, प्रियदर्शनम् = सौन्दर्य के कारण नेत्रों को प्रिय लगने वाला, सुन्दर, अपि = भी, गृहम् = घर भवन, नष्टतारकम् = ताराओं से रहित, अस्त हो गये हैं तारागण जिसमें ऐसे, गगनम् इव = आकाश की भाँति, षुष्कम् = सूखे हुए, सर इव = तालाब के समान, रौद्रम = भयानक, श्मशानम् इव = मरधट के

समान, रूक्षम् = उदास, भवति = हो जाता है।

<u>अनुवाद :–</u> धनहीन व्यक्ति का घर ऐश्वर्य रहित होने के कारण, तारागणों से रहित गगन के समान, जलविहीन तालाब की तरह एवं भयावह श्मशान के समान नीरस प्रतीत होता है।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि धन से विहीन व्यक्ति का घर देखने में बाह्यरूप से सुन्दर क्यों न हो। धन के अभाव में उसकी स्थिति ऐसी है जैसे अकाश की शोभा बढ़ाने वाला एक भी तारा दिखाई न दे, तालाब का सौन्दर्य बढ़ाने वाला जल सूख गया हो और भयंकर श्मशान की तरह लगती है जिसमें किसी भी व्यक्ति का क्षणभर भी ठहरने का मन नहीं करता।

<u>श्लोक :–</u> न विभाव्यन्ते लघवो वित्तविहीनाः पुरोऽपि निवसन्तः।

सततं जातविनष्टाः पयसामिव बुद्बुदाः पयसि।। 7।।

<u>शब्दार्थ :–</u> पुरः = सामने में, निवसन्तः = निवास करते हुए, अपि = भी, वित्तविहीनाः = धनहीन, (व्यक्ति), पयसि = जल में, सततम् = सदैव, जातविनष्टाः = पैदा होकर समाप्त होते हुए, पयसाम् = जल के, लघवः = तुच्छ, बुद्बुदा इव = बुलबुलों की भाँति न = नहीं, विभाव्यन्ते = दिखलाई पड़ते हैं।

<u>अनुवाद :–</u> कुलीन एवं विद्यावान् विद्वान् होकर भी सद्पुरुष निर्धन धन रहित होने के कारण इस संसार में उसी प्रकार नगण्य होते हैं, जिस प्रकार पानी का बुलबुला जल में उत्पन्न होकर सर्वदा नष्ट होने के कारण नगण्य अर्थात् खत्म जाता है।

<u>व्याख्या :–</u> इस श्लोक में संसार की वास्तविकता को प्रस्तुत करने के साथ–साथ तत्कालीन सामाजिक स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है कि गरीब (निर्धन) व्यक्ति भले ही हमारे घर के सामने ही क्यों न रहता हो उसके प्रति हमारी इतनी तुच्छ दृष्टि होती है कि हमें उसकी उपस्थिति भी नहीं होती वे व्यक्ति निरन्तर जल में उत्पन्न होने वाले बलबुलो के समान है जो उत्पन्न होकर नष्ट भी हो जाते हैं।

<u>श्लोक :–</u> सुकुलं कुशलं, सुजनं विहाय, कुलकुशलशीलविकले ऽपि।

आढये, कल्पतराविव नित्यं रज्यन्ति जननिवहाः।। 8।

<u>शब्दार्थ :–</u> जननिवहाः = लोग, सुकुलम् = ऊँचे कुल वाले, कुलीन, कुषलम् = चतुर, सुजनम् = सज्जन व्यक्ति को, विहाय = त्याग कर, कुल – कुशलशीलविकले = कुल,

कौशल और शील से च्युत, अपि = भी, आढये = सम्पन्न, (जने = व्यक्ति में), कल्पतरौ इव = कल्पतरु की भाँति, नित्यम् = बराबर, रज्यन्ति = अनुरक्त रहते हैं।

अनुवाद :– इस संसार में लोग सभ्य कार्यकुषल एवं सज्जन किन्तु धनहीन (निर्धन) पुरुष का साथ छोड़कर इन्हीं गुणों से रहित धनवान पुरुष को कल्प वृक्ष के समान अपना लेते हैं।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि संसार में बहुत लोग एसे मिलेंगे जो निगुर्ण, किन्तु धनवान् व्यक्ति को देखकर अपनी स्वार्थपूर्ति की दृष्टि से प्रसन्न होते है अर्थात् इस संसार के लोग इस बात को लेशमात्र भी महत्व नहीं देते कि कोई व्यक्ति कितना चरित्रवान है, कुशल है या उच्च, श्रेष्ठकुल में उत्पन्न हुआ है वे तो इस बात को महत्व देते हैं कि अमुक व्यक्ति कितना धनी है, भले ही वह चरित्रहीन, अकुशल, निम्न कुल में उत्पन्न क्यों न हो। उनकी इच्छापूर्ति में उसी प्रकार समर्थ होता है जैसे–'कल्पवृक्ष लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण करता है'।

श्लोक :– विफलमिह पूर्वसुकृतं, विद्यावन्तोऽपि कुलसमुद्भूताः।

यस्य यदा विभवः स्यात्तस्य तदा दासतां यान्ति।। 9।।

अनुवाद :– इस संसार में पहले के किये गये सदकार्य पुण्य इत्यादि व्यर्थ ही हैं क्योंकि बड़े–बड़े कुलीन एवं विद्वान पुरुष भी धनवान व्यक्तियों के जहाँ दास बने हुए हैं।

व्याख्या :– प्रस्तुत पद्य में विद्या एवं उच्च कुल की अपेक्षा और ऐश्वर्य वा धन की उत्कृष्टता प्रतिपादित की गई है कि बड़े–बड़े कुलीन (उच्चकुल में उत्पन्न) एवं विद्वान पुरूष भी उस व्यक्ति की दासता को प्राप्त करते है, उसकी सेवा करते हैं, उसके जहाँ नौकरी करते हैं जिसके पास धन, ऐश्वर्य है अतः पूर्व जन्मों के कर्म भी निष्फल हैं।

श्लोक :– लघुरयमाह न लोकः कामं गर्जन्तमपि पतिं प्यसाम्।

सर्वमलज्जाकरमिह, यद्यत्कुर्वन्ति परिपूर्णाः।। 10।।

शब्दार्थ :– लोकः = जगत के लोग, कामम् = बहुत, गर्जन्तम् = गरजने वाले, अपि = भी, पयसाम् = जल के, पतिम् = पति (सागर) को, 'अयम् = यह, लघुः = बेकार है' इति = ऐसा, न = नहीं, आह = कहते, (यतः = क्योंकि), इह = इस संसार में, परिपूर्ण : = भरे–पूरे लोग, यत् = जो, कुर्वन्ति = करते हैं, (तत् = वह), सर्वम् = सब कुछ,

अलल्जाकरम् = लज्जा उत्पन्न करने वाला नहीं, (भवति = होता है)।

अनुवाद :– इस संसार के लोग व्यर्थ की गर्जना करने वाले समुद्र को यह नीच है, ऐसा कभी नहीं कहते। अतः धनवान् लोग उचित–अनुचित जो भी कार्य करें वह उनके लिए प्रशंसास्पद ही होता है। शर्मनाक नहीं।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

एवं सम्प्रधार्य भूयो' प्यचिन्तयत्–''तदहमनशनं कृत्वा प्राणान्–त्सृजामि। किमनेन नो व्यर्थजीवितव्यसनेन?'' एवं निश्चयं कृत्वा सुप्तः। अथ तस्य स्वप्ने पद्मनिधिः क्षपणकरुपो दर्शनं दत्त्वा प्रोवाच–भोः श्रेष्ठिन्! मत्वं वैराग्यं गच्छ। अहं पद्मनिधिस्तव पूर्वपुरुषो–पार्जितः। तदनेनैव रूपेण प्रातस्त्वतृगृहमागमिष्यामि। तत्त्वयाऽहं लगुडप्रहारेण शिरसि ताडनीयः येन कनकमयो भूत्वाऽक्षयो भवामि।

अनुवाद :– इस प्रकार विचार करके वह सेठ पुनः सोचने लगा– मैं अनशन करके अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दूंगा, क्योंकि दरिद्र होकर जीवन जीने से कोई लाभ नहीं। ऐसा निश्चय कर वह सो गया तब स्वप्न में पद्मनिधि ने क्षपणक बौद्ध सन्यासी के रुप में प्रत्यक्ष दर्शन देकर कहा– अरे सेठ! तुम वैराग्य मत धारण करो, मैं तुम्हारे कुलपूर्वजों द्वारा उपार्जित पद्मनिधि कोष हूँ। मैं कल प्रातः इसी रुप में तुम्हारे घर आऊंगा, तब मैं तुम से डण्डे के प्रहार से अपना सिर फोड़वाकर और तब तुम्हारे लिये अक्षय स्वर्णमय कोष बनकर स्थापित हो जाऊँगा।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

अथ प्रातः प्रबुद्धः सन् स्वप्नं स्मरंश्चिन्ताचक्रमारूढस्तिष्ठति– ''अहो, सत्या' यं स्वप्नः किं वा असत्यो भविष्यति, न ज्ञायते। अथवा नूनं मिथ्याऽनेन भाव्यम्। यतोऽहमहर्निशं केवलं वित्तमेव चिन्तयामि। उक्तंच–

अनुवाद :– तत्पश्चात् प्रातः उठने पर वह सेठ अपने सपने को याद कर मन ही मन सोचने लगा कि यह स्वप्न सत्य होगा या असत्य, मैं निर्णय नहीं कर पा रहा हूँ, अथवा यही सत्य है कि यह स्वप्न असत्य ही होगा क्योंकि मैं केवल धन की ही चिन्ता करता रहता हूँ।

अभ्यास कार्य :–

प्र०1 निम्न गद्य की सप्रसंग, व्याख्या करें?

एवं सम्प्रधार्य भूयोऽप्यचिन्तयत्–''तदहमनषनं कृत्वा प्राणान्–त्सृजामि। किमनेन नो व्यर्थजीवितव्यसनेन?'' एवं निश्चयं कृत्वा सुप्तः। अथ तस्य स्वप्ने पद्मनिधिः क्षपणकरुपो दर्शनं दत्त्वा प्रोवाच–भोः श्रेष्ठिन्! मत्वं वैराग्यं गच्छ। अहं पद्मनिधिस्तव पूर्वपुरुषो–पार्जितः। तदनेनैव रूपेण प्रातस्त्वतृगृहमागमिष्यामि। तत्त्वयाऽहं लगुडप्रहारेण शिरसि ताडनीयः येन कनकमयो भूत्वा· क्षयो भवामि।

____

____

____

____

____

प्र०2 निम्नवत् श्लोकों का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद करें?

क) सुकुलं कुशलं, सुजनं विहाय, कुलकुशलशीलविकलेऽपि।

आढये, कल्पतराविव नित्यं रज्यन्ति जननिवहाः।।

____

____

____

____

____

ख) शीलं शौचं क्षान्तिर्दाक्षिण्यं मधुरता कुले जन्म।

न विराजन्ति हि सर्वे, वित्तविहीनस्य पुरुषस्य।।

____

____

____

____

____

✠✠✠✠✠✠✠

श्लोक :— व्याधितेन सशोकेन चिन्ताग्रस्तेन जन्तुना।

कामार्तेनाऽथ मत्तेन दृष्टः स्वप्नो निरर्थकः।। 11।।

शब्दार्थ :— व्याधितेन = रोगी, सशोकेन = शोक से आकुल, चिन्ताग्रस्तेन = चिन्तित, कामार्तेन = काम—पीड़ित, अथ = और, मत्तेन = मतवाले, जन्तुना = व्यक्तियों के द्वारा, दृष्टः = देखा गया, स्वप्नः = सपना, निरर्थकः = बिना काम का (भवति = होता है)।

अनुवाद :— रोगी (व्याधिग्रस्त), शोकाकुल, चिन्ताओं से ग्रस्त, कामासक्त एवं उन्मत्त पुरुष के द्वारा देखा हुआ स्वप्न निरर्थक ही होता है।

व्याख्या :— प्रस्तुत पद्य में परिगणित व्यक्ति की पाँच स्थितियों का वर्णन मिलता है। स्वप्न में क्षपणकरुपधारी पद्मनिधि के कथन पर विश्वास न करते हुए सेठ मणिभद्र इसी विषय पर विचार करता है कि रात्रि के समय में देखे गए स्वप्न सत्य होते हैं किन्तु इस विषय में भी अपवादों का उल्लेख मिलता है कि मानसिक वा शारीरिक रोग से ग्रस्त व्यक्ति का, चिन्ता के कारण परेशान, कामवासना से पीड़ित, शोकाग्रस्त और मदिरापान के कारण उन्मत्त प्राणी (मनुष्य) द्वारा दृष्ट स्वप्न भी निरर्थक होता है।

मूल पाठ (गद्य भाग):—

एतस्मिन्नन्तरे तस्य भार्यया कश्चिन्नापितः पादप्राालनायाहूतः। अन्नान्तरे च यथानिर्दिः क्षपणकः सहसा प्रादुर्बुभूव। अथ स तमालोक्य प्रहृष्टमना यथासन्नकाष्दण्डेन तं शिरस्यताडयात्। सोऽपि सुवर्णमयो भूत्वा तत्क्षणात्भूमौ निपतितः अथ तं स श्रेष्ठी निभृतं स्वगृहमधये कृत्वा तत्क्षणात्भूमतौ निपतितः। अथ तं स श्रेष्ठी निभृतं स्वगृहमध ये कृत्वा नापितं सन्तोष्य प्रोवाच — ''तदेतद्धनं, वस्त्राणि च मया दत्तानि गृहाण। भद्र! पुनः कस्यचिन्नाख्येयोऽयं वृतान्नतः।

अनुवाद :– इसी बीच अन्तःपुर में उसकी पत्नी ने अपने पैरों में महावर आदि लगाने के लिए किसी नापित को बुलवाया और उसी समय स्वप्न में दिखाई पड़ने वाला सन्यासी अचानक वहाँ प्रकट हुआ। उसे देख कर मणिभद्र ने प्रसन्न मन से पास में रखे हुए लकडी के डण्डे से उसका सिर फोड़ दिया, जिससे वह क्षपणक तुरन्त स्वर्णमय बनकर भूमि पर गिर पड़ा। इसके पश्चात् श्रेष्ठी ने उस स्वर्ण राशि को घर के भीतर छिपा दिया तथा नापित को द्रव्यादि देकर संतुष्ट करके कहा –प्रिय! यह धन और वस्त्र ग्रहण करो किन्तु यह वृतान्त पुनः किसी से नहीं कहना।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

नापितोऽपि स्वगृहं गत्वा व्यचिन्तयत्–नूनमेते सर्वेऽपि नग्नकाः शिरसि दण्डहताः काचनमया भवन्ति। तदहमपि प्रातः प्रभूतानाहूय लगुडैः शिरसि निहन्मि, येन प्रभूत। हाटकं में भवति। एवं चिन्तयतो महता कष्टेन निश व्यतिचक्राम।

अनुवाद : – तब अपने घर जाकर नाई विचार करने लगा अवश्य ही ये सभी नग्न भिक्षु सिर पर प्रहार करने से स्वर्णमय बन जाते हैं, फिर तो मैं भी अगले प्रातः अनेकों संन्यासियों को बुलाकर उनके सिर पर प्रहार करूंगा जिससे मैं भी बहुत–सा सोना प्राप्त करुंगा। इस प्रकार चिन्ता करते–करते उसने वह रात बड़े कष्ट से व्यतीत की।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

अथ प्रभाते· भ्युत्थाय बृहल्लगुडमे प्रगुणीकृत्य, क्षपणकविहारं गत्वा जिनेन्द्रय प्रदक्षिणत्रयं विधाय, जानुभ्यामवनिं गत्वा वक्त्रद्वारन्यस्तोत्तरीयाञ्चलस्तारस्वरेणेमं श्लोकमपठत्।

अनुवाद :– इस प्रकार प्रातः काल उठकर नाई ने एक बड़ा विशाल डण्डा तैयार किया। फिर वह क्षपणकों के आश्रम में गया। संन्यासियों के महन्त (गुरु) की तीन बार प्रदक्षिणा करके अपने मुखाग्र को अगोंछे से ढक कर बड़ी जोर की आवाज से नाई ने यह श्लोक पढ़ा–

श्लोक :– जयन्ति ते जिना येषां केवलज्ञानशालिनाम्।

आजन्मनःस्मरोत्पत्तौ मानसेनाषरायितम्।। 12।।

शब्दार्थ :– केवलज्ञानशालिनाम् = एकमात्र ज्ञान का ही लगातार चिन्तन करने वाले, येषाम् = जिन, जिनानाम् = जैन–भिक्षुओं के, आजन्मनः = जन्म से ही, स्मरोत्पत्तौ = कामेच्छा की उत्पत्ति के मामले में, मानसेन = मानस के द्वारा, ऊषरायितम् = ऊसर भूमि

की भाँति व्यवहार किया गया है, ते = वे, जिनाः = जैन–क्षपणक, जयन्ति = सबसे पूज्य हैं।

<u>अनुवाद :–</u> ज्ञान प्राप्ति के लिए जीने वाले जिन जैन साधुओं के मन में काम का प्रवेश, उसर भूमि में बोये जाने वाले बीज के समान निरर्थक है उन बौद्ध जैन साधुओं की सदा ही जय हो।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लाक में क्षपणक विहार में जाकर प्रमुख जैनसाधुओं को प्रभावित करने के लिए नाई द्वारा जैन सन्यासियों की स्तुति की गई है कि जिन्होने बाल्यकाल की अवस्था से लेकर ही कामदेव की उप्पत्ति के विषय में अपने मन को बंजर भूमि के समान अनुपजाऊ बना लिया है उन जैन साधुओं की विजय (जय) हो।

<u>श्लोक :–</u> सा जिह्वा या जिनं स्तौति तच्चित्त यज्जिने रतम्।

तावेव च करौ श्लाघयौ यौ तत्पूजाकरौ करौ।। 13।।

<u>शब्दार्थ :–</u> सा = वही, जिह्वा = (सच्चे अर्थ में) जिह्वा है, या = जो, जिनम् = जिन की, (महावीर की), स्तौति = स्तुति करती हैं, तत् = वही, चित्तम् = (सच्चे अर्थ में) चित्त है, यत् = जो, जिने = जिन (महावीर) में, रतम् = तल्लीन रहती हैं, तौ = वे, एव = ही, करौ = हाथ, श्लाघयौ = सराहनीय हैं, यौ = जो, तत्पूजाकरौ = जिन (महावीर) की पूजा करने वाले हैं।

<u>अनुवाद :–</u> जिस जिह्वा से जिनों (जैन साधुओं) की स्तुति की जाती है वही जिह्वा–जिह्वा है। जो चित्त जिनों का ध्यान करता है वही चित्त चित्त है और जिन हाथों से जिनों की पूजा अर्चना हाती है वही हाथ प्रशंसा के योग्य हैं।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में नाई क्षपणक विहार के प्रमुख जैन साधुओं के समक्ष स्वयं को जैनश्रावक सिद्ध करते हुए कहता है कि जिह्वा वहीं है जो जैन साधुओं की स्तुती गाये, मन वहीं है जो जिनेन्द्र का चिन्तन करे और दोनो हाथ भी वहीं हैं जो जैन साधुओं की पूजा (सेवा) करने में व्यस्त रहें।

<u>श्लोक :–</u> ध्यानव्याजमुपेत्य चिन्तयसि कामुन्मील्य चक्षुः क्षणं,
पश्यानङ्.गशरातुरं जनमिमं त्राता ऽपि त्राताऽपि नो रक्षति।
मिथ्याकारुणिको ऽसि निर्घृणतरस्त्वत्तः कुतो ऽन्यः पुमान्ः,
सेर्ष्यं मारवधूभिरित्यभिहितो बुद्धः जिनः पातु वः।। 14।।

अनुवाद :— ध्यान लगाने के बहाने आप किस सुन्दरी का ध्यान कर रहे हैं, क्षणभर के लिए अपने चक्षुओं को खोलकर काम से पीड़ित आप में आसक्त हम सुन्दरियों को निहारिये, आश्चर्य है कि आप शरणदाता होकर भी शरणागत की रक्षा नहीं करते, व्यर्थ ही दयालु कहे जाते हैं, आप से ज्यादा कोई निर्दयी नहीं है, कामी स्त्रियों के द्वारा इस प्रकार ईर्ष्यापूर्वक उपाधियों को पाने वाले जितेन्द्रिय अथवा भगवान बुद्ध आपकी रक्षा करें।

व्याख्या :— प्रस्तुत पद्य में जैनतीर्थकर कैवल्य प्राप्ति हेतु समाधिस्थ हैं। जिन पर अप्सराओं का भी कोई प्रभाव नहीं होता है तो दुःखी मन से अप्सराएँ कहती हैं कि आप वस्तुतः समाधिस्थ नहीं है किन्तु समाधि का बहाना बना कर सुन्दर स्त्री का चिन्तन कर रहे हो। क्षणभर आँखे खोलकर हमें देखो तो सही, आप दीन दुःखियों के रक्षक हो परन्तु हमारी उपेक्षा कर रहे हो, दयालु हो परन्तु दृष्टिपात कृपा भी नहीं कर रहे हो इस प्रकार अप्सराओं द्वारा ईर्ष्यापूर्वक कहे गए ज्ञान सम्पन्न जैन तीर्थकर महाराज आप सब की रक्षा करें।

मूलपाठ (गद्य भाग) :—

एवं संस्तुत्य, ततः प्रधानक्षपणकमासाद्य क्षितिनिहितजानुचरणः ''नमोस्तु वन्दे'' इत्युच्चार्य, लब्धधर्मवृद्धयाशीर्वादः, सुखमालिका' नु—ग्रहलब्धव्रतादेश उत्तरीयनिबद्धग्रन्थिः सप्रश्रयमिद्माह—

''भगवान्! अद्य विहरणक्रिया समस्तुमिसमेतेनास्मद्गृहे कर्त्तव्या।''

अनुवाद :— जैनों की स्तुति के पश्चात् वह नाई जैन संन्यासियों के प्रधान के समीप जाकर पृथ्वी पर घुटने टिकाकर बैठ गया। फिर वन्दना एवं नमस्कार कर उनसे धर्मवृद्धि का आशीर्वाद एवं प्रसाद एवं अनुग्रह माला का उपदेश प्राप्त कर, गले में उत्तरीय वस्त्र की ग्रन्थि लगाये हुए विनयपूर्वक कहा — भगवान्! आज आप समस्त मुनियों सहित मेरे घर पर पधार भोजन करने की कृपा करें।

मूलपाठ (गद्य पाठ) :—

स आह—''भोः श्रावक् धर्मज्ञोऽपि किमेवं वदसि, किं वयं ब्राह्मणसमानाः यत आमन्त्रणं करोषि? वयं सदैव तत्कालपरिचर्यया भ्रमन्तो भक्तिभाजं श्रावकमवलोक्य तस्य गृहे गच्छामः। तेन कृच्छ्रादभ्यर्थितास्तद्गृहे प्राणधारमात्रमशनक्रियां कुर्मः। तद्गम्यताम्, नैवं भूयो' पि वाच्यम्।

अनुवाद :— प्रधान भिक्षु ने कहा— हे भक्त तुम तो जैन धर्म का ज्ञान रखते हो फिर ऐसा

क्यों कह रहे हो? यह हम ब्राह्मणों का समान हैं, जो भोजन के लिये हमें आमन्त्रित कर रहे हो? हम लोग सदैव भोजन के समय भिक्षा पाने की इच्छा से भ्रमण करते हुए किसी सद्गृहस्थ को देखकर उसके घर चले जाते हैं और उसकी प्रार्थना पर मात्र उतना ही भोजन ग्रहण करते हैं जितने से प्राण बचे रह सके। इसलिए तुम यहाँ से वापस चले जाओ और भविष्य में ऐसा कभी मत कहना।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

तच्छ्रुत्वा नापित आह–''भगवन्! वेद्मयहं युष्मदृधर्मम्। परं भवतो बहुश्रावका आह्वयन्ति। साम्प्रतं पुनः पुस्तकाच्छादनयोग्यानि कर्पटानि बहुमूल्यानि प्रगुणीकृतानि। तथा पुस्तकानां लेखनार्थं लेखकानां च वित्तं सञ्चितमास्ते। तत्सर्वथा कालोचितं कार्यम्।''

अनुवाद :– यह सुनकर नाई ने कहा– भगवान्! मैं आपके धर्म नियमों को अच्छी प्रकार जानता हूँ। बहुत से सद्गृहस्थ आपको बुलाते रहते हैं। इस समय मैंने पुस्तकों को बाँधने के लिए अति मूल्यवान वस्त्रों का संग्रह किया है, इतना ही नहीं पुस्तकों के लिखने वाले लेखकों को वेतन आदि देने के लिए भी धन संचय किया है इसलिये मेरी विनती है कि समय के अनुसार कार्य कीजिए।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

ततो नापितो॰ पि स्वगृह गतः। तत्र च गत्वा खदिरमयं लगुडं सज्जीकृत्य कपाटयुगलं द्वारि समाधाय सार्द्धप्रहरैकसमये भूयो॰ पि विहारद्वारमाश्रित्य सर्वान्क्रमेण निष्क्रामतो गुरुप्रार्थनया स्वगृहमानयत्। त्रेपि सर्वे कर्पटवित्तलोभेन भक्तियुक्तानपि परिचितश्रावकान् परित्यज्य प्रहृष्टमनसस्तस्य पृष्ठतो ययुः। अथवा साध्विदमुच्येते–

अनुवाद :– उसके बाद नाई अपने घर चला आया और खदिर की लकड़ी का एक डण्डा तैयार किया। घर के दोनों किवाड़ों को सावधानी पूर्वक बन्द कर दिया। डेढ़ पहर के बाद वह पुनः भिक्षुओं के आश्रम के दरवाजे पर जाकर खड़ा हो गया और भिक्षा पाने लिए आश्रम से बाहर आने वाले भिक्षुओं को विनयपूर्वक अपने घर पर चलने के लिए प्रार्थना करने लगा। वे भिक्षु भी वस्त्रों व धन के लालचवश अपने परिचित सदृगृहस्थ को त्याग कर नाई के पीछे–पीछे उसके घर की ओर चल दिये। अथवा यह उचित ही कहा गया है।

श्लोक :– एकाकी गृहसन्त्यक्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः।
सोऽपि संवाह्यते लोके तृष्णया पश्य कौतुकम्।। 15।।

शब्दार्थ :– (इदम् = इस), कौतुकम् = कौतुक को तो, पश्य = देखिये, (यः= जो), एकाकी = अकेला, गृहसन्त्यक्तः = घर–द्वार त्यागे हुए, पाणिपात्रः = हाथों से ही पात्र का काम लेने वाला, (हाथों पर ही लेकर खाने–पीनेवाले, करपात्री) दिगम्बर : = नग्न रहने वाला, (अस्ति = है), सः वह, अपि = भी, लोके = जगत में, तृष्णया = तृष्णा के द्वारा, लोभ के द्वारा, संवाह्यते = सचालित होता है।

अनुवाद :– महान आश्चर्य को तो देखो– एकान्त में रहने वाला, घर त्यागकर विरक्त होने वाला और माया रहित प्राणी मात्र से भोजन आदि क्रिया का निर्वाह करने वाला त्यागी दिगम्बर व्यक्ति भी तृष्णा के द्वारा वश में कर लिया जाता है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में जैन साधुओं के लालच में आकर नाई के पीछे–पीछ चले आने का विवरण मिलता है कि बड़े आश्चर्य की बात है कि सगे–सम्बन्धियों को त्यागने वाले, शान्त, हाथ की ही पात्ररुप में प्रयोग करने वाले, बल्कल वस्त्र धारण करने वाले जैन साधु भी संसार में तृष्णा द्वारा संचालित किया जाता है।

श्लोक :– जीर्यन्ते जीर्यतः केशाः दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।

चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते, तृष्णैका तरुणायते।।16।।

शब्दार्थ :– जीर्यतः = वृद्ध होते हुए (व्यक्ति के), केषाः = सिर के बाल, जीर्यन्ते = जीर्ण हो कर पक जाते हैं, जीर्यतः = बूढे होते हुए व्यक्ति के, दन्ताः = दाँत, जीर्यन्ति = जीर्ण हो कर गिर जाते हैं, चक्षुः = आँख, श्रोत्रे = कान, च = भी, जीर्येते = जीर्ण हो मन्द पड़ जाते हैं, एका = एकमात्र, अकेली, तृष्णा = लोभ, तरुणायते = तरुण होती जाती है, बलशाली होती जाती है।

अनुवाद :– वृद्धावस्था को प्राप्त मनुष्य के केश पक जाते हैं। दाँत टूट जाते हैं या हिलने लगते है। चक्षुओं और कानों की शक्ति भी कम हो जाती है। परन्तु लालसा (तृष्णा) दिनों दिन तरुणावस्था को प्राप्त होती रहती है।

व्याख्या :– प्रस्तुत पद्य में सांसारिक सत्यता का कथन है कि व्यक्ति जैसे–जैसे बुढ़ा होता जाता है उसकी तृष्णा में वृद्धि होती जाती है। अर्थात् व्यक्ति जब वृद्ध हो जाता है तो उसके बाल सफ़ेद हो जाते हैं, दाँत गिर जाते हैं, शरीर बूढ़ा हो जाता है, नेत्रों को दिखाई देना बन्द हो जाता है, कानो को सुनाई नहीं देता। परन्तु उस समय एकमात्र तृष्णा ही है जो शरीर के बूढ़े होने पर भी निरन्तर युवावस्था को प्राप्त होती है।

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

ततः परं गृहमध्ये तान् प्रवेश्य, द्वारं निभृतं पिधाय, लगुडप्रहारैः शिरस्यताडयत्। ते· पि ताडयमाना एके मृताः, अन्ये भिन्नमस्तकाः फूत्कर्तृमुपचक्रमिरे। अत्रान्तरे तमाक्रन्दमाकर्ण्य, कोटरक्षपालेना· – भिहितम्– "भोः भोः। किमयं महान् कोलाहलो नगरमऽये? तद् गम्यताम्।"

अनुवाद :– तत्पश्चात् इसके बाद नाई सभी भिक्षुओं के घर के अन्दर आने पर चुप–चाप गुप्त रुप से दरवाजे को बन्द कर डण्डे से उनके सिर पर लाठी से प्रहार करने लगा जिससे कई तो मर ही गए और कई मस्तक फटने के कारण कन्द्रन कर रोने लगे। इसी बीच कोतवाल ने इस करुणापूर्ण क्रन्दन को सुनकर अपने सिपाहियों से कहा–हे सिपाहियों नगर के मध्य यह महान् कोलाहल क्यों हो रहा? तुम लोग शीघ्र जाओ और कोलाहल के कारण का पता लगाओ।

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

ते च सर्वे तदादेशकारिणस्तत्सहिता वेगात्तदृगृहं गताः यावत् पश्यन्ति तावद्रुधिरप्लावितदेहाः पलायमाना नग्नका दृष्टाः। पृष्ट भोः, किमेतत्? ते प्रोचुर्यथाऽवस्थितं नापितवृत्तम्।

अनुवाद :– कोतवाल के अधीनस्थ सभी सिपाहियों ने तीव्रता से कोतवाल के साथ घटनास्थल पर जाकर देखा कि रक्त से सने हुए भिक्षुक इधर–उधर दौड़ रहे है। इसके बाद कोतवाल ने घायल भिक्षुकों से पूछा–अरे यह क्या हो रहा है? तब भिक्षुओं ने नाई द्वारा किये गये कृत्य का वर्णन कोतवाल को सुनाया।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

वृत्तम्, यथा नापितेन कृतम् तत् सर्वं तैः कथितम्। तैरपि स नापितो बद्धो हतशेषैः सह धर्मानिष्ठानं नीतश्चः। तैर्नापिताः पृशः–भोः, किमेतद्भवता कुकृत्यमनुश्तिम्? स च – किं करोमि? मया श्रेष्ठिमणिभद्रगृहे दृष्टः एवंविधो व्यतिकरः।

इत्युक्ता सर्व मणिभद्रवृत्तान्तं यथादष्टमकथयत्? श्रुत्वा च तद्वचनं ते श्रेष्ठिनमाहूय, ते भणितवन्तः–भोः श्रेष्ठिन! कि त्वया कश्चित्क्षणपको व्यापादितः? ततस्तेना· पि सर्वः क्षपणकवृत्तान्तस्तेषां निवेदितः। अथ तैरभिहितम्–अहो, शूलमारोप्यतामसौ दुष्टात्मा कुपरीक्षितकारी नापितः।

अनुवाद :– तत्पश्चात् सिपाहियों ने उस नाई को बाँधकर घायल भिक्षुओं के साथ

न्यायालय में उपस्थित कर दिया। तब न्यायाधीश ने उससे पूछा–तुमने ऐसा कुकृत्य क्यों किया? तब नाई ने कहा–श्रीमान मैं क्या करुं? मैंने सेठ मणिभद्र के घर पर इस प्रकार का जघन्य कृत्य होते हुए देखा था। तदन्तर उसने मणिभद्र के घर हुई घटना का वृतान्त कह सुनाया। न्यायाधीष ने उसकी बातों को सुनकर मणिभद्र को बुलवाकर पूछा–सेठ जी क्या तुमने किसी भिक्षुक की हत्या की है। तब सेठ ने स्वप्न वाले क्षपणक का सभी वृतान्त कह सुनाया।

इस प्रकार सभी बातें सुनने के पश्चात् न्यायाधीश ने अपना फैसला सुनाया कि इस दुष्ट असमीक्ष्यकारी नाई को शूल पर चढ़ा दो।

<u>श्लोक :–</u> कृदृष्टं कुपरिज्ञातं कुश्रुतं कुपरीक्षितम्।

तन्नरेण न कर्तव्यं, नापितेनाऽत्र यत्कृतम्।। 17।।

<u>शब्दार्थ :</u> यथा = जैसा, अत्र = इस जगत में, नापितेन = नापित के द्वारा, कृदृष्टम् = बिना भली–भाँति समझे, कुश्रुतम् = बिना ठीक–ठीक सुने, कुपरीक्षितम् = बिना ठीक–ठीक परीक्षा किये, यत् जो, कुतम् = किया गया है, तथा = वैसा, (केना॰ पि = किसी भी) नरेण = मनुष्य के द्वारा, न = नहीं, कर्तव्यम् = करना चाहिये।

<u>अनुवाद :–</u> शूल पर चढ़ाये जाने पर वे बोले –इस संसार में जिस प्रकार नाई ने बिना अच्छी प्रकार देखे, बिना अच्छी प्रकार सुने तथा भली–भाँति बिना जांचे–परखे जिस कार्य को किया था वैसा कार्य किसी दूसरे मनुष्य को नहीं करना चाहिए।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि व्यक्ति को कोई भी कार्य करने से पहले उसे अच्छी प्रकार जाँच परख लेना चाहिए। क्योकि नाई ने बिना जाँचे परखे ही क्षपणक साधुओं पर लाठी से प्रहार कर दिया था इस प्रकार का कार्य मनुष्य को नहीं करना चाहिए।

<u>श्लोक :–</u> अपरीक्ष्य न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्षितम्।

पश्चात् भवति सन्तापो ब्राह्मण्या नकुले यथा।। 18।।

शब्दार्थ :–अपरीक्ष्य = बिना परीक्षा किये, न कर्तव्यम् = कोई कार्य नहीं करना चाहिये, सुपरीक्षितम् = भली–भाँति जाँच–पड़ताल करके ही, कर्त्तव्यम् = कार्य करना चाहिये।

(अन्यथा = नहीं तो), पश्चात् = आगे में, सन्तापः = अफसोस, पछतावा, भवति = होता है, यथा = जैसे, ब्राह्मण्याः = ब्राह्मणी का, नकुले = नेवले के विषय में, अभवत् = हुआ था।

<u>अनुवाद :–</u> मनुष्य को बिना जांचे–परखे किसी भी कार्य को नहीं करना चाहिए अन्यथा बिना समझे बूझे किसी कार्य को करने पर वैसे ही दुख होता है जैसे किसी ब्राह्मणी को किसी नेवले के कारण दुख हुआ था।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि मनुष्य को किसी भी कार्य में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए। कोई भी कार्य अच्छी प्रकार परीक्षा करके ही करना चाहिए, बिना सोचे–समझे कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। जैसे ब्राह्मण ने अपने पुत्रवत् पाले हुए नकुल को बिना सोचे–समझे–देखे मार डाला और बाद में पछताना पड़ा।

<u>अभ्यास कार्य :</u>

प्र॰1 निम्नलिखित गद्य की सप्रसग व्याख्या करें?

वृत्तम्, यथा नापितेन कृतम् तत् सर्वं तैः कथितम्। तैरपि स नापितो बद्धो हतशेषैः सह धर्मानिष्ठानं नीतश्चः। तैर्नापिताः पृष–भोः, किमेतद्भवता कुकृत्यमनुष्तिम्? स च – किं करोमि? मया श्रेष्ठिमणिभद्रगृहे दृष्टः एवंविधो व्यतिकरः। इत्युक्ता सर्व मणिभद्रवृत्तान्तं यथादष्टमकथयत्? श्रुत्वा च तद्वचनं ते श्रेष्ठिनमाहूय, ते भणितवन्तः–भोः श्रेष्ठिन! कि त्वया कश्चित्क्षणपको व्यापादितः? ततस्तेनाऽपि सर्वः क्षपणकवृत्तान्तस्तेषां निवेदितः। अथ तैरभिहितम्–अहो, शूलमारोप्यतामसौ दुष्टात्मा कुपरीक्षितकारी नापितः।

____

____

____

____

____

प्र॰2 निम्न श्लोक का हिन्दी अनुवाद करें?

जीर्यन्ते जीर्यतः केशाः दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।

चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते, तृष्णैका तरुणायते।।

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

————————————————————————————————————

✠✠✠✠✠✠✠

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने देवशर्मा नाम ब्राह्मणः प्रतिवसति स्म। तस्य भार्या प्रसूता सुतमजनयत्। तस्मिन्नेव दिने नकुली नकुलं प्रसूय मृता। अथ सा सुतवत्सला दारकवत्तमपि नकुलं स्यन्दाना· भ्यड्.गमर्दनादिभिः पुपोष। परं तस्य न विश्वसति। अपत्यस्नेहस्य सर्वस्नेहातिरिक्ततया सततमेवमाशड.क्ते यत् कदाचिदेष स्वजातिदोषवशादस्य दारकस्य विरुद्धमाचरिष्यति इति। उक्तं च–

सप्रसंग :– प्रस्तुत गद्य अपरीक्षितकारक नामक पञ्चमतन्त्रम् के 'पञ्चतन्त्र' नामक गन्थ की 'ब्राह्मणी–नकुल' कथा से ली गई है। इसके रचयिता श्री विष्णु शर्मा जी हैं।

शब्दार्थ :– कस्मिंश्चित् = किसी, अधिष्ठाने = स्थान पर, प्रतिवसति स्म = रहा करता था, देवशर्मा नाम ब्राह्मणः = देवशर्मा नाम का ब्राह्मण। तस्य = उसकी, भार्या = पत्नी, प्रसूता = गर्भिणी, सुतम् = पुत्र को, अजनयत् = उत्पन्न किया। तस्मिन्नेव दिने = उसी दिन, नकुली = नेवली ने, नकुलम = नेवले को, प्रसूय = उत्पन्न करके, मृता = मर गयी। सुतवत्सला = पुत्र पर स्नेह करने वाली, दारकवत् = अपने पुत्र की भान्ति, स्तन्यदान–अभ्यड.ग्–मर्दनादिभिः = दूध पिलाना, तैल–मर्दन और मालिश आदि के द्वारा, पुपोष = पालन–पोषण किया। परम=किन्तु, तस्य न = उस नेवले पर नहीं, विश्वसिति = विश्वास करती थी। अपत्यस्नेहस्य = पुत्र स्नेह के, सर्वस्नेहातािरिक्ततया = सभी स्नेहो से बढ़कर होने के कारण, सततम = सदैव, एवं = ही, आशड.क्ते = शंका करती रहती थी। कदाचित् = कहीं, स्वजातिदोषवषात् = अपनी जातिगत दोष के कारण, दारकस्य = पुत्र के, विरूद्धम = विरूद्ध, आचरिष्यति = आचरण करेगा। उक्तं च = कहा भी गया है–

अनुवाद :– किसी नगर मे देव शर्मा नाम का एक ब्राह्मण निवास करता था। उसकी

गर्भवती पत्नी ने एक दिन एक पुत्र को जन्म दिया। दैव योग से उसी दिन एक नेवली भी नेवले को जन्म देकर मर गयी। तब पुत्र वात्सल्य से युक्त उस ब्राह्मणी ने नेवले को भी पुत्र की तरह दुग्धपान कराने तथा तैले से अंगों की मालिश करने आदि के द्वारा पालन–पोषण किया। परन्तु कभी भी उस नेवले पर विश्वास नहीं करती थी। अपने पुत्र का स्नेह सभी स्नेहों से बढ़कर होने के कारण वह हमेशा नेवले पर शंका करती रहती थी कि अपने जातिगत दोष के कारण यह नेवला मेरे पुत्र के विरूद्ध (विपरीत) कोई आचरण न कर बैठे। कहा भी गया है–

श्लोक :– ''कुपुत्रोऽपि भवेत्पुंसां हदयानन्दकारकः।

दुर्विनतिः कुरूपोऽपि, मूर्खोऽपि व्यसनी खलः।।'' 1।।

सप्रसंगः– प्रस्तुत श्लोक विष्णु शर्मा द्वारा विरचित अपरीक्षित कारकं नामक पञ्चमतन्त्रम् के 'पञ्चतन्त्रम्' नामक ग्रन्थ की 'ब्राह्मणी–नकुल कथा' से उद्धृत् है।

शब्दार्थ :– दुर्विनीतः = उदण्ड, कुरूप = असुन्दर, मूर्खः = मूर्ख, व्यसनी = व्यसनी, खलः = दुष्ट, कुपुत्रः = कुपुत्र, अपि = भी, पुंसाम् = पुरूषों के, हृदयानन्दकारकः = हृदय को आनन्द प्रदान करने वाला, भवति = होता है।

अनुवाद :– पुत्र चाहे कितना भी उच्छृड्.ख्ल (उदण्ड), कुरूप (असुन्दर), मूर्ख, दुराचरण करने वाला, दुष्ट, व्यवसनी और अवगुणों से युक्त ही क्यों ने हो परन्तु वह अपने माता–पिता के हृदय को आनन्द प्रदान करने वाला होता है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति का अपना पुत्र चाहे कितना भी कुरूप, अनेक बुराइयों में फँसा हुआ, उद्दण्ड, निरामूर्ख क्यों न हो। अच्छा ही लगता है जिसे देखकर माता–पिता का हृदय असीम आनन्द का अनुभव करता है।

श्लोक :– एवं च भाषते लोकश्चन्दनं किल शीतलम्।

पुत्रगात्रस्य संस्पर्शश्च्न्दनादतिरिच्यते।। 2।।

शब्दार्थ :– चन्दनम् = चन्दन, शीतलम् = ठण्डा, लोकः = लोक (जगत, संसार), एवम् = ऐसा, भाषते = कहता है। किल = प्रचलित है। पुत्रगात्रस्य = पुत्र के शरीर का संस्पर्शः = स्पर्श, चन्दनात् = चन्दन से, अतिरिच्यते = अधिक बढ़कर होता है।

अनुवाद :– इस संसार में ऐसा कहा गया है कि – चन्दन अत्यधिक शीतल (ठण्डा) होता है, परन्तु अपने पुत्र के शरीर का स्पर्श चन्दन से भी अधिक मन को शीतलता प्रदान करता है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि चन्दन का स्पर्श अधिक शीतल होता है परन्तु कवि का मानना है कि यह बात वस्तुतः ठीक प्रतीत नहीं होती क्योंकि इस संसार में अपने पुत्र के शरीर का स्पर्श हृदय, मन एवं मस्तिष्क को ठण्डक पहुँचाने वाला होता है।

श्लोक :– सौहृदस्य न वाञ्छन्ति जनकस्य हितस्य च।

लोकाः प्रपालकस्याऽपि यथा पुत्रस्य बन्धनम्।। 3।।

शब्दार्थ :– लोकाः = लोग, यथा = जिस प्रकार, पुत्रस्य = पुत्र के, बन्धनम् = बन्धन को, वाञ्छन्ति = चाहते हैं, सौहृदस्य = मित्रों के, जनकस्य = पिता के, हितस्य = हितकर के, प्रपालकस्य = पालन–पोषण करने वाले के, अपि = भी, न = नहीं, बाञ्छन्ति = प्रसन्द करते हैं।

अनुवाद :– लोग जिस प्रकार पुत्र के स्नेह बन्धन को चाहते हैं, वैसा अपने मित्रों के, पिता के, हितकरो के और पालन–पोषण, आजीविका प्रदान करने वाले के बन्धन को भी नहीं चाहते हैं।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में पुत्र स्नेह के बन्धन को श्रेष्ठ, सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बताया गया है जिसके समक्ष मित्र, पिता, हित करने वाले व्यक्ति के बन्धन को अथवा सब प्रकार से पालन–पोषण वाले व्यक्ति के बन्धन को भी महत्व प्रदान नहीं माना गया है। कहने का अभिप्राय यह है कि पुत्रप्रेम (स्नेह) को अन्य सभी सम्बन्धों से श्रेष्ठ बताया गया है।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

अथ सा कदाचिच्छय्यायां पुत्रं शययित्वा जल–कुम्भमादाय, पतिमुवाच–'ब्राह्मण। जलार्थमहं तडागे यास्यामि। त्वया पुत्रोऽयं नकुलाद्रक्षणीयः अथ तस्यां गतायां, पुष्ठे ब्राह्मणोऽपि शून्यं गृहं मुक्त्वा भिक्षार्थं क्वचिन्निर्गतः। अत्रान्तरेदैववषात् कृष्णसर्पो विलान्निष्क्रान्तः। नकुलोऽपि तं स्वभाववैरिणं मत्वा भ्रातू रक्षणार्थं सर्पेण युद्धवा सर्पं खण्डषः कृतवान्। ततो रूधिराप्लावितवदनः सानन्दं स्व–व्यापारप्रकाषनार्थं मातुः सम्मूखो गतः। माताऽपि तं रूधिरक्लिन्नमुखमवलोक्य शङ्कितचित्ता "नूनमनेन दुरात्मना दारको मे भक्षितः" इति विचिन्त्य

को पात्तस्योपरि तं जलकुम्भं चिक्षेप।

<u>शब्दार्थ :–</u> अथ = उसके बाद, सा = वह ब्राह्मणी, कदाचित् = किसी समय, शय्यायाम = शैय्या पर, शाययित्वा = सुलाकर, जल–कुम्भम् = जल के घड़े को, आदाय = लेकर, पतिमुवाच = पति से बोली, ब्राह्मण = हे ब्राह्मण देव, जलाथर्म् = जल लाने के लिए, अहं = मैं, तडागे = तालाब को, यास्यामि = जॉऊगी। त्वया = तुम, पुत्रोऽयं = मेरे पुत्र की, नकुलात् = नेवले से, रक्षणीयः = रक्षा करना। अथ = इसके बाद, तस्यां = उस ब्राह्मणी के, गतायाम = चली जाने पर, पृष्ठे = पृष्ठ मे, शून्यं = सुने, गृहम = धर को, मुक्त्वा = त्याग करके, ब्राह्मणोऽपि = ब्राह्मण भी, भिक्षार्थं = भिक्षा लाने के लिए, क्वचित् = कहीं, निर्गतः = निकल गया। अन्नान्तरे = इसी बीच में, दैववशात् =दैवयोग से, कृष्णसर्पः = काला सॉप, बिलात् = बिल से, निष्क्रान्तः = निकला। नकुलोऽपि = नेवला भी, स्वभाववैरिणम् = स्वभाविक शत्रु, मत्वा = मानकर, भ्रातुः भाई की, रक्षणार्थम = रक्षा के लिए, सर्पेण = सॉंप से, युद्धवा = युद्ध करके, खण्डशः = टुकडे – टुकडे, कृतवान् = कर दिया। ततो = इसके बाद, रूधिरप्लावितवदनः = खून से लथपथ मुख वाला, सानन्दं = बड़े आनन्द से, स्वव्यापारप्रकाषनार्थम = अपनी सफलता को प्रकट करने के लिए, मातृः = माता के, सम्मुखो= पास, गतः = गया। माताऽपि = माता भी, तं = उस (नेवले को), रूधिरक्लिन्नमुखम् = रक्त से सने हुए मुखवाले, आलोक्य = देखकर, शङ्किताचिता = शङि.क्त–चितवाली (ब्राह्मणी), नूनम = निश्चय ही, अनेन = इस, दुरात्मना = दुष्ट ने, दारकः = बेटे को, भक्षितः = खा लिया है। इति = ऐसा, विचिन्त्य = सोचकर, कोपात् = क्रोध से, तस्य = उस (नेवले के), ऊपरि =ऊपर, तं = उस, जलकुम्भं = पानी से भरे घड़े को, चिक्षेप = फेंक दिया।

<u>अनुवाद :–</u> उसके बाद ब्राह्मणी ने अपने पुत्र को चारपाई (शैय्या) पर सुलाकर, जल का घड़ा हाथ में लेकर अपने पति से बोली– हे ब्राह्मण! मैं सरोवर (तालाब) पर जल भरने जा रही हूँ। तुम मेरे पुत्र की नकुल से रक्षा करना। उसके चले जाने पर सोये हुए बालक की रक्षा में नेवले को नियोजित करके घर को खाली छोड़कर भिक्षा के लिए निकल गया। उसी समय दैव योग से एक काला सॉप बिल से बाहर निकला। तब नेवले ने भी उसे अपना स्वभाव से शत्रु मानकर भाई की रक्षा के लिए सॉप से युद्ध करके सर्प के टुकड़े–टुकड़े कर दिये। तत्पश्चात् रक्त से लथपथ मुख वाला वह नेवला अपनी ब्राह्मणी से आनन्दित होकर अपनी माता (ब्राह्मणी) के सामने गया। शंकित मन वाली ब्राह्मणी रक्त से सने हुए उसके मुख को देखकर शंका करने लगी कि निश्चय ही इस दुरात्मा ने मेरे बच्चे को मारकर खा लिया है, उसके बाद पुत्रवध की संभावना से क्रोध में आकर उस जल से भरे घड़े को नेवले पर पटक दिया, जिससे नेवले की मृत्यु हो गई।

<u>मूलपाठ (गद्य भाग) :–</u>

एवं सा नकुलं व्यापाद्य यावत्प्रलपन्ती गृहे आगच्छति, तावत्सुतस्तथैव सुप्तस्तिष्ठति। समीपे कृष्णसर्पं खण्डशः कृतमवलोक्य पुत्रवधषोके–नात्मषिरो वक्षःस्थलं च ताडितुमारब्धा। अत्रान्तरे ब्राह्मणो गृहीतनिर्वापः समायातो यावत्पष्यति, तावव्पुत्रशोकाऽभितप्ता ब्राह्मणी प्रलपति–'भो–भो लोभात्मन्। लोभाऽभिभूतेन त्वया न कृतं मद्वचः। तदनुभव साम्प्रतं पुत्रमृत्युदुःखवृक्षफलम् अथवा साध्विदमुच्यते।

<u>शब्दार्थ :–</u> एवं = इस प्रकार, सा =वह (ब्राह्मणी), नकुल = नेवले को, व्यापाद्य = मारकर यावत् = जब, प्रलपन्ती = प्रलाप करती हुई, गृहे = घर के अन्दर, आगच्छति = आती है, तावत् = तब, सुतं = पुत्र को, तथैव = उसी प्रकार, सुप्तः = सोया हुआ, तिष्ठति = था। समीपे = पास में, कृष्ण सर्पं = काले सॉप के, खण्डशः = टुकड़े–2, कृतम् = किया हुआ, अवलोक्य = देखकर, पुत्रवधशोकेन = पुत्र वध के शोक से, आत्मशिरः = अपना सिर, वक्षःस्थलं = छाती को, ताडितुम = पीटना, आरब्धा = प्रारम्भ किया। अत्रान्तरे = इसी बीच, ब्राह्मणः = वह ब्राह्मण, गृहीतनिर्वापः =भिक्षा लेकर, समायातः = लौटा, पुत्रशोका–भितप्ता = पुत्र के शौक से आहत, प्रलपति = प्रलाप (विलाप) करती हुई, भो–भो = हे–हे, लोभात्मन् = लोभ से भरे स्वभाव वाले, लोभाभिभूतेन = लोभ के वश में आकर, त्वया = तुमने, न कृतम् = नहीं माना, मद्वचः = मेरे वचन को। अनुभव = अनुभव करो, साम्प्रतम् = इस समय, पुत्रमृत्युदुःखवृक्ष–फलम् = पुत्र के मृत्यु से उत्पन्न दुःख वृक्ष के फल को। अथवा = वा, साधु = ठीक हो, इदम = यह, उच्यते = कहा गया है।

<u>अनुवाद :–</u> इस प्रकार नेवले को मारकर प्रलाप करती हुई वह ब्राह्मणी जब धर वापिस लौटी तो वहाँ अपने सुपुत्र को पहले ही की भाँति शय्या पर सोया हुआ देख, एवं पास ही काले साँप के टुकेडे–टुकडे देखकर नेवले रूप पुत्रवध के शोक से उसने अपना सिर व छाती को पीटना आरम्भ कर दिया। इसी बीच जब वह ब्राह्मण भिक्षा लेकर लौटकर आया और नेवले की मृत्यु से दुःखी ब्राह्मणी को विलाप करते हुए देखा। तब ब्राह्मणी ने ब्राह्मण से कहा कि हे लोभी। ब्राह्मण तुमने लोभ से वशीभूत हुए मेरा कहना नहीं माना। इसलिए अब पुत्र की मृत्यु के कारण उत्पन्न दुःख रूपी वृक्ष के फल को अनुभव करो अथवा यह ठीक ही कहा गया है–

श्लोक :– 'अतिलोभीन कर्त्तव्यो लोभं नैव परित्यजेत्।

अतिलोभाऽभिभूतस्य चक्रं भ्रमति मस्तके।। 4।।

शब्दार्थ :– 'अतिलोभः = अति लोभ (अत्यधिक लालच), न = नहीं, कर्त्तव्य : करना चाहिए, लोभं = लालच को, नैव = नहीं परित्यजेत् = त्यागे भी, कुतः क्योंकि, अतिलोभभिभूतस्य = अत्यन्त लालच से ग्रस्त, जनस्य = व्यक्ति के, मस्तके =मस्तक पर, चक्रम = चक्र, भ्रमति = धूमता रहता है।

अनुवाद :– मनुष्य को अपने जीवन में बहुत अधिक लालच नहीं करना चाहिए एवं न ही लोभ को पूर्णतया त्याग करना चाहिए, क्योंकि जो जन अत्यधिक लोभी होते हैं, उनके मस्तिष्क पर विपत्ति के बादल हमेशा धूमते रहते हैं।

व्याख्या :– प्रस्तुत ष्लोक में अत्यधिक लोभ न करने की शिक्षा प्रदान को गई है। क्योंकि अत्यन्त लोभ व्यक्ति को अनेक परेशानियों में डालने वाला होता है। और साथ ही लोभ का पूरी तरह परित्याग भी नहीं करना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से व्यक्ति अपने जीवन में निष्क्रिय हो जायेगा और वह कुछ भी प्राप्त करने का प्रयास नहीं करेगा।

अभ्यास कार्य :

प्र॰1 : निम्नवत् गद्य का सप्रसंग अनुवाद करें?

अथ सा कदाचिच्छय्यायां पुत्रं शाययित्वा जल–कुम्भमादाय, पतिमुवाच–'ब्राह्मण। जलार्थमहं तडागे यास्यामि। त्वया पुत्रोऽयं नकुलाद्रक्षणीयः अथ तस्यां गतायां, पृष्ठे ब्राह्मणोऽपि शून्यं गृहं मुक्त्वा भिक्षार्थं क्वचिन्निर्गतः। अत्रान्तरेदैववशात् कृष्णसर्पो विलान्निष्क्रान्तः। नकुलोऽपि तं स्वभाववैरिणं मत्वा भ्रातू रक्षणार्थं सर्पेण युद्धवा सर्पं खण्डशः कृतवान्। ततो रूधिराप्लावितवदनः सानन्दं स्व–व्यापारप्रकाशनार्थं मातुः सम्मूखो गतः। माताऽपि तं रूधिरक्लिन्नमुखमवलोक्य शङ्कितचित्ता ''नूनमनेन दुरात्मना दारको मे भक्षितः'' इति विचिन्त्य को पात्तस्योपरि तं जलकुम्भं चिक्षेप।

____

____

____

____

____

प्र०2 : निम्नलिखित श्लोक का प्रसंग लिखकर अनुवाद एवं व्याख्या करें?

''कुपुत्रो' पि भवेत्पुंसां हृदयानन्दकारकः।

दुर्विनीतः कुरूपोऽपि, मूर्खो' पि व्यसनी खलः।।''

____

____

____

____

____

✠✠✠✠✠✠✠

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणपुत्राः परस्परं मित्रतां गता वसन्ति स्म। ते चा·पि दारिद्रयोपहताः परस्परं मन्त्रं चक्रुः– अहो, धिगियं दरिद्रता। उक्तं च–

सप्रसंग :– प्रस्तुत गद्य अपरीक्षितकारकम् नामक पञ्चमतन्त्रम् के ''पञ्चतन्त्र'' नामक ग्रन्थ की ''लोभाविष्टचक्रधर'' कथा से उद्धृत् है। इस कथा में लालच का पूर्णतया त्याग करने का निषेध किया गया है क्योंकि जो व्यक्ति अत्यधिक लालच के वशीभूत होकर कार्य करता है उसके सिर पर विपत्ति का चक्र हमेशा धूमता रहता है।

अनुवाद :– किसी स्थान पर आपस में चार ब्राह्मणों के पुत्र परस्पर मित्र बनकर रहते थे। वे सभी दरिद्रता से पीड़ित होकर आपस में मन्त्रणा करने लगे अहो! दरिद्रता को धिक्कार है क्योंकि कहा भी गया है कि –

श्लोक :– **वरं वनं व्याघ्रगजादिसेवितं, जनेन हीनं बहुकण्टकावतम्।**

तृणानि शय्या परिधानवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीनजीवितम्।। 1।।

सप्रसंग :– प्रस्तुत पद्य महाकवि विष्णुशर्मा विरचित अपरीक्षितकारकम् नामक पञ्चमतन्त्रम् के 'पञ्चतन्त्र' ग्रन्थ की ''लोभाविष्टचक्रधर'' कथा से लिया गया है।

शब्दार्थ :– व्याघ्रगजादिसेवितम् = बाघ, हाथी आदि जानवारों से भरे, जनेन = मुनष्यों से, हीनम् = रहित, बहुकण्टकावृतम् = प्रचुर काटों से भरा हुआ, वनम् = वन, जंगल, वरम् = श्रेष्ठ होता है, बेहतर है, तृणानि = घास–फूस का, शय्या = बिस्तर, परिधानवल्कलम् = वल्कल (साधुओं के वस्त्र) पहल लेना, वरम् = ठीक है, (किन्तु = परन्तु), बन्धुमध्ये =

बन्धुओं – परिवार वालों के बीच, धनहीन जीवितम् = बिना धन के जीना, न = नहीं, वरम् = उचित, अस्ति = है।

<u>अनुवाद :–</u> सिंह, हाथी आदि से भरे हुए भयानक घने जंगलों में भी निवास करना अच्छा है, और तिनकों की शय्या एवं वल्कल आदि वस्त्रों को पहनकर निर्वाह कर लेना भी अच्छा है परन्तु भाई बन्धुओं के बीच धनहानि होकर जीवन जीना बिल्कुल भी श्रेष्ठ नहीं है।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में मुनष्य का अपने ही बन्धु–बाँधवो के बीच में निर्धन (धन रहित) होकर रहना कष्टकर और जंगली जानवरों से भरे जंगल में तिनकों की शय्या पर सोना तथा वल्कल वस्त्र धारण कर अच्छा (श्रेष्ठ) कहा है।

तथा च–

<u>श्लोक :–</u> स्वामी द्वेष्टि सुसेवितोऽपि, सहसा प्रोज्झन्ति सद्‌बान्धवाः,

राजन्ते न गुणास्त्यजन्ति तनुजाः, स्फारीभवन्त्यापदः।

भार्या साधु सुवंशजाऽपि भजते, नो यान्ति मित्राणि च

न्यायारोपितविक्रमाण्यपि नृणां, येषां न हि स्याद्धनम्।। 2।।

शब्दार्थ :– हि = निश्चय ही, येषाम् = जिन, नृणाम् = व्यक्तियों के पास, धनम् = ध ान, न स्यात् = नहीं है, (तै = उनसे), सुसेवितः = भली–भाँति सम्पन्न, अपि = भी, स्वामी = मालिक, द्वेष्टि = विद्वेष करता हैं, सद्बान्धवाः = भले स्वभाव वाले भाई–बन्धु, अपि = भी, सहसा = एकाएक, प्रोज्झन्ति = त्याग देते है, (तेषाम् = उनके), गुणाः = सद्‌गुण, न = नहीं, भजते = मानते, न्यायारोपितविक्रमाणि = न्यायपरायण, मित्रापि = मित्र–गण, अपि = भी, यान्ति = त्यागकर चले जाते हैं।

<u>अनुवाद :–</u> निर्धन मनुष्यों द्वारा अच्छी प्रकार सेवा किये जाने पर भी उनका स्वामी उनसे द्वेष ही रखता है। अच्छे बन्धु बान्धव भी उसे प्रेम नहीं करते, पुत्र भी साथ नहीं देते। निर्धन मनुष्य शौर्यादिगुण युक्त होने पर भी शोभा नहीं पाते। विपत्तियां उनके सामने मुख फाड़े बढ़ती रहती है। उच्च कुल में पैदा होने वाली अपनी कुलीन पत्नी भी निर्धन से मुख मोड़ लेती है अधिक क्या कहा जाये। न्याय के पथ पर चलने वाले उसके सखे (मित्र) भी छोडकर चले जाते हैं।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में संसार की वास्तविकता का वर्णन किया गया है और मुनुष्य

जीवन में धन ही सब कुछ है इस बात को दर्शाया गया है कि धनहीन व्यक्ति के मित्र, पत्नी, पुत्र, बन्धु, स्वामी कोई भी नहीं होता।

श्लोक :– शूरः सुरूपः सुभग श्चवाग्मी, शास्त्राणि शस्त्राणि विदांकरोतु।

अर्थं विना नैव यश श्च् मानं प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्यलोके।। 3।।

शब्दार्थ :– शूरः = वीर, सुरूपः = सुन्दर, सुभगः = सौभाग्यशाली, वाग्मी = वाणी से चतुर, शस्त्राणि = शस्त्रों को, शास्त्राणि = शास्त्रों को विदांकरोतु = साधननेवाला, नाम = भले ही हो, (किन्तु = परन्तु), अत्र = इस, मनुष्यलोके = मनुष्य संसार में, अर्थम् = वित्त के, विना, यशः = यशः, च = और मानम् = प्रतिष्ठा को, नैव = नहीं, प्राप्तनोति = प्राप्त कर पाता है।

अनुवाद :– इस मृत्युलोक में मनुष्य शूरवीर (पराक्रमी) सुन्दर, भाग्यशाली, प्रवक्ता और शास्त्र, शस्त्रों का ज्ञाता होकर भी यदि धनहीन हो तो वह यश व सम्मान को प्राप्त नहीं कर सकता है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में मनुष्य के यश और सम्मान का आधार धन बताया गया है।

श्लोक : तानीन्द्रियाण्यविकलानि, तदेव नाम,

सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।

अर्थोष्मणा विरहितः पुरूषः स एव

बाह्यःक्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्।। 4।।

शब्दार्थ :– एतत् = यह, विचित्रम् = बड़ी विचित्र बात (है कि) तानि = वह, एव = ही, अविकलानि = स्वस्थ, शक्ति सम्पन, इन्द्रियाणि = इन्द्रियाँ है, तदेव = वही, नाम = नाम है, सा = वह, एव = ही, वचनम् = बात–चीत है, (तथापि = तो भी), अर्थोष्मणा = धन की गर्मी से, विरहितः = रहित, सः = वह, एव = ही, पुरूषः = व्यक्ति, क्षणेन = क्षण भर में, बाह्यः = पराया भवति = हो जाता है।

अनुवाद :– इस संसार के आश्चर्य को तो देखो। मनुष्य के वही सभी स्वस्थ अंग है, वही सर्वत्र गामिनी बुद्धि है वाणी भी वही है परन्तु धन की उष्मा से रहित होने पर धनहीन होने पर वही मनुष्य पलभर में उपेक्षणीय हो जाता है।

व्याख्या :– प्रस्तत श्लोक में एक समान मनुष्य शरीर होते हुए भी धनवान और निर्धन व्यक्ति के व्यवहार में भिन्नता बताई गई है कि इन्द्रियों में कोई परिवर्तन नहीं, चलता, उठना, बैठना, बोलना, कार्य भी एक जैसे है, बुद्धि भी दोनों में हैं फिर भी धन आने पर भिन्नता क्यों आ जाती है।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

''तद्गच्छाम्ः कुत्रचिदर्थाय।'' इति सम्मन्ष्य स्वदेषं पुरं च स्वसुहृत्सहितं गृहं च परित्यज्य, प्रस्थिताः। अथवा साध्विदमुच्यते –

अनुवाद :– इसलिए हमें धनोपार्जन के लिए कहीं ओर चले जाना चाहिए, ऐसा निश्चय कर उन्होंने अपना देश, नगर एवं सुहृदय मित्रों सहित घर को त्याग कर प्रदेश के लिए प्रस्थान किया, यह ठीक ही कहा गया है–

श्लोक :– सत्यं परिज्यजति मुञ्चति बन्धुवर्गं,

शीघ्रं विहाय जननी मपि जन्मभूमिम्।

सन्त्यज्य, गच्छति विदेशमभीष्टलोकं,

चिन्ताकुलीकृतमतिः पुरूषोऽत्र लोके।। 5।।

शब्दार्थ :– अत्र = इस, लोके = जगत में, चिन्ताकुलकृतमतिः = चिन्ताओं से व्याकुल बुद्धि वाला, पुरूषः = व्यक्ति, सत्यम् = सत्य को, परित्यजति = त्याग देता है, बन्धुर्गम् = बन्धु–बान्धवों को, मञ्चति = त्याग देता है, जननीम् = अपनी माता, च = और, जन्मभूमिम् = जन्म–भूमि को, अपि = भी, विहाय = त्याग कर, अभीष्टलोकम् = अभीष्ट स्थान को, सन्त्यज्य = त्याग कर, शीघ्रम् = शीघ्र ही, विदेशम् = परदेश को, गच्छति = निकल जाता है।

अनुवाद :– इस संसार में कुटुम्ब पोषण की चिन्ताओं से ग्रस्त होकर सत्य का परित्याग कर देते हैं, बन्धु–बान्धुवों को छोड़ देते हैं और अपनी जन्म देने वाली माता का तथा जन्मभूमि जैसे प्रिय स्थानों को छोड़ कर विवश हो कर मनुष्य परदेश चले जाते हैं।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि आधुनिक युग का व्यक्ति धन हेतु अपना देश वा सब कुछ घर, परिवार छोड़ कर विदेश जाने में भी संकोच नहीं करता है।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

एवं क्रमेण गच्छन्तोऽवन्तीं प्राप्ताः। तत्र क्षिप्राजले कृतस्नानाः महाकालं प्रणम्य यावन्निर्गच्छन्ति, तावद् भैरवानन्दो नाम योगी संमुखो बभूव। ततस्तं ब्राह्मणोचितविधिना संभाव्य, तेनैव सह तस्य मठं जग्मुः। अथ तेन पृष्टाः– ''कुतो भवन्तः समायाताः? क्व यास्यथ? किं प्रयोजनम्?

ततस्तैरभिहितम्– ''वयं सिद्धियात्रिकाः, तत्र यास्यामो यत्र धनाप्तिर्मृत्युर्वा भविष्यतीत्येष निश्चयः।'' उक्तञ्च–

अनुवाद :– इस तरह क्रम से एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हुए वे सभी ब्राह्मण–कुमार अवन्तिका पहुँचे। वहाँ शिप्रा नदी के जल से स्नान करने के पश्चात् ज्योंही महाकाल को प्रणाम कर मन्दिर से बाहर निकले त्योंही भैरवानन्द नाम का एक योगी उनके सम्मुख आ पहुँचा। ब्राह्मणोचित विधि से उनका सम्मान कर उन्हें संतुष्ट कर वे चारों उनके साथ उनके मठ तक चले गये तब भैरवानन्द ने उनसे पूछा–आप लोग कहाँ से आ रहे है? कहाँ जाओगे? और क्या प्रयोजन है? तब उन्होंने कहा–हम लोग धन पाने की सिद्धि की कामना से यात्रा कर रहे है। हम वहाँ जायेंगे जहाँ या तो धन प्राप्त होगा या मृत्यु होगी। यही हमारा अटल निर्णय है, क्योंकि कहा भी गया है–

श्लोक :– दुष्प्राप्याणि बहूनि च लभ्यन्ते वाञ्छितानि द्रविणानि।

अवसरतुलिताभिरलं तनुभिः साहसिकपुरूषाणाम्।। 6।।

शब्दार्थ :– साहसिकपुरूषाणाम् = साहसी व्यक्तियों के, अलम् = पर्याप्त, अवसरतुलिताभः = समय पर बाजी लगाने वाले, तनुभिः= शरीर से, वाञ्छितानि = इच्छित, द्रविणानि = धन, च = और, बहूनि = बहुत–सी, दुष्प्राप्याणि = दुर्लभ वस्तएँ, लभ्यन्ते = प्राप्त होती हैं।

अनुवाद :– साहसी पुरूष अवसर प्राप्त होने पर अपने प्राणों की बाजी लगाकर अनेकों दुर्लभ वस्तुओं तथा मनोवांछित धन को प्राप्त कर ही लेते हैं।

व्याख्या :–

प्रस्तुत श्लोक में 'साहसे श्रीर्वसति'' की अभिव्यक्ति प्राप्त हुई है कि साहसी मनुष्य समय आने पर अपना शरीर भी दॉव में लगाने से पीछे नहीं हटते भले ही वह अपनी जान गवा बैठें।

तथा च–

<u>श्लोक :</u> पतति कदाचिन्नभसः खाते, पातालतोऽपि जलमेति।

दैवमचिन्त्यं बलवद्, बलवान्ननु पुरूषकारोऽपि।। 7।।

<u>शब्दार्थ :</u> कदाचित् = कभी, खाते = जलाशय में, नभसः = आकाश से, जलम् = जल, पतति = गिरता है, कदाचित् च = कभी–कभी, पातालतः पृथिवीतल से भी, खाते = जलाशय में, जलम् पानी, एति = आ जाता है, अचिन्तनीयम् = अकल्पनीय, दैवम् = भाग्य, बलवत् = बलवान् है, किन्तु = परन्तु, पुरूषकारः = पुरूषार्थ, अपि = भी, बलवान् = प्रबल होता है।

<u>अनुवाद :</u> वर्षाकाल में पानी गगन से जलाशय में गिरता है और कभी पुरूषार्थ करके खोदने से पाताल से जलाशय से निकलता है। इसलिए यदि कभी भाग्य बलवान होता है तो कभी पुरूशार्थ भी उससे कम बलवान नहीं होता।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में भाग्य की बलवत्ता प्रतिपादित करने के साथ–साथ पुरुषार्थ की प्रभावशलिता को प्रतिपादित किया गया है कि बिना प्रयत्न किये दैवयोग से आकाश से जल गिरता है किन्तु परिश्रम पूर्वक मनुष्य कुआँ आदि खोदकर पाताल से भी जल प्राप्त कर सकता है।

<u>श्लोक :</u> अभिमतसिद्धिरशेषा भवति हि पुरूषस्य पुरूषकारेण।

दैवमिति यदपि कथयसि पुरूषगुणः सोऽप्यदृष्टाख्यः।। 8।।

<u>शब्दार्थ :</u> पुरूषकारेण = पराक्रम से, पुरूषस्य = व्यक्ति के, अशेषा = सकल, अभिमतसिद्धिः = मनोरथों की सिद्धि, भवति = होती है। यदपि = जिसको, दैवम् =भाग्य, इति = ऐसा, कथयसि = कहते हो, हि = निश्चय ही, सः = वह, अपि = भी, अदृष्टाख्यः = अदृष्ट नामवाला, भाग्य नाम वाला, पुरूषगुणः = व्यक्ति का गुण पराक्रम, एव = ही।

<u>अनुवाद :</u> मनुष्य की सारी इच्छाएं प्रयत्न पुरूषार्थ (मेहनत) से ही पूर्ण होती है। भाग्य या देव भी मनुष्य की ही एक अदृश्य शक्ति या गुण है। पुरूषार्थ से अतिरिक्त दैविक शक्तियाँ भी मनुष्य के कड़े परिश्रम से उत्पन्न होती है अर्थात् भाग्य भी कर्म करने से ही उच्च होता है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में प्ररुषार्थ को सभी वाच्छित पदार्थों की प्राप्ति का कारण माना गया है और कहा गया है कि इस संसार में व्यक्ति अपने द्वारा चाहे गए सभी पदार्थों की प्राप्ति पुरुषार्थ द्वारा कर सकता है।

श्लोक : द्वयमतुलं गुरूलोकात्तृणमिव तुलयन्ति साधु साहसिकाः।

प्राणानद्भुतमेतच्चरितं चरितं ह्युदाराणाम्।। 9।।

शब्दार्थ : सहसिकाः = वीर व्यक्ति, प्राणान् = प्राणों को, तृणमिव = तिनके की भाँति, साधू = भली–भाँति, तुलयन्ति = तौल देते हैं, एतत् = यह, अद्भूतम् = अपूर्व, चरितम् = चरित, हि = और, उदाराणाम् = उदार सज्जनों का, चरितम् = चरित्, एतत् = यह, द्वयम् = दोनों, लोकात् = लोक से, गुरू = महान, अतुलम् = अनोखे, च = भी, भवति = होते हैं ।

अनुवाद :– साहसी पुरूष तिनके के समान अपने प्राणों को दाँव पर लगा देते है वे कर्मठ कर्मशील पुरूष एवं उदार पुरूष दोनों ही सामान्य जनों की तुलना में ऊपर होते हैं।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में साहसी एवं उदार लोगों के चरित्र का महत्वूपर्ण एवं अतुलनीय वर्णन किया गया है कि वे अपने कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए अपने प्राणों की लेश मात्र भी परवाह नहीं करते वे अपने प्राणों को तिनके के समान समझते हैं।

श्लोक :– क्लेशस्याऽड्.गमदत्वा सुखमेव सुखानि नेह लभ्यन्ते।

मधुभिन्मथनायस्तैराश्लिष्यति बाहुभिर्लक्ष्मीम्।। 10।।

शब्दार्थ :– इह = इस जगत में, क्लेशस्य = कष्ट को, अड्.गम् = शरीर को, अदत्त्वा = बिना समर्पित किये, सुखमेव = आराम से बिना परिश्रम के ही, सुखानि = सुख, न = नहीं, लभ्यन्ते = मिलते हैं। मधुभिद् = मधु नामक दैत्य के नाशक भगवान विष्णु, मथनायस्तैः = समुद्र–मन्थन से श्रान्त, बाहुभिः = बाहुओं से, लक्ष्मीम् = लक्ष्मी को, आश्लिष्यति = हृदय से लगाते हैं।

अनुवाद :– इस संसार में देह को कष्ट दिये बिना कोई भी सुख प्राप्त नहीं होता। मधु नामक राक्षस का वध करने वाले विष्णु को भी लक्ष्मी की प्राप्ति तभी हुई थी जब उनकी

भुजाएँ समुद्र मन्थन से थक गईं थी।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में एक पौराणिक कथा का वर्णन मिलता है कि देवताओं और दैत्यो ने मिलकर समुद्रमन्थन किया था उसी समय समुद्र से लक्ष्मी की प्राप्ति हुई थी जो भगवान विष्णु के हिस्से आई थी। यदि भगवान विष्णु को भी परिश्रम के बिना लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं हुई थी तो फिर साधारण मनुष्य शरीर को कष्ट दिये बिना इसे कैसे प्राप्त कर सकता है।

<u>श्लोक :–</u> तस्य कथं न चला स्यात् पत्नी विष्णोर्नृसिंहकस्याऽपि।

मासा श्चतुरो निद्रां यः सेवति जलगतः सततम्।। 11।।

<u>शब्दार्थ :–</u> यः = जो, जलगतः = जल में रह कर, चतुरः = चार, मासान् = महीने, सततम् = निरन्तर, निद्राम् = नींद का, सेवति = सेवन करते हैं, तस्य = उन, विष्णोः = विष्णु की, नृसिंहकस्य = नृसिंह की, अपि = भी, पत्नी = स्त्री, चला = चञ्चला, कथम् = कैसे, न = नहीं, स्यात् = हो।

<u>अनुवाद :–</u> चार मास तक जल के मध्य रहने वाली नृसिंह रूप धारी विष्णु पत्नी लक्ष्मी भी जब चंचला हो जाती है तो पुरूषार्थ न करने वाले श्रेष्ठ मनुष्य के पास सदैव लक्ष्मी किस प्रकार स्थायी रह सकती हैं।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में लक्ष्मी को चंचल कहा गया है कि ये लक्ष्मी कभी भी किसी एक मनुष्य के पास नहीं ठहरती। एक पुरुष को छोड़कर दूसरे पुरुष के पास पलक झपकते ही चली जाती है।

<u>श्लोक :–</u> दुरधिगमः परभागो यावत्पुरूषेण साहसं न कृतम।

यतति तुलामधिरूढो भास्वानिह जलदपटलानि।। 12।।

<u>शब्दार्थ :–</u> यावत् = जब तक, पुरूषेण = व्यक्ति के द्वारा साहसम् = साहस, न = नहीं, कृतम् = किया जाता, परभागः = अन्तिम सीमा, दुरधिगम = दुष्प्राय रहता है, इस = इस जगत में, भास्वान् = भास्कर सूर्य, तुलाम् = संशय पर, अधिरूढ़ः = चढ़कर, एव = ही, जलदपटलानि = मेघ मण्डल पर, जयति = विजय प्राप्त करते हैं।

<u>अनुवाद :–</u> पुरूष के पुरूषार्थ किये बिना उसकी विजय प्राप्ति असम्भव होती है। देखिए जब भगवान सूर्य पुरूषार्थ की तुला पर चढ़ जाते हैं तो आकाष में छाये हुए मेघवृन्दों पर

विजय प्राप्त करते ही हैं।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाषित करने वाले सूर्य को भी वर्षा ऋतु मे बादलों के समूह को नष्ट करने के लिए अपने प्राणों को दॉव पर लगाने के लिए तुला पर आरूढ अर्थात् तुला राशि में जाना पड़ता है क्योंकि तुला राशि पर गया सूर्य ही बादलों के समूह को नष्ट कर सकता है तो साधारण मनुष्य पुरुषार्थ किये बिना सफलता कैसे प्राप्त कर ले।

<u>मूलपाठ (गद्य भाग) :–</u>

तत्कथ्यतामस्माकं कश्चिद् धनोपायो विवरप्रवेशशकिनीसाधन–श्मशानसेवनमहामासं–विक्रयसाधक–

वर्तिप्रभृतीनामेकतम इति। अद्भुतशक्तिर्भवान् श्रूयते। वयमप्यतिसाहसिकाः उक्तञ्च–

<u>अनुवाद :–</u> तत्पश्चात् ब्राह्मण पुत्रों ने भैरवानन्द योगी से कहा–आप धन प्राप्त करने के अनेकों उपाय यथा पातालगमन, यक्षिणीसिद्धि, महाकायादि सिद्धि के लिए शमशानवास, गौ एवं मनुष्य आदि के महामासं की बिक्री या सिद्धगुटिका आदि के निर्माण आदि उपायों में से कोई उपाय हमें भी बतायें। हमने कर्ण परम्परा से ऐसा सुना है कि आप अलौकिक शक्ति सम्पन्न योगी हैं। हम भी अत्यन्त साहसी हैं, कहा भी गया है–

<u>श्लोक :–</u> महान्त एव महतामर्थं साधयतिुं क्षमाः।

ऋते समुद्रादन्यः को बिभर्ति वडवाऽनलम्?।। 13।।

<u>शब्दार्थ :–</u> महान्तः = महान लोग, एव = ही, महताम् = बड़े लोगों के, अर्थम् = प्रयोजन को, साधयितुम् = सिद्ध करने में, क्षमाः = समर्थ, (भवन्ति = होते हैं), समुद्रात् = समुद्र से, अन्यः = अलग, कः = कौन, वडवानलम् = वडवानल का, बिभर्ति = साधन करता है (धारण करने में समर्थ है?)।

<u>अनुवाद :–</u> महान लोगो के कार्यों को श्रेष्ठ लोग ही साधने में सफल होते हैं। समुद्र के विना बडवानल को धारण करने में और कौन समर्थ हो सकता है।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत पद्य में कहा गया है कि साधारण लोग महान बड़े–बड़े कार्यों को सम्पन्न करने में सामर्ध्य नहीं रखते हैं केवल महान महापुरुष ही महान कार्यो को सिद्ध करने का सामर्ध्र रखते हैं जैसे बडवानल जैसी महान सामर्थ्यशाली वस्तु को केवल समुद्र

ही धारण करने में समर्थ रखता है।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

भैरवानन्दोऽपि तेषां सिद्धयर्थं बहूपायं सिद्धवर्तिचतुष्टयं कृत्वाऽर्पयत् । आह च– "गम्यतां हिमालयदिशि। तत्र संप्राप्तानां यत्र वर्तिः पतिष्यति, तत्र निधानमसन्दिगधं प्राप्स्यथ। तत्र स्थान। खनित्वा निधिं गृहीत्वा व्याऽुटयताम्। तथाऽनुष्ठिते तेषां गच्छतामेकतमस्य हस्ताद्वर्तिर्निपपात। अथाऽसौ यावत्तं प्रदेशं खनति, तावत्तम्रमयी भूमिः। ततस्तेनाऽभिहितम्–"अहो, गुह्यातां स्वेच्छता ताम्रम।" अन्ये प्रोचः–"भो मूढ़ क्रियते यत् प्रभूतमपि दारिद्रयं न नाशयिष्यति। तदुत्तिष्ठ, अग्रतो गच्छामः।" तवूचतुः–"भोः, पृष्ठतस्ताम्रमयी भूमिः, अग्रतो रूप्यमयी। तन्नूनमग्रे सुवर्णमयी भविष्यति। किंचाऽनेन प्रभूतेनाऽपि दारिद्रयनाषो न भवति। तदावामग्र यास्यावः।" एवमुक्त्वा द्वावप्यग्रे प्रस्थितौं। सोऽपि स्वशक्त्या रूप्यमादाय निवृत्तः।

अनुवाद :– तत्पश्चात् भैरवानन्द ने अनेक क्रियाओं द्वारा चार सिद्व गुटिकाएँ बनाकर उन्हें दी और कहा–आप लोग उत्तर दिशा की ओर जाइए। वहाँ जाते हुए जिस स्थान पर यह गुटिका, वहाँ निश्चित रूप से रत्नों का खजाना प्राप्त होगा उस स्थान को खोदकर खजाना प्राप्त कर शीघ्र लौट आना। इस प्रकार गुटिकाएँ लेकर जाते हुए उन कुमारों में से एक के हाथ से एक स्थान पर गुटिका गिर पड़ी। उसने उस जगह को खोदकर देखा तो पाया कि वहाँ ताँबे की खान है। तदन्तर उसने साथियों से कहा– अरे यहाँ से जितना चाहो ताँबा ले लो। तब अन्य तीनों ने कहा–अरे मूर्ख इस ताँबे को लेकर क्या होगा? इसे प्रचुर मात्रा में लेकर भी हमारी दरिद्रता का नाश नहीं होगा। अतः उठो और आगे बढ़ो। तदनन्तर पहले कुमार ने कहा– आप लोग जाइए, पर मैं आगे नहीं जाऊँगा ऐसा कहकर वह इच्छानुसार ताँबा लेकर लौट गया जबकि अन्य तीनों मित्र आगे बढ़ गये। ज्योंही वे कुछ दूर चले कि आगे चलने वाले मित्र के हाथ से गुटिका गिर पड़ी। उसने वहाँ खोदना प्रारम्भ किया और उसे चाँदी की खान मिल गई। इसके पश्चात् उसने हर्षित होकर कहा–अरे इच्छानुसार यहाँ से चाँदी ले लो। अब आगे मत जाइए, जब उन दोनों ने कहा–ओह पहले तांबे की खान उसके पश्चात् चाँदी की खान मिली, तो आगे निश्चित रूप से सोने की खान मिलेगी। इसकी (चाँदी की) प्रचुर मात्रा ले लेने पर भी हमारी दरिद्रता का नाश नहीं होगा, तो चलो हम दोनों आगे चलें। ऐसा कहकर वे दोनों आगे चल पड़े। पर वह ब्राह्मणकुमार सामर्थ्यनुसार चाँदी लेकर लौट गया।

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

अथ तयोरपि गच्छतोरेकस्याऽगे वर्तिः पपात। सोऽपि प्रहृष्टो यावत्खनति, तावत्सुवर्णभूमिं

दृष्ट्वा द्वितीयंच्च प्राह– भोः, गृह्वातां स्वेच्छया सुवर्णम्। सुवर्णादन्यन्नकिञ्चिदुत्तमं भविष्यति।

स प्राह–''मूढ़ न किञ्चिद् वेत्सि। प्राक्ताम्रं, ततो रूप्यं, ततः सुवर्णम्। तन्नूनमतः परं रत्नाति भविष्यन्ति, येषामेकतमेनाऽपि दारिद्रयनाशो भवति। तदुत्तिष्ठ, अग्रे गच्छावः। किमनेन भारभूतेनाऽपि प्रभूतेन?'' अथ भ्राम्यन्, सीलोपरि पुरूषमेकं रूधिरप्लावितगात्रं भ्रमच्चक्रमस्तकपश्यत्। ततो द्रुततरं गत्वा तमवोचत्–''भोः, को भवान् चक्रेण भ्रमता शिरसि तिष्ठसि? तत्कथय मे यदि कुत्रचिज्जलमस्ति।''

अनुवाद :– उन दोनों के आगे बढ़ने पर उनमें से एक के हाथ से गुटिका गिर गई। ज्योंहि उसने प्रसन्न होकर खोदकर देखा उसको सोने की भूमि दिखाई दी वह बालो–अरे इच्छानुसार सोना ले लो सोने की तुलना में कोई दूसरी उत्तम वस्तु नहीं। मिलेगी तब दूसरे ने कहा–मूर्ख तुम कुछ नहीं जानते देखो पहले तांबे की खान मिली उसके पश्चात् चाँदी की और फिर सोने की खाल मिली इसके पश्चात् अब निश्चित ही रत्नों की खान प्राप्त होगी। जिससे एक के मिल जाने पर भी सारी दरिद्रता दूर हो जाएगी, अतः उठो और आगे बढ़ों। इस अधिक बोझ वाले सोने से क्या लाभ होगा? वह बोला–तुम आगे जाओं मैं यही रूक कर तुम्हारा इन्तजार कर रहा हूँ, उसके ऐसा कहने पर वह चौथा ब्राह्मणकुमार अकेला ही आगे चल पड़ा। ग्रीष्म ऋतु के तपते हुए सूर्य की किरणों से उसकी देह व्याकुल हो गयी और जोर की प्यास के कारण वह अपने सिद्धिमार्ग छोड़कर इधर–इधर घूमने लगा। इस प्रकार घूमते हुए एक जगह रक्त से सने हुए शरीर वाले एक व्यक्ति को देखा जिसके सिर पर चक्र घूम रहा था। पश्चात् तीव्र गति से उसके पास जाकर बोला–अरे भैया आप कौन है? और यह चक्र आपके सिर पर क्यों घूम रहा है? मुझे प्यास लगी है यदि कहीं पर जल हो तो मुझे बताईये।

<u>मूलपाठ (गद्य भाग) :–</u>

एवं तस्य प्रवदतस्तच्चक्रं तत्क्षणात्तस्य शिरसो ब्राह्मणमस्तके चटितम्।

स आह–' भद्र किमेतत्?'' स आह–''ममाऽप्येवमेतच्छिरसित चटितम्?''

स आह–''तत्कथय कदैतदुत्तरिष्यति? महती मे वेदना वर्तते।''

स आह–''यदा त्वमिव कश्चिद्धृतसिद्धवर्तिरेवमागत्य, त्वामालापयिष्यति तदा तस्य मस्तकं चटिष्यति।''

स आह–''साम्प्रतं को राजा धरणीतले?''

स आह–"वीणावादनपटुः वत्सराजः।"

स आह–"अहं तावत्कालसङ्.ख्यां न जानामि। परं यादा रामो राजाऽऽसीत्तदाऽहं दारिद्र्योपहतः सिद्धवर्तिमादायानेन पथा समायातः। ततो मयाऽन्यो नरो मस्तकधृतचक्रो दृष्टः, पृष्टश्च। ततशेचतज्जातम्।"

स आह–"भद्र कथं तवैवं स्थितस्य भोजनजलप्राप्तिरासीत्?"

स आह–"भद्र धनदेन निधानहरणभयात्सिद्धानामेतच्चक्रपतनरूपं भयं दर्शितम्। तेन कश्र्चिदपि नागच्छति। यदि कश्चिदायाति, स क्षुत्पिपासानिद्रारहितो, जरामरणवर्जितः केवलमेवं वेदनामनुभवति इति। तदाज्ञापय मा स्वगृहाय"। इत्युक्त्वा गतः।

<u>अनुवाद :–</u> तत्पश्चात् उससे बात करते समय वह चक्र उसके सिर से उतर कर ब्राह्मणकुमार के सिर पर घूमने लगा। ब्राह्मणकुमार ने आश्चर्य से पूछा–भद्र यह क्या हो गया। उसने कहा–इसी प्रकार यह मेरे सिर भी घमूने लगा था।

ब्राह्मण कुमार ने कहा अच्छा बताओ यह कब उतरेगा? मुझे बड़ी वेदना हो रही है। उसी चक्रमुक्त व्यक्ति ने कहा–जब तुम्हारे ही समान कोई दूसरा पुरूष ऐसी सिद्धि गुटिका को लेकर यहाँ आयेगा और तुमसे इसी प्रकार बातचीत करेगा तब यह चक्र तुम्हारे सिर से उतर कर उसके सिर पर चला जायेगा।

ब्राह्मण कुमार ने पूछा–तुमने कितने समय तक इस चक्र की पीड़ा सहन की ? उस चक्रमुक्त व्यक्ति ने पूछा–पृथ्वी पर इस समय राजा कौन है? ब्राह्मण कुमार ने उत्तर दिया वीणा वादन में निपुण वत्सराज। तब उस चक्रमुक्त पुरूष ने कहा–समय की गणना तो मैं नहीं जानता किन्तु उस समय राजा राम थे तब मैं दरिद्रता से पीड़ित होकर इसी प्रकार सिद्धि गुटिका लेकर इस पथ पर आया था यहाँ पर आकर मस्तिष्ठ पर चक्र घूमते हुए एक अन्य व्यक्ति को देखकर उससे कुछ पूछ ही रहा था, कि मेरे ऊपर यह चक्र घूमने लगा।

उस ब्राह्मण कुमार ने पूछा–इस प्रकार सिर पर स्थित इस चक्र के कारण आपको भोजन व जल की प्राप्ति कैसे होती रही है?

उस चक्रमुत व्यक्ति ने उत्तर दिया–मित्र, कुबेर ने धन के लालच में सिद्धि गुटिका लेकर आने वाले पुरूषों द्वारा कोशों के लूटे जाने के डर के लिए चक्र के घूमने का यह भय उपस्थित किया है। इसलिए शायद ही कोई इधर आता है, यदि लालचवश कोई आ भी

जाता है तो भूख, प्यास, नींद और बुढ़ापें एवं मृत्यु के भय से रहित होकर केवल चक्र की वेदना का ही अनुभव करता है। अब आप मुझे घर जाने की आज्ञा प्रदान करें। ऐसा कहकर वह तुरन्त वहाँ से चल दिया।

<u>मूलपाठ (गद्य भाग) :–</u>

तस्मिंश्चिरयति स सुवर्गसिद्धिस्तस्याऽन्वेषणपरस्तत्पदपङ्क्त्या यावत् किञ्चिद् वनान्तरमागच्छति, तवद्रुधिरप्लावितशरीरस्तीक्ष्ण चक्रेण मस्तके भ्रमता सवेदनः क्वणन्नुपविष्टस्तिष्ठतीत ददर्श। ततः तत्समीपवर्तिना भूत्वा, सवाषं पृष्टः–"भद्र किमेतत्? स आह– विधिनियोगः।"

स आह–कथं तत्? कथय कारणमेतसय। सोऽपि तेन पुष्टः सर्वं चक्रवृत्तान्तमकथयत्।

तत् श्रृत्वाऽसौ तं विगर्हयन्नि दमा–भोः निषिद्धस्त्वं मयाऽनेकशो नश्रृणोमि मे वाक्यम्। तत्किं क्रियते विद्यावानपि, कुलीनोऽपि, बुद्धिरहितः, अथवा साध्विदमुच्यते–

<u>अनुवाद :–</u> चौथे साथी के बहुत देर लगाने पर उसे खोजता हुआ, उसके पदचिन्हों को देखता हुआ उस वन में आ गया। इसके पश्चात् उसने देखा कि उसके मित्र का शरीर खून से लथपथ है और उसके सिर पर तीक्ष्ण धार वाला चक्र घूम रहा है और वह पीड़ा के कारण बैठकर रो रहा है, तब उसके समीप जाकर सभी बातें उससे पूछने लगा–मित्र यह क्या हुआ? तब उसने उत्तर दिया मित्र– यह विधि का निष्ठुर विधान था। सुवर्ण सिद्धि ने पूछा– यह किस प्रकार हुआ? इसका कारण बताओं? उसके ऐसे पूछने पर चक्रधर ने उसे सारा किस्सा सुनाया। चक्रधर का किस्सा सुनकर सुवर्ण सिद्धि ने उसे भला–बुरा कहते हुए कहा– मैंने तुम्हे बारंबार मना किया, लेकिन तुमने मेरी बात नहीं मानी। अब क्या किया जा सकता है? तुम विद्यावान एवं कुलीन होकर भी वास्तव में मूर्ख हो अथवा किसी ने उचित ही कहा गया है

<u>श्लोक :–</u> **वरं बुद्धिर्न सा विद्या विद्याया बुद्धिरूत्तमा।**

बुद्धिहीना विनश्यन्ति, यथा ते सिंहकारकाः।। 14।।

शब्दार्थ :–बुद्धिः = बुद्धि, वरम् = बड़ी है, सा = वह, विद्या = विद्या, न = नहीं, (यतः = क्योंकि), विद्यायाः = विद्या से, बुद्धिः = बुद्धि, उत्तमा = उत्तम, श्रेष्ठ, (भवति = होती है।), बुद्धिहीनाः = बुद्धि से हीन, सिंहकारकाः = सिंह को जीवित करने वालों, यथा = की भाँति, विनश्यन्ति = समाप्त हो जाते हैं।

अनुवाद :– बुद्धि विद्या की तुलना की श्रेष्ठ होती है, देखिए बुद्धिहीनता के कारण मनुष्य विद्यावान होकर भी वैसे ही न हो जाता है जैसे मृत संजीवनी विद्या के ज्ञान का ज्ञानी होकर भी ब्राह्मणों ने अपनी बुद्धिहीनता के कारण शेर को जीवित किया और विनाश को प्राप्त हुए।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में सिंहकारक मूर्ख ब्राहमण कथा की ओर संकेत किया गया है जिसमें विद्या की अपेक्षा बुद्धि को श्रेष्ठ माना है जैसे किताबी ज्ञान रखने वाले ब्राहाणकुमारों ने बुद्धि का प्रयोग ना करके विद्या के बल पर सिंह का निर्माण किया और विनाश को प्राप्त हुए।

<u>अभ्यास कार्य :–</u>

प्र०1 निम्न गद्य का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद करें ?

भैरवानन्दोऽपि तेषां ंसिद्धयर्थं बहूपायं सिद्धवर्तिचतुष्टयं कृत्वाऽर्पयत् । आह च– ''गम्यतां हिमालयदिशि। तत्र संप्राप्तानां यत्र वर्तिः पतिष्यति, तत्र निधानमसन्दिगधं प्राप्स्यथ। तत्र स्थान। खनित्वा निधिं गृहीत्वा व्याघुटयताम्। तथाऽनुष्ठिते तेषां गच्छतामेकतमस्य हस्ताद्वर्तिर्निपपात। अथाऽसौ यावत्तं प्रदेशं खनति, तावत्तम्रमयी भूमिः। ततस्तेनाऽभिहितम्–''अहो, गुह्यातां स्वेच्छता ताम्रम।'' अन्ये प्रोचः–''भो मूढ़ क्रियते यत् प्रभूतमपि दारिद्रयं न नाशयिष्यति। तदुत्तिष्ठ, अग्रतो गच्छामः।

____

____

____

____

____

प्र०2 निम्नलिखित श्लोकों की व्याख्या करें?

क) शूरः सुरूपः सुभगश्च वाग्मी, शास्त्राणि शस्त्राणि विदांकरोतु।

अर्थं विना नैव यश श्रच् मानं प्राप्नोति मर्त्योऽत्र मनुष्यलोके।।

ख) क्लेशस्याऽङ्.गमदत्वा सुखमेव सुखानि नेह लभ्यन्ते।

मधुभिन्मथनायस्तैराश्लिष्यति बाहुभिर्लक्ष्मीम्।।

____

____

____

____

____

✠✠✠✠✠✠✠

4. ''सिंहकारकमूर्खब्राह्मण–कथा''
(सिंह को जीवित करने वाले, मूर्ख ब्राह्मण की कथा)

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

कास्मिंश्चित् अधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मण पुत्राः परस्परं मित्रभावमुपगता वसन्ति स्म। तेषां त्रयः शास्त्रपारङ्.गताः परन्तु बुद्धिरहिताः। एकस्तु बुद्धिमान् केवलं शास्त्रपराङ्.मुखः। अथ तैः कदाचिन्मित्रैन्त्रितं को गुणो विद्यायाः, येन देशान्तरं गत्वा भूपतीन् परितोष्याऽर्थोपार्जना न क्रियते। तत्पूर्वदेशं गच्छामः। तथाऽनुष्ठिते किञ्चिन्मार्गं गत्वा, तेषां ज्येष्ठतरः प्राह ''अहो, अस्माकमेकश्चतुर्थो मूढः केवलं बुद्धिमान्। न च राजप्रतिग्रहो बुद्धया लभ्यते, विद्यां विना। तन्नोस्मै स्वपोपार्जितं दास्यामि तद् गच्छतु गृहम्''। ततो द्वितीयेनाऽभिहितं– ''भोः सुबुद्धे। गच्छ त्वं स्वगृहं, यतस्ते विद्या नास्ति''। ततस्तृतीयेनाडभिहितम्–अहो, न युज्यते एवं कर्तुम यतो वयं बाल्यात्प्रभत्येकत्र क्रीडिताः। तदागच्छतु महाऽनुभावीऽस्मदुपार्जित वित्तस्य समभागी भविष्यति। उक्तं च–

सप्रसंग :– प्रस्तुत गद्य अपरीक्षित कारक नामक ''पञ्चतन्त्र'' ग्रन्थ की ''सिंहकारक मूर्ख ब्राहमण–कथा'' से उद्धृत है। इसके रचयिता श्री विष्णु शर्मा जी हैं।

अनुवाद :– किसी स्थान पर चार ब्राह्मण पुत्र परस्पर मैत्री भाव से रहा करते थे। उनमें से तीन शास्त्र ज्ञान में पारंगत थे, किन्तु बुद्धिहीन थे तथा एक बुद्धिमान था परन्तु शास्त्रज्ञान से परांग मुख था। एक बार चारो मित्रों ने आपस में विचार–विमर्श किया कि उस विद्या से क्या लाभ? जिसके द्वारा दूसरे देशों (स्थानों) में जाकर राजाओं को सन्तुष्ट (खुश) करके धनोपार्जन न किया जाए, इसलिए सर्वप्रथम हम सब मित्रों को पूर्व देश की ओर जाना चाहिए। वैसा निश्चय करके मार्ग मे कुछ दूर चलने पर उनमें

से सबसे ज्येष्ठ (बड़ा) ब्राह्मण कुमार बोला–भाई हममें से चौथा मूर्ख है, केवल बुद्धिमान है तथा राजा की कृपा विद्या के बिना बुद्धि द्वारा प्राप्त नहीं की जा सकती इसलिए मैं अपना कमाया हुआ धन इसे नहीं दूँगा। अतः अच्छा हो कि यह अभी धर वापिस लौट जाये । तब दूसरे ने कहा–'अरे! न च राजप्रातिग्रहो बुद्धया लभ्यते, विद्यां विना। तन्नास्मै स्वपोपार्जितं दास्यामि सुबुद्धि, तुम अपने धर वापिस लोट जाओ, क्योंकि तुम्हारे पास विद्या नहीं है, तत्पश्चात् तीसरे ले कहा, अरे! ऐसा करना ठीक नहीं हैं, क्योंकि हम सारे बाल्यावस्था से लेकर आजतक एक साथ खेलते आ रहे हैं इसलिए यह मित्र भी हमारे साथ आये और हमारे द्वारा कमाये धन का समान हिस्सेदार (भागी) होगा। कहा भी गया है–

<u>श्लोक :–</u> किं तया क्रियते लक्ष्म्या, या वधूरिब केवला।

या न वेश्येव सामान्या पथिकैःरुपभुज्यते।। 1।।

<u>सप्रसंग :–</u> प्रस्तुत श्लोक (पद्य) श्री विष्णु–शर्मा विरचित अपरीक्षितकारकम् नामक ''पञ्चमतन्त्रम्'' के 'पञ्चतन्त्र' ग्रन्थ की 'सिंहकारक मूर्खब्राह्मण–कथा'' से उद्‌धृत है।

<u>शब्दार्थ :–</u> या = जो, केवला = केवल, वधूः = बहू की, इव = भाँति, (गृहे तिष्ठति = घर में रहती है), या = जो, सामान्या = साधारण, वेश्या = वेश्या की, इव = भाँति, पथिकैः = मुसाफिरों के द्वारा, न = नहीं, उपभुज्यते = भोगी जाती, तया = उस, लक्ष्म्या = धन से, किम् = क्या, क्रियते = क्या किया जा सकता है।

<u>अनुवादः–</u> जो लक्ष्मी, कुलीन कुलवधू के समान केवल एक मुनष्य की भोग्या होती है। सामान्य वेश्या के समान जो पथिकों द्वारा भोगी नहीं जाती उस लक्ष्मी को लेकर क्या करना।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि जिस प्रकार वेश्या पथिकों द्वारा समानरूप से भोगी जाती है। ठीक उसी प्रकार लक्ष्मी की सार्थकता भी इसी बात में है कि वह कुल–वधू के समान केवल किसी एक ही व्यक्ति की होकर न रह जाये अपितु सभी को उसके उपभोग का समान अवसर प्राप्त हो अतः हमारा यह मित्र विद्या से रहित होते हुए भी हमारे द्वारा अर्जित किए गए धन में समान रुप से भागीदार होना चाहिए तभी हमारे धन की सार्थकता होगी।

<u>श्लोक :–</u> अयं निज परावेति गणना लघुचेतसाम्।

उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।। 2।।

<u>शब्दार्थ :–</u> अयम् = यह, निजः = अपना है, वा = अथवा, परः = दूसरे का है, इति = ऐसा, गणना = भेदभाव, लघुचेतसाम् =लघु ह्रदय वाले व्यक्ति के लिए, तु = तो, वसुधा = सम्पूर्ण पृथ्वी, एव = ही, कुटुम्बकम् = परिवार, भवति = हुआ करती है।

<u>अनुवाद :–</u> यह अपना है, पराया हैं इस प्रकार की गणना तो लधु विचार वाले लोग ही करते है। उदारचरित वाले लोगों के लिए तो सम्पूर्ण पृथ्वी ही परिवार होती है अर्थात् समस्त पृथ्वी के जीव अपने कुटुम्ब के समान प्रतीत होते हैं।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक मे उदारचरितवालों के लिए सम्पूर्ण पृथ्वी एक परिवार के समान है। वे यह तेरा है, यह मेरा है। इस प्रकार न करके परस्पर मिलकर प्रेमपूर्वक उनका उपभोग करते हैं।

<u>मूलपाठ (गद्य भाग) :–</u>

तदागच्छत्वेषाऽपि इति।

तथाऽनुष्ठिते तैर्मार्गाश्रितैरटव्यां कशिचिदस्थीनि दृष्टानि। ततश्चैकैनाऽभिहितम्–'अहो, अद्य विऽाप्रत्ययः क्रियते। किञ्चिदेतव्सत्त्वं मृतं तिष्ठति। तद् विद्याप्रभावेण जीवनसहितं कुर्मः। अहमस्थिसञ्चयं करोमि।'' ततश्च् तेनौत्सुक्यादस्थिसञ्चयः कृतः। द्धितीयेन चर्ममांसरुधिरं संयोजितम्। तृतीयोऽपि यावज्जीवनं संचारयति तावत्सुबुद्धिनानिषिद्धः–'भो, तिष्ठतु भवान्। एषः सिंहो निष्पाद्यते, यद्येन सजीवं करिष्येति ततः सर्वानपि व्यापादयिष्यति।''

इति तेनाऽभिहितः स आह – ''धिङ्.मूर्ख। नाऽहं विद्याया विफलतां करोमि''। ततस्तेनाऽभिहितम् विद्याया विफलतां करोमि''। ततस्तेनाऽभिहितम– ' तर्हि प्रतीक्षस्व क्षणं, यावदहं वृक्षमारोहाम्ि'। तथाऽनुष्ठिते, यावत्सजीवः कृतस्तावत्ते त्रयोऽपि सिंहेनोत्थाय व्यापादिताः। स च–पुनर्वृक्षादवतीर्य, गृहं गतः'' अतोऽहंब्रवीमि –'वरं बुद्धिर्न सा विद्या' इति। अत–परमुक्तञ्च् सुर्वणसिद्धिना–

<u>अनुवाद :–</u> इसलिए इसको भी हमारे साथ आने दो। तत्पश्चात् उन चारों ब्राह्मण कुमारों ने मार्ग में स्थित जंगल में कुछ हड्डियां देखी। तब एक ने कहा – अरे क्यों ना आज विद्या की परीक्षा की जाये। यह कोई प्राणी मरा पड़ा है क्यों न हम इसे अपनी विद्या के प्रभाव से जीवित करें। मैं इन हड्डियों को एकत्रित करता हूँ तब

उसने बड़ी उत्सुकता से हड्डियों को एकत्र किया। दूसरे ने उन अस्थियो पर चर्म, मांस एवं रुधिर का संयोजन किया तीसरे ने उसमे प्राणों का संचार करना –प्रारम्भ किया तभी चौथे सुबुद्धि ने उसे रोकते हुए कहा। अरे ऐसा मत करो, तुम सब शेर को जीवित कर रहे हो यदि ये जीवित हो गया तो अवश्य ही यह हम सब को मार डालेगा। सुबुद्धि के इस प्रकार रोकने पर संचार करने वाला विद्वान बोला – अरे मूर्ख तुम्हे धिक्कार है। मैं अपनी विद्या को निश्फल नहीं कर सकता। तब उसने कहा – तो क्षणभर–प्रतीक्षा करो, जब तक मैं वृक्ष पर चढ जाता हूँ। सुबुद्धि के वृक्ष पर चढने के पश्चात् ज्यों ही सिंह में प्राणों का संचार किया वैसे ही शेर ने उठकर उन तीनों बुद्धिहीन विद्वानों को मार डाला। तदुपरान्त सुबुद्धि पेड से उतर कर अपने घर वापिस आ गया। इसलिए मैं कहता हूँ कि विद्या से बुद्धि अच्छी होती है, किन्तु बुद्धि के बिना विद्या अच्छी नहीं होती। तब सुवर्णसिद्धि ने कहा–

श्लोक : **अपि शास्त्रेषु कुशला लोकाचारविवर्जिताः।**

सर्व ते हास्यतां यान्ति, यथा ते मर्खपण्डिताः।। 3।।

<u>शब्दार्थ :–</u> शास्त्रेषु = शास्त्रो में, कुशलाः प्रवीण, अपि = भी, लोकाचारविवर्जिताः = लोक व्यवहार से वंचित होने पर, ते = वे, सर्वे = सभी, हास्यताम = हँसी को, यान्ति, प्राप्त होते हैं, यथा = जैसे, ते = वे, मूर्खपण्डिताः = मूर्ख पण्डित, हास्यम् = हँसी को, गताः = प्राप्त हुए।

<u>अनुवाद :–</u> शास्त्रज्ञान में प्रवीण होते हुए भी लोकाज्ञान से शून्य वे सभी उपहास को प्राप्त होते हैं, जिस प्रकार वे मूर्खपण्डित उपहास के पात्र बने।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि लोकाचार से शून्य अर्थात् दैनिक व्यवहार में काम आने वाली व्यावहारिक बातों से शून्य व्यक्ति सर्वदा हँसी का पात्र बनता है। जिस प्रकार केवल पुस्तकीय ज्ञान को प्राप्त करने वाले चार मूर्ख पण्डित गाँव के लोगों की हँसी के पात्र बनें। जहाँ इस श्लोक में आगे आने वाली 'मूर्खपण्डित कथा' की ओर संकेत किया गया है।

5.''मूर्खपण्डित–कथा''
(मूर्ख पण्डित की कथा)

मूलपाठ (गद्य भाग) :–

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणाः परस्परं मित्रत्वमापन्ना वसन्ति स्म। बालभावे तेषां मतिरजायत– भो! देशान्तरं गत्वा, विद्याया उपार्जनं क्रियते। अथान्यस्मिन्दिवसे ते ब्राह्मणाः परस्परं निश्चयं कृत्वा यमुत्कलापयित्वा स्वदेशे गच्छामः। तत्र च विद्यामठे गत्वा पठन्ति। एवं द्वादशाब्दानि यावकेकचिततया पठित्वा, विद्याकुशलाऽस्ते सर्वे सञ्जाताः। ततस्तैश्चतुर्भिर्मिलित्वोक्तम्–वयं सर्वविद्यापारग्ड.ता। तदुपाध्यमुत्कलापयित्वा स्वदेशे गच्छामः। तथैवाऽनुष्ठीयतामित्युक्त्वा ब्राह्मणा पामयायमुत्कलापयित्वा, अनुज्ञां लब्ध्वा पुस्तकानि नीत्वा, प्रचलिताः। यावत्किञ्चिन्मार्ग यान्ति, तावद् द्वौ पन्थानौ समायातौ द्ष्ट्वा उपविष्टाः सर्वे।

<u>सप्रसंगः–</u> प्रस्तुत गद्य अपरीक्षितकारक नामक पञ्चमतन्त्रम् के 'पञ्चतन्त्र' नामक ग्रन्थ की 'मूर्ख पण्डित कथा' से उद्धृत् है। इसके रचयिता श्री विष्णु शर्मा जी हैं।

<u>अनुवाद :–</u> किसी स्थान पर परस्पर मित्रता पूर्वक चार ब्राह्मण कुमार निवास करते थे। बाल्यावस्था मे ही उनके मन में एक विचार आया कि दूसरे देश में जाकर विद्या उपार्जन किया जाए। अगले दिन वे ब्राह्मण कुमार विद्या की प्राप्ति हेतु कन्नौज देश की ओर चले गये। वहाँ द्वादश वर्षो तक एकाग्रचित होकर सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया। तब उन चारों ने मिलकर विचार किया कि अब हम सभी विद्याओं में पारंगत हो गए हैं तो गुरु जी को गुरु दक्षिणा से सन्तुष्ट कर उनकी आज्ञा लेकर अपनी–अपनी पुस्तकों को लेकर घर की तरफ चले आयें। जैसे ही वह कुछ दूरी पर पहुँचे तो दो मार्ग मिले तब कौन से मार्ग में जाया जाये ऐसा निर्णय लेने के लिए वे सभी वहाँ बैठ गये।

<u>मूलपाठ (गद्य भाग) :–</u>

तत्रैकः प्रोवाच–केन मार्गेण गच्छामः? एतस्मिन्समये तस्मिन् पत्तने कश्चिद् वणिक्पुत्रो मृतः। तस्य दाहाय महाजनो गतोऽभूत्। ततश्चतुर्णो मध्यादेकेन पुस्तकमवलोकितं–''महाजनो येन गतः स पन्थाः''इति। तन्महाजनमार्गेण गच्छामः। अथ ते पण्डिता यावन्महाजनमेलापथिकेन सह यान्ति, तावद्रासभः कश्चितत्र श्मशाने दृष्टः। अथ द्वितीयेन पुस्तकमुद्घाटयावलोकितम्–

<u>अनुवाद :–</u> इसी समय उस नगर में एक वणिक पुत्र की मृत्यु हो गई थी। उसी के अंतिम संस्कार के लिए वणिक लोग जा रहे थे तब उन चारों के मध्य में एक ने पुस्तक

को खोलकर देखा और कहा—महाजन लोग जिस रास्ते से जाते हैं, उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। उसके ऐसा कहने पर चारों ब्राह्मण पुत्र उन महाजनों के पीछे—पीछे चल पड़ें। अभी वे महाजनों के साथ चले ही थे कि उन्हें श्मशान पर एक गधा दिखाई दिया। तब दूसरे ने पुस्तक खोलकर देखा और कहा —

<u>श्लोक :—</u> **उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे।**

राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।। 1।।

<u>सप्रसंग :—</u> प्रस्तुत श्लोक अपरीक्षितकारक नामक पञ्चमतन्त्रम् के 'पञ्चतन्त्र' ग्रन्थ की ''मूर्ख पण्डित' कथा से लिया गया है। इसके रचयिता श्री विष्णु शर्मा जी हैं।

शब्दार्थ :— उत्सवे = उत्सव में, व्यसने = व्यसन में, दुर्भिक्षे = अकाल में, च = और, शत्रुसंकटे प्राप्ते = शत्रुओं के द्वारा संकट उपस्थित करने पर, राजद्वारे = राजद्वार पर, च = तथा, श्मशाने = श्मशान भूमि में, यः = जो, तिष्ठति = साथ में रहता है, सः = वही, बान्धव : = बन्धु (अस्ति = है)।

<u>अनुवाद :—</u> उत्सव, मांगलिक कार्यों में, विपत्ति में, अकाल में और शत्रुओं द्वारा उपद्रव काल में, राजसभा में तथा श्मशान में जो साथ देता है वही सच्चा बन्धु होता है।

<u>व्याख्या :—</u> प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि जो व्यक्ति सुख—दुःख दोनो में आपके साथ—साथ चले वहीं वास्तव मैं भाई (बन्धु) कहलाने का अधिकारी है अर्थात् धर के उत्सवों माङ्गलिक कार्यो, आपत्ति आने पर तन—मन—धन तीनों प्रकार से साथ दे, अकाल पड़ने पर अपने प्राणों की परवाह न कर सहायता करें, शत्रुओं द्वारा आक्रमण करने पर साथ नहीं छोड़े और घर परिवार में किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर श्मशान तक साथ जाये वही बन्धु कहलाने का अधिकारी है।

<u>मूलपाठ (गद्य भाग) :—</u>

तदहो! अयमस्मदीयो बान्धवः। ततः कश्चितस्य ग्रीवायां लगति, कोऽपि पादौ प्रक्षालयति। अथ यावते पण्डिताः दिशामवलोकनं कुर्वन्ति, तावत्कष्चिदुष्ट्रो दृष्टः। तैश्चोक्तम् 'एतत् किम्'? तावतृयेन पुस्तकमुदघायोक्तम्—धर्मस्य त्वरिता गतिः। तन्नूनमेष धर्मसतावत्। चतुर्थेनोक्तम्—इष्टं धर्मेण योजयेत् अथ तैश्च रासभ उष्ट्रग्रीवायां बद्धः। ततु केनचितत्स्वामिनो रजकस्याग्रे कथितम्। यावद्रजकस्तेषां मूर्खपण्डितानां प्रहारकरणाय समायातस्तावते प्रनष्टाः। ततो यावदग्रे किञ्चितस्तोकं मार्गं यान्ति तावत्काचिन्नदी समासादिता। तस्य जलमध्ये

पलाशपत्रमायातं दृष्ट्वा पण्डितेनैकेनोक्तम्–आगमिष्यति यत्पत्रं तद्स्मांस्तारयिष्यति' एतत्कथयित्वा तत्पत्रयोपरि पतितो यावन्नद्या नीयते, तावतं नीयमानमवलोक्याऽन्येन पण्डितेन केशान्तं गृहीत्वोक्तम्–

<u>अनुवाद :–</u> यह हमारा भाई है। उसकी बात सुनकर कोई उस गधे को गले लगाने लगा तथा कोई उसके चरण धोने लगा। तत्पश्चात जब उन पण्डितों ने चारों दिशाओं में देखा तो उन्होंने तीव्र गति से जाते हुए एक ऊँट को देखा। उसे देखकर उन्होंने कहा–यह क्या है? तब तीसरे ने पुस्तक खोलकर देखा और कहा–धर्म की गति तीव्र होती है तो निश्चय ही यह साक्षात धर्म ही है। इसके पश्चात् चौथे पण्डित ने कहा– बन्धु को धर्म के साथ जोड़ देना चाहिए। ऐसा सोचकर उन पण्डितों ने उस गधे को ऊँट के गले से बांध दिया। फिर यह बात किसी ने गधे के स्वामी धोबी को बताई तो वह धोबी उन पण्डितों को मारने के लिए वहाँ पहुँचा। तब दूर से ही उसे देखकर वे पण्डित वहाँ से भाग निकले। इसके पश्चात् भागते हुए कुछ दूर आगे बढ़ने पर उन्हें एक नदी मिली। उस नदी की जलधाराओं में आते हुए एक पलाश के पत्ते को देखकर उन पण्डितों में से एक ने कहा–यह आने वाला पत्ता हम सभी को नदी पार करा देगा। यह कहकर वह मूर्ख पण्डित नदी की धारा में कूद पड़ा। उसे नदी की तेज धारा में बहता हुआ देखकर उसकी चोटी पकड़ कर दूसरे पण्डित ने कहा:–

<u>श्लोक :–</u> **सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।**

अर्धेन कुरुते कार्यं, सर्वनाशो हि दुसहः।। 2।।

शब्दार्थ :– सर्वनाशे = सर्वनाश के, समुत्पन्ने = उपस्थित होने पर, पण्डितः = बुद्धिमान् व्यक्ति, अधर्म् = आधा, त्यजति = त्याग देता है, (सः = वह), अर्धेन = आधे से ही, कार्यम् = काम, कुरुते = कर लेता है, हि = क्योंकि, सर्वनाशः = पूरा नाश, दुःसहः = असहनीय, (भवति = होता है)।।

<u>अनुवाद :–</u> बुद्धिमान व्यक्ति पूर्ण विनाश की स्थिति आने पर आधा छोड़ देता है और अपना कार्य सिद्ध करते है। क्योंकि सर्वनाश बड़ा ही दुखदायी होता है।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में सर्वनाश की स्थिति आने पर आधे को बचा लेना ही बुद्धिमानी होती है क्योंकि सर्वनाश की स्थिति को अहसय बताया गया है। कहने का तात्पर्य यह है कि बुद्धिमान व्यक्ति सर्वनाश की स्थिति उत्पन्न होने पर उसमें से कम से कम आधा बचाने का प्रयास करता है तथा सम्पूर्ण की अपेक्षा उस आधे से ही अपना काम चलाता है क्योंकि किसी भी व्यक्ति के लिए सर्वनाश को सहन करना अत्यन्त कठिन

होता है।

इत्युक्त्वा तस्य शिरश्छेदी विहितः। ऐसा कहकर उसने नदी में बहने वाले उस पण्डित का सिर काट दिया।

<u>मूल पाठ (गद्य भाग) :–</u>

अथ तैश्च पश्चाद् गत्वा कश्चिद्ग्राम आसादितः। तेऽपि ग्रामीणैर्निमन्त्रिताः पृथग्–पृथग् गृहेषु नीताः। ततः, एकस्य सूत्रिका घृतखण्डसंयुक्ता भोजने दत्ता। ततो विचिन्त्य पण्डितेनोक्तं यत्–दीर्घसूत्री विनश्यति। एवमुक्त्वा भोजनं त्यज्य गतः। तथा द्वितीयस्य मण्डका दत्तः, तेनाप्युक्तम्–अतिविस्तारविस्तीर्णं तदभ्वेन्न चिरायुषम्। स च भोजनं त्यक्त्वा गतः। अथ तृतीयस्य वटिका भोजनं दत्तम। तत्राऽपि तेन पण्डितेनाक्तम्–छिद्रष्वनर्था बहुलीभवन्ति। एवं ते त्रयोपि पण्डिताः क्षुत्क्षामकण्ठाः, लौकैर्हास्यमानास्ततः स्थानात् स्वदेशं गताः।

<u>अनुवाद :–</u> इसके पश्चात् आगे जाते हुए उन पण्डितों को एक गांव मिला। ग्रामीणों ने उन्हें अलग–अलग अपने–अपने घरों में भोजन के लिए निमंत्रित किया, तब एक को घी और खाण्ड से मिश्रित सेवई भोजन में दी गई। उन्हें देखकर उस पण्डित ने विचार कर कहा–दीर्घसूत्री विनाश को प्राप्त हो जाता है। ऐसा कहकर वह भोजन त्याग कर चला गया। दूसरे पण्डित को भोजन में मांड परोसा गया। उसने कहा–अधिक विस्तार वाली वस्तु दीर्घ जीवन प्रदान नहीं करती। ऐसा कहकर वह भोजन का त्याग कर चला गया। उधर तीसरे पण्डित को भोजन में बड़ा दिया गया। उसे देखते ही पण्डित ने कहा छेद हो जाने पर विपत्ति बढ़ती है। ऐसा कहकर वह भी भोजन त्यागकर चला गया। इस प्रकार वें तीनों पण्डित भूखे भी रह गये और लोगों के लिए हंसी का पात्र बन गये। और अन्त में बिना खाये–पिये उस स्थान से अपने देश की ओर चले गए।

<u>मूलपाठ (गद्य भाग):–</u>

अथ सुवर्णसिद्धिराह–यत्वं लोकव्यवहारमजानन्मया वार्य्यमाणोऽपि न स्थितः तत ईदृशीमवस्थामुपगतः। अतोऽहं ब्रवीमि– अपि शास्त्रेषु कुशलाः इति। तत् श्रुत्वा चक्रधर आह–अहो, अकारणमेतत् यतो हि–

<u>अनुवाद :–</u> इसके बाद सुवर्ण सिद्धि बोला – तुम लोग व्यवहार से अन्जान होकर मेरे द्वारा बार–बार मना करने पर भी नहीं रूके। इसीलिए इस अवस्था को प्राप्त हुए। इसीलिए मैं कहता हूँ–''शास्त्रों में कुशल भी'' इत्यादि। यह सुनकर चक्रधर ने कहा अरे यह तो व्यर्थ की बात है, क्योंकि–

श्लोक :– सुबुद्धयो विनश्यन्ति दुष्टदैवेन नाशिताः।

स्वल्पधीरपि तर्स्मिस्तु कुले नन्दति सन्ततम्।। 3।।

शब्दार्थ :– दुष्टदैवेन = दुर्भाग्य के द्वारा, नाशिताः = मारे गये, सुबुद्धयः = बड़े–बड़े बुद्धिमान व्यक्ति, अपि = भी, विनयन्ति = समाप्त हो जाते हैं, तु = और, तस्मिन् = उस, कुले = कुल में, स्वल्पधीः = मन्दबुद्धि, अपि = भी, सन्ततम् = सर्वदा, नन्दति = आनन्द प्राप्त करता रहता है।

अनुवादः– बड़े–बड़े विद्वान व्यक्ति भी दुर्भाग्य के दिन आने पर दुखी (विनष्ट) हो जाते हैं और भाग्य के साथ देने पर मूर्ख भी आनन्द प्राप्त करता है। अतः भाग्य के कारण ही व्यक्ति सुख–दुख प्राप्त कर आनन्दित होते हैं।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में बुद्धि की अपेक्षा भाग्य की प्रबलता, प्रमुखता प्रतिपादित की गई है कि व्यक्ति कितना भी बुद्धिमान, लोकव्यवहार में निपुण क्यों न हो भाग्य के विपरीत हाने पर वे नष्ट होते हुए देखे जाते है। जबकि इसके विपरीत भाग्य की अनुकूलता होने पर अल्पबुद्धि वाला मूर्ख व्यक्ति भी बिना किसी कष्ट अथवा परेशानी से देश, समाज एवं परिवार में आनन्दित रहता है।

उक्तं च–

श्लोक :– अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं

सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।

जीवत्यनाथेऽपि वने विसर्जितः,

कृतप्रयत्नोऽपि गृहे च जीवति।। 4।।

शब्दार्थ :– अरक्षितम् = असुरक्षित, अपि = भी, (वस्तु = वस्तु), दैवरक्षितम् = भाग्य के द्वारा रक्षा किये जाने पर, तिष्ठति = उपस्थित रहती है, (किन्तु = परन्तु), सुरक्षितम् = सम्भाल कर रक्खी गई, (अपि = भी, वस्तु = पदार्थ), दैवहतम् = भाग्य के प्रतिकूल हो जाने पर, नश्यति = समाप्त हो जाती है। वने = जंगल में, विसर्जितः = त्याग दिया गया, अनाथः = अनाथ, अपि= भी, जीवति = जीवति = जीवित रह जाता है। (किन्तु = परन्तु), कृतप्रयत्नः = प्रयत्नपूर्वक बचाया गया व्यक्ति, अपि = भी, गृहे = घर पर, न = नहीं, जीवति = बच पाता है।

अनुवाद :– भाग्य द्वारा रक्षा किया गया, अरक्षित रहता है और सुरक्ष किया गया भी भाग्य द्वारा नष्ट हो जाता है क्योंकि भयनाक वन में त्यागा (छोड़ा) गया व्यक्ति भी भाग्यशाली होने पर जीवत रहता है परन्तु घर पर रहकर अच्छी प्रकार सुरक्षा करने पर देव के विपरीत होने पर भी जीवित नहीं रहता है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में कहा गया है कि व्यक्ति का जीवित रहना अथवा विनष्ट होना उसके भाग्य की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता पर निर्भर है न कि मानव द्वारा उसकी सुरक्षा अथवा उपेक्षा पर

तथा च–

श्लोक :– **शतबुद्धिः शिरस्थोऽयं लम्बते च सहस्त्रधीः।**

एकबुद्धिरहं भद्रे! क्रीडामि विमले जले।। 5।।

शब्दार्थ :– भद्रे = प्रिये, अयम् = यह, शतबुद्धिः = सौ बुद्धिवाला, शिरस्थ : = शिर पर है, च = और, सहस्रबुद्धिः = सहस्रबुद्धि, जिसके पास सहस्रबुद्धि है वह, (स्कन्धे = कन्धे पर), लम्बते = लटक रहा है, (किन्तु = परन्तु), एकबुद्धिः = एक बुद्धि वाला, अहम् = मैं, विमले = निर्मल, जले = जल में, क्रीडामि = विहार कर रहा हूँ।

अनुवाद :– और भी हे प्रिय देखिए–वह शतबुद्धि नामक मछली जो सौ बुद्धि का बल रखती थी वह भी एक मछुआरे के सिर पर है और जो हजार बुद्धि का बल रखती थी वह सहस्त्रबुद्धि नामक मछली भी इस मछुआरे के हाथ में लटक रही है और एक ही निर्णय पर अटल रहने वाला मैं निर्मल जल में विहार (क्रीडा) कर रहा हूँ।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में 'मत्स्यमण्डूक कथा' की ओर संकेत किया गया है जिसमें शतबुद्धि, सहस्त्रबुद्धि, एकबुद्धि (मत्स्य और मेंढ़क) आदि कथा के पात्रों के नाम हैं। जिसमें शतबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि नामक मत्स्यों को मछुआरो द्वारा क्रमशः सिर तथा हाथ में लटकाकार ले जाते हुए देखकर उनका एकबुद्धि नामक मेढ़क अपनी भाग्य की अनुकुलता पर प्रसन्नता व्यक्त कर रहा है क्योंकि बुद्धि की अपेक्षा भाग्य की अनुकूलता अधिक आवश्यक है।

अभ्यास कार्य :–

प्र०1 निम्न गद्यों की व्याख्या करें?

क) कास्मिंश्चित् अधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मण पुत्राः परस्परं मित्रभावमुपगता वसन्ति स्म। तेषां त्रयः शास्त्रपारङ्.गताः परन्तु बुद्धिरहिताः। एकस्तु बुद्धिमान् केवलं शास्त्रपराङ्. मुखः। अथ तैः कदाचिन्मित्रैन्त्रितं को गुणो विद्यायाः, येन देशान्तरं गत्वा भूपतीन् परितोष्याऽर्थोपार्जना न क्रियते। तत्पूर्वदेशं गच्छामः। तथाऽनुष्ठिते किञ्चिन्मार्गं गत्वा, तेषां ज्येष्ठतरः प्राह "अहो, अस्माकमेकश्चतुर्थो मूढः केवलं बुद्धिमान्। न च राजप्रतिग्रहो बुद्धया लभ्यते, विद्यां विना। तन्नोस्मै स्वपोपार्जितं दास्यामि तद् गच्छतु गृहम्"।

____

____

____

____

____

ख) कस्मिंश्चिदधिष्ठाने चत्वारो ब्राह्मणाः परस्परं मित्रत्वमापन्ना वसन्ति स्म। बालभावे तेषां मतिरजायत– भो! देशान्तरं गत्वा, विद्याया उपार्जनं क्रियते। अथान्यस्मिन्दिवसे ते ब्राह्मणाः परस्परं निश्चयं कृत्वा यमुत्कलापयित्वा स्वदेशे गच्छाम

____

____

____

____

____

प्र॰2 निम्नलिखित श्लोकों का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद लिखें?

क) अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं

सुरक्षितं दैवहतं विनष्यति।

जीवत्यनाथेऽपि वने विसर्जितः,

कृतप्रयत्नोऽपि गृहे च जीवति।।

____

____

____

____

____

ख) सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः।

अर्धेन कुरुते कार्यं, सर्वनाशो हि दुसहः।।

____

____

____

____

____

✠✠✠✠✠✠✠

6. मत्स्यमण्डूक–कथा
(मछली और मेंढक की कथा)

<u>मूलपाठ (गद्य भाग) :–</u>

करिंमश्चिज्जलाशये शतबुद्धिः सहस्त्रबुद्धिश्च द्वौ मत्स्यौ निवसतः स्म। अथ तयोरेकबुद्धिर्नाम मण्डूको मित्रतां गतः। एवं ते त्रयोऽपि जलतीरे वेलायां सुभाषितगोष्ठीसुखमनुभूय, भूयोऽपि सलिलं प्रविशन्ति। अथ कदाचितेषां गोष्ठीगतानां जालहस्ता धीवराः सलिलाशयं दृष्ट्वा मिथः प्रोचुः–अहो! बहुमत्स्योऽयं ह्रदो दृश्यते, स्वल्पसलिलश्च। तत्प्रभातेऽत्रागमिष्यामः। एवमुक्त्वा स्वगृहं गताः।

<u>सप्रसंग :–</u> प्रस्तुत गद्य महाकवि विष्णु शर्मा विरचित अपरीक्षितकारकम् नामक पञ्चमतन्त्रम के 'पञ्चतन्त्र'' ग्रन्थ की ''मत्स्यमण्डूक'' कथा से उद्घृत् है। जिसमें शतबुद्धि एवं सहस्त्रबुद्धि नामक मत्स्यों और एकबुद्धि नामक मेढ़क की कथा वर्णित है।

<u>अनुवाद :–</u> किसी जलाशय (तालाब) में शतबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि नामक दो मत्स्य (मछलियाँ) निवास करती थी। कुछ समय बाद उनकी मित्रता एकबुद्धि नामक मेंढक से हो गई। इस प्रकार वे तीनों जलाषय के तट पर समय–समय पर की सभा में सुभाषित की चर्चा से आनन्दित होकर पुनः जल में प्रवेश कर जाते थे। एक दिन जब वें गोष्ठी में चर्चा कर रहे थे, उसी समय सूर्यास्त की बेला में मारी हुई बहुत सारी मछलियों को अपने सिर पर रखकर कई सारे मछुआरे उस जलाशय के तट पर पहुँचे। इसके पश्चात् उस तालाब को देखकर उन्होंने आपस में सलाह की कि यह तालाब मछलियों से भरा हुआ है और पानी भी कम है, तो कल सुबह यहाँ पर ही आया जाएगा। ऐसा निश्चय करके वे अपने–अपने घर चले गये।

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

मत्स्याश्च विषण्णवदना मिथो मन्त्रं चक्रुः। ततो मण्डूक आह–भोः, शतबुद्धे! श्रुतं धीवरोक्तं भवता? तत्किमत्र युज्यते कुर्तुम्? पलायनमवष्टम्भो वा? यत्कर्तुं युक्तं भवति तदादिश्यतामद्य। तत् श्रुत्वा सहस्त्रबुद्धिः प्रहस्य आह–भो मित्र! मा भैषीः, यतोः वचनश्रवणामात्रादेव भयं न कार्यम्? न भेतव्यम्। उक्तं च–

अनुवाद :– और यह सूनने के पश्चात् मछलियों ने खिन्न होकर आपस में मन्त्रणा आरम्भ की। मेंढक ने कहा–भाई शतबुद्धि, तुमने मल्लाहों की बात तो सुनी ही होगी तो अब हमें क्या करना चाहिए। इस परिस्थिति में हमें यहीं रहना चाहिए या कहीं और चले जाना चाहिए, जो उचित लगे उसके लिए तुरन्त आज्ञा प्रदान करो। मेंढक की बात सुनकर सहस्त्रबुद्धि ने हँसकर कहा–मित्र तुम डरो मत, मात्र मल्लाहों की बात सुनकर ही डरना नहीं चाहिए। कहा भी गया है–

श्लोक :– सर्पाणां च खलानां च सर्वेषां दुष्टचेतसाम्।

अभिप्राया न सिध्यन्ति तेनेदं वर्तते जगत्।। 1।।

सप्रसंग :– प्रस्तुत श्लोक (पद्य) अपरीक्षितकारक नामक पञ्चमतन्त्रम् के 'पञ्चतन्त्र'' ग्रन्थ की 'मत्स्यमण्डुक'' कथा से लिया गया है। इसके रचयिता श्री विष्णु शर्मा जी हैं।

शब्दार्थ :– सर्पाणाम् = सर्पों के, च = और, खलानाम् = दुष्टों के, च = तथा, सर्वेषाम् = सभी, दुष्टचेतसाम् = दुष्ट चित्तवालों के, अभिप्रायाः = मनोरथ, न = नहीं, सिद्धयन्ति = सिद्व होते है, सफल होते हैं, तेन = इसी से, इदम् = यह, जगत् = संसार वर्तते = बचा हुआ है।

अनुवाद :– दुष्ट चित्त वाले सर्पों के, दुर्जनों के तथा दुष्ट विचार वाले मुनष्यों की मनोकामनाएँ इस जगत में सफल नहीं हुआ करती, इसी कारण से यह संसार गतिमान (विद्यमान) हैं।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में दुष्टों की सर्पो के साथ गणना की गई है क्योंकि दोनो ही स्वभाव से दुष्ट और स्वार्थी होते है। जहाँ पर एकबुद्धि मेढ़क को समझाते हुए सहस्त्रबुद्धि मत्स्य कहता है कि– इस संसार में दूसरों का अहित करने वाले, सर्पों की तथा दूर्जनों की इच्छाएँ (मनोकामनाएँ) पूर्ण नहीं होती है। इसी कारण यह सारा संसार अस्तित्व में है अतः तुम्हें मछुआरों की बातों को सुनकर चिन्ता नहीं करनी चाहिए।

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

ततावतेषामागमनमपि न संपत्स्यते। भविष्यति वा तर्हि त्वां बुद्धिप्रभावेणात्मसहितं रक्षयिष्यामि। यतोऽनेकां सलिलगतिचर्यामहं जानामि। तदाकार्य शतबुद्धिरेव भवान् अथवा साध्विदमुच्यते–

अनुवाद :– इसलिए मेरा अनुमान है कि उनका यहाँ पर आना सम्भव न होगा। फिर भी यदि कदाचित् वे आ भी गये तो मैं अपनी बुद्धि कौशल से स्वयं सहित तुम्हारी रक्षा करुँगा। क्योंकि मैं जल में चलने की अनेक कलाएँ जानता हूँ। शतबुद्धि ने उसकी बात सुनकर कहा–महाशय आपका कहना उचित ही है, आप वास्तव में सहस्त्रबुद्धि ही है–अथवा यह ठीक ही कहा गया है–

श्लोक :– बुद्धेर्बुद्धिमतां लोके नाऽस्त्यगम्यं हि कि ञ्चन।

बुद्धया यतो हता नन्दा श्चाणक्येनासिपाणयः।। 2।।

शब्दार्थ :– हि = निश्चय ही, लोके = जगत में, बुद्धिमताम् = बुद्धिमानों की, बुद्धेः= बुद्धि से, किञ्चन = कुछ भी, अगम्यम् = असंभव, नास्ति = नहीं होता हैं, यतः = क्योंकि, चाणक्येन = चाणक्य के द्वारा, बुद्धया = बुद्धि से, असिपाणयः = तलवार हाथ में लिये रहने वाले (अपि = भी), नन्दाः= नन्द, हताः = मार डाले गये।

अनुवाद :– वस्तुतः इस संसार में बुद्धिमानों की बुद्धि से कुछ भी कार्य असम्भव नहीं है। जिस प्रकार चाणक्य के बुद्धिबल द्वारा शस्त्र धारण करने वाला समस्त नन्दवंश विनाश को प्राप्त हुआ था।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में शतबुद्धि नामक मत्स्य कह रहा है कि इस संसार में तीक्ष्णबुद्धि सम्पन्न बुद्धिमान लोगों के लिए कोई भी कार्य असम्भव अथवा असाध्य नहीं होता है। वह अपनी बुद्धि के प्रभाव से सभी कार्यो को सिद्ध कर लेते हैं जैसे अकेले चाणक्य ने अपनी बुद्धि के प्रभाव से ही शक्तिसम्पन्न, राज्याधिकार प्राप्त हुए नन्दवंश में उत्पन्न राजाओं को नष्ट कर डाला था इसलिए सहस्त्रबुद्धि नामक मत्स्य भी अपने बुद्धिचातुर्य से अपने साथ–साथ हम सबकी निश्चय ही रक्षा कर लेगा।

श्लोक :– न यत्राऽस्ति गतिर्वायो रश्मीनां च विवस्वतः।

तत्राऽपि प्रविशत्याषु बुद्धिर्बुद्धिमतां सदा।।3।।

शब्दार्थ :– यत्र = जहाँ पर, वायो : = हवा की, च = तथा, विवस्वतः = सूर्य की,

रश्मीनाम् = किरणों की, गतिः = गति, गमन (पहुँच) नस्ति = नहीं होती हैं, तत्र = वहाँ भी, बुद्धिमताम् = बुद्धिमानों की, बुद्धिः = मति, सदा = हमेशा, आशु = अति शीघ्र, प्रविशति = प्रवेश कर जाती है।

<u>अनवुाद :–</u> जहाँ पर वायु एवं सूर्य की रश्मियाँ भी पहुँचने में असमर्थ है वहाँ पर बुद्धिमानों की तीक्ष्ण बुद्धि शीघ्रता से पहुँच जाती है।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में बुद्धि की प्रशंसा की गई है कि इस संसार में बुद्धिमान पुरुषों की बुद्धि उन स्थलों पर भी सहज ही प्रविष्ट हो जाती है जहाँ पर वायु तथा सूर्य की किरणों का पहुँचना पूर्णतया असम्भव है। बुद्धि (कवि) के लिए कोई भी स्थान, विषय दूर्गम अथवा असाध्य नहीं होता। इसी भाव को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि ''जहाँ न पहुँचे रवि वहाँ पहुँचे कवि''। वे अपने बुद्धि कौशल द्वारा सभी कार्यो को सिद्ध कर हीं लेते हैं।

<u>मूल पाठ (गद्य भाग) :–</u>

ततो वचनश्रवणमात्रादपि पितृर्प्यायागतं जन्मस्थानं त्यक्तुं न शक्यते। उक्तं च–

<u>अनुवाद :–</u> इसीलिए मल्लाहों के सुनने मात्र से पूर्वजों की वंशक्रमागत इस जन्मभूमि को छोड़ना उचित नहीं है। कहा भी गया है–

<u>श्लोक :–</u> **न तत्स्वर्गेऽपि सौख्यं स्यादिव्यस्पर्शेन शोभने।**

कुस्थानेऽपि भवेत्पुंसां जन्मनो यत्र संभवः।। 4।।

<u>शब्दार्थ :–</u> (यत् = जो), सौख्यम् = सुख, पुंसाम् = पुरुषों को, यत्र = यहाँ पर, जन्मनः = जन्म की, संभवः = उत्पत्ति होती है, (तत्र = उस, वहाँ), कुस्थाने = कुस्थान, अनाकर्षक स्थान में, अपि = भी, भवेत् = होता है, तत् = वह सुख, शोभने = अत्यन्त आकर्षक, स्वर्गे = स्वर्ग में, दिव्यस्पर्शेन = दिव्य स्पर्श से, अपि = भी, न = नहीं, स्यात् = होवे, होता है (मिलता है)।

<u>अनुवाद :–</u> जो सुख स्वार्गादि लोको में दिव्य अप्सराओं के दिव्य स्पर्श से भी मनुष्य को प्राप्त नहीं होता वह आनन्द कुस्थान में जन्म लेने पर भी मनुष्य को अपनी जन्मभूमि से होता है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में ''जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपिगरीयसी'' इत्यादि भावनाओं को अभिव्यक्त किया है कि मनुष्य इस संसार में सुन्दरता से सम्पन्न अलौकिक स्थान, स्वर्ग में रहकर दिव्यनारियों, अप्सराओं आदि के स्पर्श को करके भी इस सुख को प्राप्त नहीं कर सकता जो सुख उसे अपनी जन्म भूमि में रहकर मिलता है।

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

तत्र कदाचिदपि गन्तव्यम्। अहं त्वां बुद्धिप्रभावेण रक्षयिष्यामि। मण्डूक आह–भद्रौ! म्म तावदेकैव बुद्धिः पलायनपरा। तदहमन्यं जलाशयमद्यैव सभार्यो यास्यामि।'' एवमुक्त्वा स मण्डूको रात्रावेवाऽन्यजलाशयं गतः। धीवरैरपि प्रभाते आगत्य, जघन्यमध्यमोत्तमजलचराः मत्स्कुर्ममण्डूककर्कटादयो गृहीताः। तावपि शतबुद्धिसहस्त्रबुद्धी सभार्यौ पलायमानौ चिरमात्मानं गतिविशेषविज्ञानैः कुटिलचारेण रक्षन्तौ जाले पतितौ, व्यापादितौ च।

अनुवाद :– अतः तुम्हें कहीं अन्यत्र नहीं जाना चाहिए। मैं अपनी सदबुद्धि से तुम्हारी रक्षा करूँगा। शतबुद्धि की बात सुनकर मेंढक ने कहा–भाईयों मैं एक ही बुद्धि वाला हूँ और यहाँ बुद्धिमत्ता यह है कि मैं यहाँ से भाग जाऊँ। इसलिए मैं आज ही अपनी पत्नी सहित अन्य दूसरे जलाशय में चला जाऊँगा। ऐसा कहकर वह मेंढक उसी रात्रि में किसी दूसरे जलाशय में चला गया। अगले दिन प्रभात होते ही मछुआरों ने आकर उस जलाशय के छोटे तथा मझले एवं बड़े–बड़े सभी जलचरों, मछलियों, कुछुओं, मेंढकों तथा केकड़ों आदि को पकड़ लिया। शतबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि भी अपनी–अपनी पत्नियों सहित इधर–उधर भाग कर जल के अन्दर विभिन्न कलाओं द्वारा अपनी टेढ़ी–मेढ़ी चालों से बहुत समय तक अपनी रक्षा करते रहे। परन्तु अन्त में मल्लाहों के जाल में फँसे और मारे गये।

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

अथऽपराहणसमये प्रहष्टास्ते धीवरः स्वगृहं प्रति प्रस्थिताः। गुरुत्वाच्चैकेन शतबुद्धिः स्कन्धे कृतः। सहस्त्रबुद्धिः प्रलम्बमानो नीयते। ततश्च वापीकण्ठोपगतेन मण्डूकेन तौ तथा नीयमानौ दृष्ट्वा अभिहिता पत्नी–प्रिये! पश्य पश्य–शतबुद्धिः शिरस्थेऽयं, लम्बते च सहस्त्रधीः। एकबुद्धिरहं भद्रे! क्रीडामि विमले जले।।'' अतश्च वरं बुद्धिर्न सा विद्या यदभ्वतोक्तं तत्रेयं मे मतिर्यत् न एकान्तेन बुद्धिरपि प्रमाणम्। सुवर्णसिद्धिः प्राह–यद्यप्येतदस्ति, तथाऽपि मित्रवचनं न लंघनीयम्। परं किं क्रियते, निवारितोऽपि मया न स्थितोऽसि, अतिलौल्यात् विद्याहङ्. काराच्च। अथवा साध्विदमुच्यते–

अनुवाद :– तत्पश्चात् सॉयकाल हाने से पहले वे सभी मल्लाह प्रसन्न मन से अपने घर

की ओर जाने लगे। तब एक ने भारी होने के कारण शतबुद्धि को कंधों पर रख लिया और सहस्त्रबुद्धि को लटका लिया, तब जलाशय के किनारे पर बैठे हुए मेंढक ने उन्हें मल्लाहों द्वारा ले जाते देखकर अपनी पत्नी से कहा–प्रिय, देखो–देखो–यह सिर पर शतबुद्धि है और जो लटक रहा है वह सहसत्रबुद्धि है और भद्रे, देखो मैं एकबुद्धि से निर्मल जल में आनन्द होकर विहार कर रहा हूँ। इसलिए मैं कहता हूँ विद्या की अपेक्षा बुद्धि अच्छी है, यह जो अपने कहा है, उस संदर्भ में मेरा विचार है कि अकेली बुद्धि से ही कार्य सिद्धि में प्रमाण नहीं है। इसके पश्चात् सुवर्ण सिद्धि ने कहा–यद्यपि ऐसा है तथापि आपको मित्र के वचनों के उल्लंघन नहीं करना चाहिए था पर अब क्या किया जा सकता है। मेरे मना करने पर भी आपने लालच के वशीभूत होकर तथा विद्या के घमण्ड में चूर होने से मेरा कहा नहीं माना। अथवा यह ठीक ही कहा गया है–?

<u>श्लोक :–</u> **साधु मातुल् गीतेन, मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः।**

अपूर्वोऽयं मणिर्बद्धः सम्प्राप्तं गीतलक्षणम्।। 5।।

<u>शब्दार्थ :–</u> हे मातुल = हे मामा, गीतेन = गाने से, साधु = बहुत हो गया, बस, (इति = ऐसा), मया = मेरे द्वारा, प्रोक्तः = कहे जाने पर, अपि = भी, (भवान् = आप), न = नहीं, स्थितः =ठहरे। (अतः = इसलिये), अयम् = यह, अपूर्व : = अद्भुत, मणिः= हार, (गले = कण्ठ में), बद्धः = बाँध दिया गया है। (अब आपने) गाने का, लक्षणम् = प्रमाण, सम्प्राप्तम् = पा लिया।

<u>अनुवाद :–</u> हे मामा! ठीक है आप मेरे रोकने पर भी गाना गाने से नहीं रूके। अब इस अपूर्व मणि को लटका लिये हो अतः ठीक हुआ जो तुम्हें अपने गाने का उचित पुरस्कार प्राप्त हो गया।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक मे रासभ श्रृंगाल कथा की और संकेत किया गया है कि जो व्यक्ति मित्र को बात न मानकर अपनी मन मानी करता है उसे अन्त में पछताना पड़ता है। जैसे खेत के रक्षक द्वारा गधे के गले में ओखल बॉध दिये जाने पर गीदड ने गधे से कहा कि हे – मामा मेरे द्वारा तुम्हें अनेक बार खेत में गीत गाने से रोका गया किन्तु अपने मधुर स्वर की गलत–फहमी एवं अहंकार के कारण तुमने मेरा कहना नहीं माना। जिसके परिणाम स्वरुप यह ओखल मानो मणिरुप में तुम्हारे गले में बॉध दिया गया हैं।

————————

7. रासभ–श्रृगाल–कथा
(गदहे और सियार की कथा)

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने उद्धतो नाम गर्दभः प्रतिवसति स्म। सः सदैव रजकगृहे भारोद्वहनं कृत्वा रात्रौ स्वेच्छया पर्यटति। ततः प्रत्यूषे बन्धनभयात्स्वयमेव रजकगृहमायाति। रजकोऽपि ततस्तं बन्धनेन नियुनक्ति। अथ तस्य रात्रौ क्षेत्राणि पर्यटतः, कदाचिच्छृगालेन सह मैत्री सञ्जाता। स च पीवरत्वाद् वृतिभङ्गं कृत्वा कर्कटिकाक्षेत्रेश्रृगालसहितः प्रविशति। एवं तौ यदृच्छया चिर्भटिका भक्षणं कृत्वा, प्रत्यहं प्रत्यूषे स्वस्थानं व्रजतः। अथ कदाचितेन मदोद्धतेन रासभेन क्षेत्रमध्यस्थितेनश्रृगालोऽभिहितः–भोः भगिनीसुत! पश्य–पश्य, अतीव निर्मला रजनी, तदहं गीतं करिष्यामि तत्कथय कृतमेन रागेण करोमि''?

सप्रसंग :– प्रस्तुत गद्य अपरीक्षितकारकम् नामक पञ्चमतन्त्रम् के ''पञ्चतन्त्र'' नामक ग्रन्थ की ''रासभ–श्रृगाल'' कथा से उद्धृत् है। इसके रचयिता श्री विष्णु शर्मा जी हैं। इस गद्य में गधे द्वारा रात्रि में खेतो के बीच गीत गाने की कथा प्राप्त होती है।

अनुवाद :– किसी जगह (स्थान) पर उद्धत नामक गधा रहता था। हमेशा ही धोबी के घर दिनभर भार ढोने के पश्चात् रात में स्वेच्छा से इधर–उधर घूमा करता था। फिर प्रातः होते ही स्वयं को बांधे जाने के डर से स्वयं घर आ जाता था और धोबी भी उसे बांध देता था। एक दिन रात के समय खेतों में घूमते हुए उसकी दोस्ती एक सियार से हो गई। वह गधा स्थूलकाय हो जाने के कारण खेत की बाड़ तोड़ कर खेत में घुस जाता था। फिर वह और सियार साथ–साथ ककड़ी खाते। उसके पश्चात् प्रातः होते ही दानों अपने अपने स्थान पर चले जाते थे। किसी दिन उस उन्मत्त गधे ने खेत के मध्य में ही उस सियार से कहा–हे भाञ्जे, देखो कैसी सुहावनी रात है। मेरा मन गीत–गाना चाहता है, बोलो किस राग में गाना गाऊँ?

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

स आह–माम! किमनेन वृथाऽनर्थप्रचालनेन? यतश्चौरकर्मप्रवृतौवावाम् निभृतैश्च चौरजारैरत्र स्थातव्यम्। उक्त च–

अनुवाद :– तब सियार ने कहा– मामा क्यों व्यर्थ में ही विपत्तियों को बुला रहे हो। इस समय हम चोरी के कार्य में प्रवृत्त है और चोर और व्याभिचारी को हमेशा चुपचाप छिपे ही रहना चाहिए, कहा भी गया है–

श्लोक :– कासयुक्तस्यजेच्चौर्यं निद्रालुक्षचेत्स पुंश्चलीम्।

जिह्वालौल्यं रुजाक्रान्तो जीवितं योऽत्र वाञ्छति।। 1।।

शब्दार्थ :– (यदि = यदि), अत्र = इस जगत में, जीवितम् = जीवन, वाञ्छति = चाहता है, (तर्हि = तो), यः = जो, कासयुक्तः = खॉसी वाला, जिसको खाँसी आ रही है, (सः = वह), चौर्यम् = चोरी, त्यजेत् = त्याग दे, निद्रालुः =निद्रा के वश में रहने वाला व्यक्ति, पुंश्चलीम् = व्यभिचारिणी स्त्री को, पर–स्त्री गमन को, (त्यजेज् = त्याग दे), रुजाक्रान्तः = रोगी, जिह्वालौल्यम् = चटोरपन को, जीभ के लोभ को, (त्यजेत् = त्याग दे)।

अनुवाद :– इस संसार में जो मनुष्य जीने की इच्छा रखता है, उसे यदि खाँसी का रोग हो तो उसे चोरी नहीं करनी चाहिए। सोने वाले व्यक्ति को परस्त्रीगमन नहीं करना चाहिए और रोगी को जीभ का स्वाद त्याग देना चाहिए।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में जीवन (आयु) चाहने वाले व्यक्ति को निम्न सलाह दी गई है। यदि उसे खाँसी हो तो कभी भी चोरी नहीं करनी चाहिए। यदि नींद अधिक आती हो तो परस्त्रीगमन अर्थात् व्याभिचारिणी के सम्पर्क में नहीं रहना चाहिए। यदि रोग से ग्रस्त हो तो जीभ के स्वाद् अर्थात् अनके प्रकार के व्यञ्जनों को नहीं खाना चाहिए।

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

अपरं त्वदीयं गीतं न मधुरस्वरम्। शंखशब्दानुकारं दूरादपि श्रूयते। क्षेत्रे रक्षापुरुषाः सुप्ताः सन्ति। ते उत्थाय वधं बन्धनं वा करिश्यन्ति। तद्भक्षय तावदमृतमयीश्चिर्भटीः। मा त्वमत्र गीतव्यापारपरो भव। तच्छुत्वा रासभ आह– भोः, वनाश्रयत्वात्वं गीतरसं न वेत्सि, तेनैतद् ब्रवीषि। उक्त च–

अनुवाद :– दसरी बात और है कि तुम्हारा गाना मधुर नहीं होता वह केवल शंख के शब्द के समान दूर से ही सुनाइ पड़ने लगता है और यहाँ पर खेत में खेत के रखवाले रक्षक पुरुष सोये हुए हैं। वे जागकर तुरन्त ही मारने लगेंगे या बांध देंगे। इसलिए चुपचाप अमृत के समान एवं स्वादिष्ट ककड़ी को खाओ। यहाँ पर गाना आदि मत गाओ तब सियार की बात सुनकर गधे न कहा–तुम जंगली होने के कारण गीत का आनन्द नहीं जानते। इसीलिए ऐसा बोल रहे हो, कहा भी गया है–

श्लोक :– शरज्ज्योत्स्नाहते दूरं तमसि प्रियसन्निधौ।

धन्यानां विशति श्रोत्रे गीतझंकरजा सुधा।। 2।।

<u>शब्दार्थ :–</u> तमसि = अन्धकार के, दूरम् = दूर तक, षरज्जयोत्स्नाहते = षरद् ऋतु की चाँदनी के द्वारा दूर कर दिये जाने पर, प्रियसन्निधौ = अपने प्रिय व्यक्ति की उपस्थिति में, धन्यानाम् = भाग्यवान लोगों के, श्रोत्रे = कान में, गीतझंकारजा = गीत के झंकार से पैदा, सुधा = अमृत, विषति = घुसता है।

<u>अनुवाद :–</u> शरदकाल की चांदनी द्वारा जब रात्रि का अंधेरा दूर हो जाए और फिर अपने प्रियतम का सानिध्य भी हो तो उस समय भाग्यशाली लोगों के ही कान में संगीत की झंकार का आनन्द प्रवेश करता है।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक (पद्य) में संगीत प्रेम अभिव्यक्त हुआ और भाग्यशाली कहा गया है जिनका प्रिय पास में हो एवं शरदकालीन पूर्णचन्द्रमा की मनभावन चाँदनी चारो ओर छिटकी हुई हो तथा सरम्भ वातावारण में गीत की मधुर ध्वनि कानों में पड़ती हो। निश्चय ही वह व्यक्ति भाग्यवान है।

<u>मूल पाठ (गद्य भाग) :–</u>

श्रृगाल आह–माम! अस्त्येतत्, परं न वेत्सि त्वं गीतम्। केवलमुन्नदसि। तत्कि तेन स्वार्थभ्रंषकेन?

रासभ आह– धिड्.मूर्ख! किमहं न जानामि गीतम्? तद्यथा तस्य भेदान्श्रृणु–

<u>अनुवाद :–</u> गीदड ने कहा–मामा! तुम्हारा कहना उचित है, परन्तु हम पर गाने की विधि नहीं जानते केवल जोर–जोर से चिल्लाते हो इसीलिए बेकार में ही अपने स्वार्थ की हानि मत करो। तब गधे ने कहा–मूर्ख! तुम्हे लानत है। क्या मैं गीत गाना नहीं जानता। मुझसे गीत के भेदों को सुनो–

<u>श्लोक :–</u> **सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छना श्चेकविंशतिः।**

तानास्त्वेकोनपञ्चाशत्तिस्रो मात्रा लयास्त्रयः।। 3।।

<u>शब्दार्थ :–</u> सप्त = सात, स्वराः = स्वर, त्रयः = तीन, ग्रामाः = ग्राम, एकविंशति = इक्कीस, मूर्च्छनाः = मूर्च्छनाएँ, एकोनपञ्चाशत् = उनचास, तानाः = ताने, तिस्त्रः = तीन, मात्राः = मात्राएँ, च = तथा, त्रयः = तीन, लयाः = लय, (भवन्ति = होते हैं)।

<u>अनुवाद :–</u> संगीत शास्त्र के अनुसार सात स्वर, तीन ग्राम, इक्कीस मूर्च्छनाएं, उनचास ताल, तीन मात्राए तथा तीन लय होते हैं।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में गीत के विषय में शास्त्रीय ज्ञान में प्रदर्शित करते हुए गधा गीदड़ से कहता है कि गीत में षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत तथा निषाद नामक 7 स्वर और षड्ज, मध्यम एवं गान्धार नामक 3 ग्राम इसके अतिरिक्त 7 X 3 = 21 प्रकारो से भी भली भाँति परिचित हूँ साथ ही 49 तालों, हस्व, दीर्घ, प्लुत तीन 3 प्रकार की मात्राओं और 3 लयो से भी परिचित हूँ, फिर भी तुम कहते हस्व हो कि मैं संगीत को नहीं जानता।

<u>श्लोक :–</u> स्थानत्रयं यतीनां चषडास्यानि रसा नव।

रागाः षट्त्रिंषतिर्भावा श्च्त्वारिंशत्ततः स्मृताः।। 4।।

<u>शब्दार्थ :–</u> स्थानत्रयम् = स्वरों के तीन उद्गम स्थल होते हैं, यतीनाम् = यतियों के, च = भी, षट् = छः, आस्यानि = आस्य होते हैं, नव = नौ, रसाः रस, षड्विंशतिः = छब्बीस, रागाः = राग, ततः = फिर, और, चत्वारिंशत् =चालीस, भावाः = भाव, स्मृताः = याद किए जाते हैं।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक में गधा गीदड़ से कहता है कि स्वरों के उच्चारण के 3 स्थान एवं 3 प्रकार की ही यति को भी मैं जानता हूँ। इसी तरह राग के 6 मुख तथा श्रृंगार, हास्य, करूण, रौद्र, वीर भयानक, बिभत्स, अद्भुत और शान्त नामक 9 रस, 36 राग तथा 40 भाव जो संगीत शास्त्र में कहे गये हैं उन्हें भी भली भान्ति जानता हूँ। फिर भी तुम मुझ पर शंका करते हो।

<u>श्लोक :–</u> पञ्चशीत्यधिकं ह्येतद्गीताड्.गानां शतं स्मृतम्।

स्वयमेवपुरा प्रोक्तं भरतेन श्रुतेः परम्।। 5।।

<u>शब्दार्थ :–</u> एतत् = यह, हि = निश्चय ही, गीताड्.गानाम् = गीत के भेदों का, पञ्चशीत्यधिकम् = पचासी से अधिक, शतम् = एक सौ, स्मृतम् = याद किए जाते हैं। (एतत् = यह, सर्वम् = सब कुछ), श्रुतेः = वेदों का, परम् = सार है,(तथा = और), पुरा =प्राचीनकालः में, स्वयमेव = स्वयं ही, भरतेन = भरत मुनि द्वारा, प्रोक्तम् = कहा गया है।

<u>अनुवाद :–</u> भरत मुनि न स्वयं मुख से संगीत शास्त्र के 185 (एक सौ पचासी) भेद कहे हैं। जो पंचम वेदस्वरूप संगीत शास्त्र के सर्वस्व है और सुनने में सुखद होते हैं।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत श्लोक मे गीत के अंगों की संख्या कुल मिलाकर–185 बताई गई हैं।

जिसका विवरण प्रसिद्ध नाट्यशास्त्रीय आचार्य भरतमुनि ने अपने नाट्यशास्त्र नामक ग्रन्थ में किया है। और इस संगीतशास्त्र को वेदों का सार स्वरुप पञ्चमवेद भी माना जाता है जो कानों को सुनने में अत्यन्त प्रिय लगता है।

<u>श्लोक :–</u> नान्यद्गीतात्प्रियं लोके देवानामपि दृश्यते।

शुष्कस्नायुस्वराह्वादात् त्र्यक्षं जग्राह रावणः।। 6।।

<u>शब्दार्थ :–</u> लोके = जगत में, देवानाम् = देवताओं को, बहप = भी, गीतात् = गीत से बढ़कर, अन्यत् = दूसरी वस्तु, प्रियम = प्रिय, न = नहीं, दृश्यते = दिखलायी पड़ती। (पश्य = देखो), रावणः = रावण ने, शुष्क–स्नायु–स्वराहादात् = तपस्या से सूखे कण्ठ के स्वरों के आन्नद से, त्र्यक्षम् = भगवान् शिव को, जग्राह = मोहित कर लिया था।

<u>अनुवाद :–</u> इस संसार में देवता भी संगीत से ज्यादा प्रिय किसी अन्य वस्तु को नहीं मानते। देखो रावण ने तपस्या के कारण सूखे हुए गले की नीरस आवाज से भी स्तुति वन्दना करके शिव भगवान को प्रसन्न कर लिया था।

<u>व्याख्या :–</u> प्रस्तुत पद्य में संगीत से प्रिय कोई वस्तु नहीं है ऐसा विवरण प्राप्त होता है। मृत्युलोक में ही नहीं अपितु स्वर्गलोक में रहने वाले देवताओं का भी संगीत के प्रति आकर्षण देखा जा सकता है। इसके अतिरिक्त रावण ने भी संगति के बल पर सूखी तांत पर मधुर स्वर लहरी उत्पन्न कर भगवन शिव को प्रसन्न कर लंका में रहने का वरदान प्राप्त कर लिया था।

<u>मूल पाठ (गद्य भाग) :–</u>

तत्कथं भगिनीसुत! मामनभिज्ञं वदन्निवारयसि? श्रृगाल आह–माम! यद्येवं तदहं तावद् वृतेर्द्वारस्थितः क्षेत्रपालमवलोकयामि, त्वं पुनः स्वेच्छया गीतं कुरु। तथाऽनुष्ठिते रासभरटनमाकर्ण्य, क्षेत्रपः क्रोधात् दन्तान्ऽार्षयन् प्रधावितः। यावद्रासभो दृष्टसतावल्लगुडप्रहारैस्तथा हतो, यथा प्रताडितो भूपृष्ठे पतितः। ततश्च सच्छिद्रमुलूखलं तस्य गले बद्ध्वा क्षेत्रपालः प्रसुप्तः। रासभोऽपि स्वजातिस्वभावाद् गतवेदनः क्षणेनाऽभ्युत्थितः। उक्तं च–

<u>अनुवाद :–</u> गधे न पुनः कहा– इतना ज्ञान होने के बाद भी तुम मुझे संगीत का अनभिज्ञ बताकर गाना गाने से मना कर रहे हो, तब सियार ने कहा मामा! यदि ऐसा है जो मैं खेत के द्वार से बाहर बैठकर इस खेत के रक्षक किसान को देखता हूँ। आप इच्छानुसार गीत गाये। इस प्रकार सियार के बाहर जाने के पश्चात् गधे ने जारे–जोर से रेंकना शुरु कर

दिया। गधे की आवाज सुनकर किसान क्रोध से भरकर दाँतों को पीसता हुआ दौड़ा, वहाँ पर पहुँचने पर गधे को देख कर डण्डे से उसे इतना मारा कि वह आहत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा, फिर उसके गले में एक छिद्रयुक्त उलूखल बांध कर सो गया। इधर अपनी जातिगत स्वभाव के कारण वह गधा भी उस मार की पीड़ा को कुछ क्षण बाद भूलकर उठकर खड़ा हो गया। कहा भी गया है–

श्लोक :– सरमेयस्य चाऽश्वस्य रासभस्य विशेषतः।

मुहूर्तात्परतो न स्यात्प्रहारजनिता व्यथा।। 7।।

शब्दार्थ :– सारमेयस्य = कुत्ते की, अश्वस्य = घोड़े की, च = और, विशेषतः = विशेष रुप से, रासभस्य = गदहे की, प्रहारजनिता = मारने से होने वाली, व्यथा = पीड़ा, मुहूर्तात् = एक मुहूर्त से, परमः = आगे, न = नहीं, स्यात् = रहती।

अनुवाद :– कुत्ते, घोड़े विशेषकर गधे को मारने से होने वाली पीड़ा (वेदना) एक मुहुर्त से अर्थात क्षणभर से ज्यादा नहीं रहती।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक कुत्ते एवं घोड़े के शरीर की प्रकृति को एक जैसा बताने के साथ–साथ गघे के शरीर की विशेषता का कथन किया गया है कि दोनो की अपेक्षा गधा तो और भी जल्दी डण्डे आदि से की गई पीड़ा को भूल जाता है।

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

ततस्तमूेवोलूखलमादाय वृतिं चूर्णयित्वा पलायितुमारब्धः। अत्रान्तरे श्रृगालोऽपि दूरादेव तं दृष्ट्वा सस्मिमाह–

अनुवाद :– तत्पश्चात् उस गधे ने उलूखल को बंधे–बंधे ही खेत की बाड़ तोड़कर दौड़ना प्रारम्भ किया। तब दूर से ही गधे को इस प्रकार भागते देखकर गीदड ने हँसते हुए कहा–

श्लोक :– साधु मातुल! गीतेन मया प्रोक्तोऽपि न स्थितः।

अपूर्वोऽयं मणिर्बद्धः सम्प्राप्तं गीतलक्षणम्।। 8।।

शब्दार्थ :– मातुलः = मामाजी, गीतेन = गाने से, साधु = बहुत अच्छाः, मया = मेरा द्वारा, प्रोक्तः = कहने पर, अपि = भी, (भवान् = आप), न = नहीं, स्थितः= रुके। अतएव

= इसीलिये, साम्प्रतम् = इस समय, अयम् = यह, अपूर्वः = अद्भुत, गीतलक्षणः = गाने का प्रमाण–पत्र, बद्धः = (गले में) बँधा हुआ, सम्प्राप्तः = पा गये हो।

अनुवाद :– हे मामा! ठीक है मैंने तुम्हें गाना गाने से मना किया था, परन्तु तुम अपना गाना गाने का मोह छोड़ नहीं पाए। इस समय तुम्हारे गले में यह अपूर्व मणि बंधी हुई है, जो तुम्हारे गीत के पुरस्कार में प्राप्त हुई है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में गीदड गधे से कह रहा है कि मेरे द्वारा बार–बार मना करने पर भी तुम गीत गाने से नहीं रूके और पकड़े गये हो। लोगों द्वारा यह अनोखी मणि तुम्हारे गले का हार बन गई है। इसे ही तुम गीत गाने का पुरस्कार समझो।

मूल पाठ (गद्य भाग) :–

तद्भ्वानपि मया वार्यमाणोऽपि न स्थितः। तत् श्रुत्वा चक्रधर आह– भो मित्र सत्यमेतत्। अथवा साध्विदमुच्यते–

अनुवाद :– आप भी इसी प्रकार मेरे द्वारा रोके जाने पर भी नहीं रुके थे। यह सुनकर चक्रधर ने कहा– मित्र! सत्य कहते हो, अथवा यह ठीक ही कहा गया है–

श्लोक :– **यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा मित्रोक्तं न करोति यः।**

स एव निधनं याति, यथा मन्थरकौलिकः।। 9।।

शब्दार्थ :– यस्य = जिसके पास, स्वयम् = खुद, प्रज्ञा = मति, नास्ति = नहीं होती हैं, यः = जो, मित्रोक्तम = मित्र के कथन को, न = नहीं, करोति = करता है, सः = वह, मन्थरकौलिकः = मन्थर नामक जुलाहे की, यथा = भाँति, निधनम् = मृत्यु को, याति = चला जाता है।

अनुवाद :– जो स्वयं बुद्धिमान नहीं है और जो मित्र की बात नहीं मानता, वह मन्थर नामक जुलाहे के समान मृत्यु को प्राप्त होता है।

व्याख्या :– प्रस्तुत श्लोक में मन्थरक कौलिक कथा को ओर संकेत किया गया है कि जिस प्रकार मन्थरक नामक जुलाहे के पास न तो अपनी बुद्धि थी और न ही उसने अपने मित्र की बात मानी और मृत्यु को प्राप्त हुआ। यदि व्यक्ति के पास अपनी बुद्धि अर्थात् विवके न हो, साथ ही मित्र के परामर्श को भी न सुने तो उसका विनाश निश्चित है।

<u>अभ्यास कार्य :–</u>

प्र॰1 निम्नलिखित श्लोकों का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद लिखें ?

क) यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा मित्रोक्तं न करोति यः।

स एव निधनं याति, यथा मन्थरकौलिकः।।

____

____

____

____

____

ख) शरज्ज्योत्स्नाहते दूरं तमसि प्रियसन्निधौ।

धन्यानां विशति श्रोत्रे गीतझंकरजा सुधा।।

____

____

____

____

____

प्र॰2 निम्नलिखित गद्य का हिन्दी अनुवाद करें ।

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने उद्धतो नाम गर्दभः प्रतिवसति स्म। सः सदैव रजकगृहे भारोद्वहनं कृत्वा रात्रौ स्वेच्छया पर्यटति। ततः प्रत्यूषे बन्धनभयात्स्वयमेव रजकगृहमायाति। रजकोऽपि ततस्तं बन्धनेन नियुनक्ति। अथ तस्य रात्रौ क्षेत्राणि पर्यटतः, कदाचिच्छृगालेन सह मैत्री सञ्जाता। स च पीवरत्वाद् वृतिभङ्गं कृत्वा कर्कटिकाक्षेत्रेश्रृगालसहितः प्रविशति। एवं तौ

यदृच्छया चिर्भटिका भक्षणं कृत्वा, प्रत्यहं प्रत्यूषे स्वस्थानं व्रजतः। अथ कदाचितेन मदोद्धतेन रासभेन क्षेत्रमध्यस्थितेनश्रृगालोऽभिहितः–भोः भगिनीसुत! पश्य–पश्य, अतीव निर्मला रजनी, तदहं गीतं करिष्यामि तत्कथय कतमेन रागेण करोमि''?

____

____

____

____

____

✠✠✠✠✠✠✠

2.7.1 प्रस्तावना

2.7.2 उद्देश्य

2.7.3 मन्थरकौलिक कथा तथा सोमशर्म–पितृ–कथा का अनुवाद एवं व्याख्या।

2.7.4 सारांश

2.7.5 निष्कर्ष

2.7.6 अभ्यासार्थ प्रश्न :–

2.7.1 प्रस्तावना :–

भारतीय कथा साहित्य अत्यन्त समृद्ध साहित्य रहा है। पशु–पक्षियों के माध्यम से सदाचार,राजनीति एवं लोकव्यवहार की शिक्षा प्रदान करना इसका प्रमुख उद्देश्य रहा है। जम्मू विश्वविद्यालय के प्रथम वर्ष के प्रथम सेमिस्टर में कथा सहित्य के अन्तर्गत 'पञ्चतन्त्र' का समावेश किया गया है। 'पञ्चतन्त्र' का संस्कृत नीति कथा–साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। 'पञ्चतन्त्र' में नीति का उपदेश करवाने वाली पूरी कथा प्रायः गद्य में दी जाती है, परन्तु उसकी समाप्ति एवं उससे मिलने वाली शिक्षा या नैतिक उपदेश पद्यों में होता है यह पाठ विष्णशर्मा द्वारा रचित ग्रन्थ 'पञ्चतन्त्र' के पञ्चमतन्त्र 'अपरीक्षितकारक' में से लिया गया है । प्रस्तुत पाठ के अर्न्तगत मन्थरकौलिक कथा तथा 'सोमशर्म–पितृ–कथा' का उल्लेख है।

मन्थरकौलिक कथा में मित्र की बात न मानने वाले जुलाहे की मृत्यु का वर्णन है जबकि 'सोमशर्म–पितृ–कथा' में अनागत (न आयी हुई विपति) की चिन्ता करने वाले

व्यक्ति का उपहास किया गया है ।

2.7.2 उद्‌देश्य

- विद्यार्थियों को लोकव्यवहार एवं नैतिक शिक्षा प्रदान करना।
- पशु–पक्षियों की रोचक–कथाओं के माध्यम से उनमें संस्कृत–साहित्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना।
- सरल संस्कृत भाषा के माध्यम से विद्यार्थियों में गद्य तथा पद्य में रूचि उत्पन्न करना।
- संस्कृत गद्य एवं पद्य का लय के अनुसार पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना।
- संस्कृत भाषा का मातृभाषा एव मातृभाषा को संस्कृत में अनूदित करने की योग्यता उत्पन्न करना।
- संस्कृत भाषा में शुद्ध वाक्य रचना, पत्र लेखन, संवाद –प्रेषन आदि की योग्यता उत्पन्न करना।
- विविध परिस्थितियों के अनुकूल मानवीय व्यवहार से छात्रों को परिचित करबाना।
- सरल एवं कठिन सभी प्रकार के गद्यों को उचित विराम एवं उच्चारण सहित पढ़ने की योग्यता उत्पन्न करना।
- आवश्यकतानुसार उचित अवसरों पर संस्कृत भाषा में बोलने की क्षमता प्रदान करना।
- छात्रों में 'संस्कृत शब्द –भण्डार में' वृद्धि करना।

2.7.3 मन्थरकौलिक कथा तथा सोमशर्म–पितृ–कथा का अनुवाद एवं व्याख्या।

मन्थरकौलिक कथा

''कस्मिंश्चिधिष्ठाने मन्थरको नामक कौलिक : प्रतिवसति स्म। तस्य कदाचित् पट्कर्माणि कुर्वतः सर्वपट्कर्मकाष्ठानि भग्नानि । ततः स कुठारमादाय वने काष्ठार्थ गतः । स च समुद्रतटं यावद्भ्रमन् प्रयातः तवात्तत्र शिंशपापादपस्तेन दृष्टः । ततश्चिन्तितवान्– ''महानयं वृक्षो दृश्यते । तदनेन कर्तितेन प्रभूतानि पटकर्मोपकरणानि भविष्यन्ति ।

इत्यवधार्य तस्योपरि कुठारमुत्क्षिण्तवान् । अथ तत्र वृक्षे कश्चिद्व्यन्तर : समाश्रित आसीत् । अथ तेनाभिहितम् – " भो : मदाश्रयोऽयं पादपः सर्वथा रक्षणीयः । । यतोऽहमत्र महासौख्येन तिष्ठामि समुद्रकल्लोल स्पर्शनाच्छीत वायुनाप्यायितः । "

कौलिक आह – " भोः! किमहं करोमि, दारूसामग्रीं बिना मे कुटुम्बं बुमुक्षयापीडयते । तस्मादन्यत्र शीघ्रं गम्यताम् । अहमेनं कर्त्तयिष्यामि । "

अनुवाद :– किसी स्थान में मन्थरक नामक जुलाहा रहता था । वस्त्रों को बनाते समय कभी उसके वस्त्र वनाने के काम आने वाले सभी यन्त्र टूट गये। तब वह कुल्हाड़ी लेकर लकड़ी लेने के लिए वन में गया । घूमते हुए वह समुद्र तट पर जा रहा था , तभी उसने शीशम का वृक्ष देखा । उसने सोचा कि " यह वृक्ष बहुत बड़ा दिखाई दे रहा है, ' अतः इसके काटने से वस्त्र निर्माण के काम में आने वाले बहुत से औजार बन जाएँगे । " ऐसा सोचकर उसने वृक्ष के ऊपर कुल्हाड़ी चलाई । किन्तु इस वृक्ष पर कोई यक्ष रहता था । उसने कहा– " अरे ! यह वृक्ष मेरा निवास स्थान है, और सब प्रकार से रक्षा योग्य है, क्योंकि यहाँ मैं समुद्र की लहरों के स्पर्श से शीतल वायु द्वारा तृप्त हुआ सुखपूर्वक रहता हूँ । जुलाहे ने कहा – " अरे ! मैं क्या करूँ । काष्ठ सामग्री के बिना मेरा परिवार भूख से पीड़ित है । इसलिए तुम कही और चले जाओ । मैं इसे काटूँगाा ।

व्यन्तर आह – " भोः ! तुष्टस्तवाहम् । तत्प्रर्थ्यतामभीष्टं किञ्चित् । रक्षैनं पादपम् ।" इति ।

कौलिक आह – " यद्येवं, तदहं स्वगृहं गत्वा स्वमित्रं स्वभार्याञ्च पृष्टवा आगमिष्यामि, ततस्त्वया देयम् ।"

अथ " तथा इति व्यन्तेरण प्रतिज्ञाते, स कौलिकः प्रहष्ट : स्वगृहं प्रतिनिवृत्तो यावदग्रे गच्छति, तावद्ग्रामप्रवेशे निजसुहदं नापितमपश्यत् ।

ततः तस्य व्यन्तरवाक्यं निवेदयामास यत – " अहो मित्र ! मम कश्चिद् व्यन्तरः सिद्धः ।

तत्कथय कि प्रार्थये ? अहं त्वां प्रष्टुमागतः ।"

नापित आह – " भद् ! यद्येवं ; तद्राज्यं प्रार्थयस्व, येन त्वं राजा भवसि, अहं

त्वन्मन्त्री च । द्वावपीह, सुखमनुभूय, परलोकसुखमनुभवाव :। उक्त ञ्च –

अनुवाद :– यक्ष बोला '' मैं तुमसे सन्तुष्ट हूॅ तुम कुछ इच्छित वस्तु मॉग लो, किन्तु इस वृक्ष की रक्षा करो ।''

जुलाहा बोला – '' यदि ऐसी बात है तो मैं घर जाकर अपने मित्र तथा अपनी पत्नी से पूछकर आता हूॅ , उसके बाद ही तुम मुझे देना । ''

यक्ष द्वारा उसकी बात स्वीकार कर लेने पर, प्रसन्न हुआ वह जुलाहा अपने घर लौट गया । जैसे ही वह आगे गया, उसने गॉव के बाहर अपने मित्र नाई को देखा । उसने उससे यक्ष की सारी बात बतायी की '' अरे मित्र ! मुझ पर कोई यक्ष प्रसन्न है, बताऔ, मैं क्या मॉगू ? मैं तुमसे पूछने आया हूॅ ।

नाई बोला –भाई! यदि ऐसा है तो तुम राज्य मांग लो, जिससे तुम राजा और मैं तुम्हारा मन्त्री बन जाउगां । दोनों ही इस संसार में सुखों का अनुभव करके परलोक के सुखों का अनुभव करेंगे । कहा भी है–

राजा दानपरों नित्यमिह कीर्तिमवाप्य च ।

तत्प्रभावात्पुन : स्वर्गे स्पर्धते त्रिदशैः सह ।

अनुवाद :– नित्य दान देने वाला राजा इस लोक में कीर्ति प्राप्त करके, उसके प्रभाव से फिर स्वर्ग में भी देवताओं के साथ स्पर्धा करता है ।

भावार्थ यह है कि राजा के पास पर्याप्त धन होने से उसे लोक में यश की प्राप्ति तो होती ही है, साथ ही उसके द्वारा दिये गये दान के प्रभाव से मरने के बाद भी वह स्वर्ग लोक में जाकर देवताओं के समान सुखों का आनन्द भोगता है ।

कौलिक आह – '' अस्त्येतत् तथापि गृहणीं पृच्छामि ।''

स आह – '' भद् ! शास्त्रविरूद्धमेतत् यत्स्त्रिया सह मन्त्र : । यतस्ताः स्वल्पमतयो भवन्ति । उक्तञ्चं

अनुवाद :– जुलाहे ने कहा –'' यह तो ठीक है , फिर भी पत्नी से पूछ लेता हूॅ । '' उसने कहा– '' भाई ! स्त्री के साथ परामर्श करना शास्त्रविरूद्ध है , क्योकि वे अल्पबुद्धि वाली होती है ।

कहा भी है –

भोजनाच्छादने दद्यात् ऋतुकाले च सड्.गमम् ।

भूषणाद्यं च नारीणां न ताभिर्मन्त्रयेत्सुधी :।।

अनुवाद : बुद्विमान् व्यक्ति स्त्रियों को भोजन और वस्त्र प्रदान करे तथा ऋतुकाल में सहवास का सुख भी दे एवं आभूषण आदि भी प्रदान करे, किन्तु उनके साथ विचार –विमर्श न करे ।

कवि कहता है कि समझदार व्यक्ति स्त्रियों को उनकी इच्छानुसार स्वादिष्ट भोजन एवं अच्छे–अच्छे वस्त्र प्रदान करे । साथ ही सन्तान आदि की उत्पत्ति के लिए सम्भोग सुख भी प्रदान करे, तथा सुन्दर आभूषण भी प्रदान करे, किन्तु किसी भी परिस्थिति में महत्त्वपूर्ण तथा गोपनीय विषयों में विचार – विमर्श न करे, क्योंकि वे अल्पबुद्वि वाली होती है।

यत्र स्त्री : यत्र कितवों बालो यत्र प्रशासिता ।

तदगृहं क्षयमायाति भार्गवो हीदमब्रवीत् ।।

अनुवाद :– जहॉ स्त्री, जहॉ धूर्त, जहॉ बालक शासन करने वाला होता है, वह घर निश्चय ही विनष्ट हो जाता है । यह आचार्य भार्गव ने कहा है ।

आचार्य भार्गव अथति् शुकाचार्य का कथन है कि जिस घर में बालक, स्त्री, अथवा धूर्त के इच्छानुसार सभी कार्य किये जाते हों, उस घर का विनाश निश्चित है ।

तावत्स्यात्सुप्रसन्नास्यस्तावद् गुरूजनें रतिः ।

पुरूषों योषितां यावन्न श्रृणोति वचो रह :।।

अनुवाद :– व्यक्ति तभी तक प्रसन्नचित्त तथा गुरूजनों के प्रति अनुरक्त रहता है , जब तक वह एकान्त मे स्त्रियों के वचन नही सुनता है ।

कवि कहता है, यदि व्यक्ति चाहता है कि वह सदैव प्रसन्न रहे, तथा गुरूजनों (बड़े–बूढ़ों) के प्रति उसका प्रेम बना रहे, तो उसे कभी एकान्त में स्त्रियों की बातों को नही सुनना चाहिये ।

एताः स्वार्थपरा नार्य : केवलं स्वसुखे रताः ।

न तासां वल्लभः कोऽपि सुतोऽपि स्वसुखं विना ।।

अनुवाद :– ये नारियॉ स्वार्थिनी, केवल अपने सुख में आसक्त रहने वाली होती है । अपने सुख के अभाव में उनका कोई भी यहॉ तक कि पुत्र भी प्रिय नही होता है । कवि कहता है कि स्त्रियॉ केवल अपने स्वार्थ को देखने वाली होती है ; उन्हे केवल अपना सुख ही प्रिय होता है । अपने सुख में बाधा उत्पन्न होने पर पर वे अपने पुत्र को भी महत्त्व प्रदान नही करती है ।

कौलिक आह – ''तथाऽपि प्रष्टव्या सा मया । यतः पतिव्रता सा । अपरं तामपृष्टवाऽहं न किञ्चित् करोमि ।'' एवं तमभिधाय सत्वरं गत्वा तामुवाच–''प्रिये ! अद्यास्माकं कश्चिद् व्यन्तरः सिद्धः । स वान्छितं प्रयच्छति, तदहं त्वां प्रष्टुमागतः । तत्कथय, किं प्रार्थये ? एष तावन्मम मित्रं नापितो वदत्येवं यत् – '' राज्यं प्रार्थयस्व ।'' साऽऽह – '' आर्यपुत्र ! का मतिर्नापितानाम् ? तन्न कार्यं तदूचः । उक्तञ्च –

अनुवाद :– जुलाहा बोला – '' फिर भी मुझे उससे पूछना चाहिये, क्योंकि वह पतिव्रता है । और मैं उससे पूछे विना कुछ भी नही करता हूॅ ।'' इस प्रकार उसे कहकर शीध्र जाकर पत्नी से बोला – '' प्रिय ! आज कोई यक्ष मुझ पर प्रसन्न है । वह मुझे इच्छित वस्तु प्रदान कर रहा है, अतः मैं तुमसे पूछने आया हूॅ । बोलो क्या मॉगू ? मेरा मित्र नाई कह रहा है – '' राज्य मॉग लो ।'' वह बोली – '' आर्य पुत्र ! नाइयों की क्या बुद्धि ? इसलिए उसका कहा मत मानो ।

कहा भी गया है ।

चारणैर्बन्दिभिनीचैर्नापितैर्बालकैरपि ।

न मन्त्रं मतिमान्कुर्यात् सार्ध भिक्षुभिरेव च ।।

अनुवाद :– बुद्विमान् व्यक्ति को चारणों (प्रशंसा करने वाले), बन्दियों, नीच पुरूषों, और नाईयों तथा भिक्षुओं के साथ किसी प्रकार का परामर्श नही करना चाहिये ।

अपरं महति क्लेशपरम्परैषा राज्यस्थितिः, सन्धिविग्रहयानासनसंश्रय : द्वैधीभावादिभिः कदाचित्पुरूषस्य सुखं न प्रयच्छतीति । यतः–

इसके अतिरिक्त राजव्यवस्था महान कष्टों से भरी होती है । इसमें सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीभाव आदि द्वारा कभी भी पुरूष को सुख प्राप्त नही होता है ।

यदैव राज्ये कियतेऽभिषेकस्तदैव याति व्यसनेषु बुद्धि : ।

घटा नृपाणामभिषेककाले सहाम्भसैवापमुद्‌गिरन्ति ।।

अनुवाद :– जब भी लोगों का राज्यभिषेक किया जाता है, तभी उनकी बुद्धि विपत्तियों में घिर जाती है । अभिषेक के समय ही घड़े जलों के साथ मानों उनके उपर विपत्तियों को उगल देते है ।

कवि का कहना है कि राज्यभिषेक के समय घड़ों द्वारा अनेक तीर्थो से लाया गया पवित्र जल राजाओ के सिर पर उड़ेला जाता है, वे घड़े जल के साथ –साथ वस्तुतः मुसीबतों को ही राजाओ के मस्तक पर उगल देते है । वस्तुत : राज्य प्राप्त करना जितना कठिन है, उससे कही अधिक कठिन है, उसका सन्चालन, पालन करना ।

रामस्य व्रजनं वने, निवसनं पाण्डोः सुतानां वने ,वृष्णीनां निधनं, नलस्य नृपते राज्यात्परिभ्रंशनम् ।

सौदासं तदवस्थमर्जुनवधं संचिन्त्य, लंकेश्वर, दृष्टवा राज्यकृते विडम्बनगतं, तस्मान्न तद्वाञ्छयेत् ।।

अनुवाद :– राम का वनवास पाण्डुपुत्रों का वन में निवास, यदुवशिंयो का विनाश, नल का राज्य से हटना, सौदास की वह अवस्था (अद्वितीय धनुर्धर) अर्जुन का वध, तथा राज्य के लिए लंका के राजा रावण की दुर्दशा को देखकर तो यही कहा जा सकता है कि व्यक्ति को राज्य की इच्छा नही करनी चाहिये ।

कवि ने यहॉ अनेक उदाहरणों के द्वारा यह स्पष्ट किया है कि बुद्विमान् व्यक्ति को कभी राज्य की इच्छा नही करनी चाहिये । क्योंकि यह आपत्तियों का द्वार तथा मन की शान्ति को हरने वाला है ।

यदर्थ भ्रातरः पुत्रा अपि वाञ्छन्ति ये निजाः ।

वधं राज्यकृतां राज्ञां तद्राज्यं दूरतस्त्यजेत् ।।

अनुवाद :– जो अपने भाई एवं पुत्र हैं ; वे भी जिसके लिए राजाओं का वध करना चाहते है, ऐसे राज्य को दूर से ही त्याग देना चाहिये ।

भावार्थ यह है कि राज्य कि प्राप्ति के लिए सगे भाई , जहॉ तक कि अपना पुत्र भी, भाईयों का अपने माता– पिता अथवा सगे– सम्बधियों आदि का वध कर डालते है । अतः ऐसे राज्य से दूर ही रहना चाहीये ।

कौलिक आह – '' सत्यमुक्तं भवत्या । तत्कथय किं प्रार्थये ? ''

साऽऽह – '' त्वं तावदेकं पटं नित्यमेव निष्पादयसि । तेन सर्वा व्ययशुद्धिः संपघते। इदानीं त्वमात्मनोडन्यद् बाहुयुगलं द्वितीयं शिरष्च याचस्व, येन पटद्वयं सम्पादयति, पुरतः पृष्ठतश्च । एकस्य मूल्येन गृहे यथापूर्व व्ययं सम्पादयिष्यसि, द्वितीयस्य मूल्येन विशेष कृत्यानि करिष्यसि। एवं सौख्येन स्वजातिमध्ये, श्लाघ्यमानस्य कालो यास्यति, लोकद्वयस्यपार्जना च भविष्यति।

सोऽपि तदाकर्व्य प्रहष्ठ प्राह–''साधु पतिव्रते, । साधु युक्तमुक्तं भवत्या । तदेवं करिष्यसि । एष मे निश्चय : ।

ततोघ्सौ गत्वा व्यन्तरं प्रार्थयान्च चक्रे – '' भो, यदि ममेप्सितं प्रयच्छति । तछेहि मे द्वितीयं बाहुयुगलं शिरष्च ।'' एवमभिहिते, तत्क्षणादेव स द्विशिरश्चतुर्बाहुश्च सन्जात : । ततो हष्टमना यावद् गृहमागच्छति, तावल्लोकैः राक्षसोघ्यमिति मन्यमानेर्लगुडपाषाणप्राहारेस्ताडितो मृतश्च । ''

अतोऽहं ब्रवीमि – '' यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा '' इति ।

चक्रधर आह – ''भोः सत्यमेतत् । सर्वोऽपि जनोघ्श्रद्धेयामाशापिशाचिकां प्राप्य हास्यपदवीं याति । अथवा साध्विदमुच्यते केनाऽपि ।

अनुवाद :– जुलाहा बोला –'' तुम सत्य कहती हो । तो बोलो क्या मॉगू ? '' वह बोली – तुम नित्य एक वस्त्र का निर्माण ही करते हो । उससे पूरा खर्च चल जाता है । अब तुम अपने लिए दो भुजाएं एवं एक दूसरा सिर और मॉग लो । जिससे दो वस्त्रों का निर्माण होगा, एक आगे से और एक पीछे से । एक के मूल्य से पहले के समान घर का खर्च चलायेंगे और दूसरे के मूल्य से विशेष कार्य करेगें । इस प्रकार सुखपूर्वक अपनी जाति के बीच प्रंशसित होकर समय बितायेगें, और दोनों लोकों की सिद्धि होगी । उसे सुनकर प्रसन्न हुआ वह बोला – बहुत अच्छा , पतिव्रते ! बहुत अच्छा । तुमने ठीक कहा, तो ऐसा ही करूॅगा । ऐसा मेरा निश्चय है । ''

फिर उसने यक्ष से जाकर प्रार्थना की – ' अरे ! यदि तुम मुझे इच्छित प्रदान करते हो तो मुझे अतिरिक्त दो भुजाएं एवं एक सिर प्रदान करो । उसके ऐसा कहने पर वह उसी क्षण दो सिर तथा चार भुजाओं वाला हो गया । उसके बाद वह प्रसन्नमन से घर आया तो लोगों ने ' यह राक्षस है ' यह मानते हुए उसे डण्डे तथा पत्थरों से पीटा और वह मर गया । इसलिए मैं कहता हूॅ। – ' जिसकी स्वंय की बुद्धि नही है ''।

चक्रधर बोला – अरे ! यह ठीक है । सभी लोग श्रद्धा के अयोग्य आशारूपी पिशाची

को प्राप्त करके उपहास के पात्र बनते हैं । अथवा किसी ने ठीक ही कहा है –

अनागतवतीं चिन्तामसंभाव्यां करोति यः ।

स एव पाण्डुर : शेते सोमशर्मपिता यथा ।।

अनुवाद :– जो कभी न आने वाली, असम्भव चिन्ता को करता है, वह निश्चय ही सोमशर्मा के पिता के समान पाण्डुर हो कर सोता है ।

अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को कभी न आने वाली और कभी न होने वाली वातों के विषय में विचार नही करना चाहिए । प्रस्तुत श्लोक में आगे आने वाली ' सोमशर्मा पितृकथा' की ओर संकेत किया गया है ।

सोमशर्मपितृ– कथा

कस्मिंश्चिन्नगरे कस्चित्स्वभावकृपणो नाम ब्राहाणः प्रतिवसति स्म । तेन भिक्षाऽर्जितैः सक्तुभिभक्तशेषैः कलशः सम्पूरितः।

तं च घटं नागदन्तेऽवलम्ब्य,तस्याऽधस्तात्खाट्वां निधाय सततमेक, श्टयातमवलोकयति।

अथ कदचिद्रात्रौ सुप्तश्चिन्तयामास–यत् परिपूर्णोऽयं घटस्तावत्सक्तुभिवर्तते । तद्यदि दुभिक्षं भवति, तदनेन रूप्यकाणां शतमुत्पत्स्यते । ततस्तेन मयाऽजाद्वयं ग्रहीतवयम् ततः

षाणमासिक प्रसववाशताभ्यां यूथं भविष्यति । ततोऽजाभिः प्रभूता गा ग्रहीश्यामि। गोभिमंहिशीः। महिशीभिवंडवाः । वडवाप्रसवतः प्रभूता अश्वा भविष्यन्ति । तषों विक्रयात्प्रभूतं सुवर्णं भविष्यन्ति । सुवर्णेन चतुःशालं गृहं सम्पत्स्यते ।

हिन्दी – किसी नगर में कोई कृपण स्वभाव का एक ब्राहाण रहता था । उसने अपनी भिक्षा द्वारा प्राप्त खाने से बचे हुए सतु को इक्कठा करके एक घड़ा भर लिया था । उस घड़े को खूंटी पर लटकाकर उसके नीचे चारपाई बिछाकर वह निरन्तर ध्यानपूर्वक दृष्टि से उसे देखता था।

एक दिन रात्रि में सोते –सोते उसने सोचा कि यह घड़ा सतु से भर गया है । यदि अकाल पड़ जाता है इसे बेच कर सौ रूपये प्राप्त होगें । उन रूपयों से मैं दो बकरियॉ खरीद लूगां । फिर उनसे प्रति छः माह में बच्चे पैदा होने के कारण मेरे पास बकरियों

का झुण्ड हो जाएगा फिर उन बकरियों को बेच कर मैं ब्यायी हुई गायें लूँगा, गायों द्वारा भैसें तथा भैसों से घोड़ियां लूँगा । घोडियों के बच्चे पैदा करने से अनेक घोड़े हो जाएगे । उन घोड़ों को बेचने से बहुत सा सोना मिलेगा, फिर उस सोने से चार शालाओं वाला घर बन जायेगा ।

ततः कश्चिद् ब्राहाणो मम गृहमागत्य प्राप्तवयस्कां रूपाढयां कन्यां महां दास्यति । तत्सकाशात्पुत्रो मे भविष्यति । तस्याऽहं ''सोमशर्मा'' इति नाम करिष्यामि। ततस्तस्मिनजानुचलनयोग्ये स जातेऽहं पुस्तकं ग्हीत्वा अश्वशालायाः पृष्ठदेषे उपविष्टस्तदवधारयिष्यामि । अत्राऽन्तरे सोमशर्मा मां , दष्ट्वा, जनन्युत्सग. ाज्जापचलनपरोऽश्व खुरासन्नवर्तो मत्समोपमागमिष्यति । ततोऽहं ब्राहाणीं कोपाविष्टोऽभिधास्यामि –''गृहाण तावद् बालकम्।'' साऽपि गृहकर्मव्यग्रताऽस्मद्ववचनं न श्रोष्यति । ततोऽहं समुत्थाय, तां पादप्रहारो ताडयिष्यामि । एवं तेन ध्यानस्थितेन तथैव पादप्रहारो दतो यथा स घटो भग्नः, स्वयच सक्तुभिः पाण्डुरतां गतः । अतोऽहं ब्रवीमि –''अनागतवतीं चिन्ताम्'' इति।

सुवर्णसिद्विराह–''एवमेतेत् । कस्य दोष : । यतः सर्वोऽपि लोभेन बिडम्बिनो बोध्यते ।

उक्तच–

हिन्दी– मेरा घर बन जाने के बाद कोई ब्राहाण मेरे घर आकर अपनी युवती तथा रूपवती कन्या मुझे प्रदान कर देगा उसके सान्निध्य से मुझे पुत्र प्राप्त होगा । मैं उसका नाम 'सोमशर्मा' रखूँगा । जब वह घुटने के बल चलने योग्य हो जायेगा तो मैं अश्वशाला के पीछे वहां बैठा हुआ उस पर विचार करूगां । सोमशर्मा मुझे वहा बैठा हुआ देखकर अपनी मॉ की गोद से उतरकर घुटनों के बल चलता हुआ घोड़ों के खुरो के पास से होता हुआ मेरे पास आयेगा । तब क्रोधित हुआ अपनी पत्नी से कहूगां –'बालक को तो पकड़ो'' परन्तु घर के कार्यो में व्यस्त होने के कारण बह मेरे वचनों को नहीं सुनेगी तब मैं उठ कर पैर के प्रहार से उसे मारुगा ।

इस प्रकार सोचते –सोचते उसने उसी प्रकार पाद प्रहार किया उसके पाद प्रहार से वह घड़ा फूट गया । और सतू द्वारा स्वयं भी पीले रंग वाला हो गया ।

इसलिए कहता हूँ कि अनावश्यक चिन्ता को करने वाला व्यक्ति सोमशर्मा के पिता की तरह दुर्गति को प्राप्त होता है ।

सुवर्णसिद्वि ने कहा – यह ऐसे ही है इसमें तुम्हारा क्या दोष है । क्योंकि लोभ से ठगे हुए सभी लोग दुःखी होते रहते हैं ।

कहा भी गया है–

यो लौल्यात्कुरूते कर्म, नैवोदर्कमवेक्षते।

विडम्बनामवाप्नोति स यथा चन्द्रभूपतिः ।।

हिन्दी– जो व्यक्ति चचंलता या लोभवश कार्य के परिणाम को सोचे बिना किसी कार्य को करता है वह अन्त में घोखा खा ही जाता है । चन्द्र नामक राजा भी इसी प्रकार चंचलता के कारण घोखा खा गया था ।

अर्थात व्यक्ति को कोई कार्य जल्दबाजी में लोभ जा लालच के वशीभूत होकर नही करना चाहिए, क्योंकि यदि व्यक्ति ऐसा नही करता है तो उसे अत्यन्त कठिनाईयों का सामना करना पडता है । यहॉ तक कि चन्द्र नामक राजा के समान वंचना का शिकार भी होना पड़ता है ।

चक्रधर आह –''कथमेतत् ?'' स आह–

हिन्दी– चक्रधर ने पूछा–'यह कैसे ?' इस पर सुवर्णसिद्वि ने कहा–

2.7.4 साराशं

मन्थरक कौलिक कथा

किसी नगर में मन्थरक नामक एक जुलाहा रहता था । एक दिन वह वस्त्र बुनने के लिए लकड़ी के औजारों के लिये लकड़ी काटने किसी जंगल में गया । वहॉ वह शीशम के वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी चलाने लगा । उस वृक्ष पर एक यक्ष निवास करता था । उसने वृक्ष काटने के लिए मन्थरक को मना किया तथा इसके बदले उससे कोई भी इच्छित वस्तु मांगने के लिए कहा । जुलाहे ने कहा – यदि ऐसी बात है तो मैं घर जाकर अपनी पत्नी तथा मित्र से विचार– विमर्श करके आता हॅू ,तभी तुम मुझे इच्छित वस्तु प्रदान करना । घर जाते समय मार्ग में अपने मित्र नाई के मिलने पर उसने उसे सभी घटना कह सुनायी। तब मित्र नाई ने उससे राज्य मांगने के लिए कहा जिससे वे सभी प्रकार के सुखों का उपभोग कर सकें । मित्र नाई ने उसे पत्नी से सलाह करने के लिए यह कह कर रोका कि स्त्रियों में बुद्धि कम होती है । परन्तु जुलाहे ने उसकी बात नहीं मानी तथा अपनी पत्नी से इस बारे में पूछा

तब पत्नी ने कहा कि नाई की बात मानना उचित नहीं है क्योंकि राज्य को चलाना बड़ा कठिन कार्य है । इसलिए तुम अपने लिए दो हाथ व दो मुख मांग लो जिससे हम अपने वस्त्रों का उत्पादन दोगुना कर सकेंगे । जुलाहे ने पत्नी की बातों के अनुसार यक्ष से स्वयं को चार हाथ व दो मुख वाला बनाने की प्रार्थना की । यक्ष ने उसे चार हाथ व दो मुख वाला बना दिया । तत्पश्चात् जैसे ही वह अपने गॉव लौटा तो गॉव के लोगों ने उसे भूत समझकर पत्थरों से मार दिया ।

सोमशर्म–पितृ–कथा–

सोमशर्मा' पितृ कथा' में यह बताया गया है कि किसी नगर में एक कजूंस ब्राहान रहता था। वह भिक्षा मॉग कर जीवन निर्वाह करता था। अपने खाने से बचे हुए सतू से उसने एक घड़ा भर लिया और उसे खूँटी पर लटकाकर स्वयं नीचे चारपाई पर लेट कर सोचने लगा – यदि अकाल पड़ जाये तो इस घड़े को सौ रूपये में बचे कर दो बकरियॉ खरीदूगां। कुछ दिनों के बाद प्रसव के कारण उनसे बकरियों का एक समूह हो जाएगा। उन बकरियों को बेच कर एक गाय खरीदूंगा, उससे अनेक बच्चे होगें, उन्हें बेचकर भैसे तथा भैसों से घोड़ियॉ खरीदूंगा । घोड़ियों के व्याने से मेरे पास बहुत सारे घोड़े हो जायगें, उन्हें बेच कर मेरे पास बहुत सा धन हो जाएगा। जिससे मैं एक सुन्दर घर का निर्माण कराउॅगा । तब कोई ब्राहान अपनी सुन्दर कन्या मुझे प्रदान करेगा और उससे उत्पन्न पुत्र का नाम मैं सोमशर्मा' रखूॅगा।

जब सोमशर्मा घुटनों के बल घोड़ों के खुरों के पास से चलता हुआ मेरे पास घुड़साल में आएगा तो क्रोधित होकर मैं पत्नी से बालक को पकड़ने के लिए कहूगां और कार्यों में व्यस्त होने के कारण वह मेरे वचनों को नहीं सुनेगी। तब मैं उठाकर अपने पॉव से इस प्रकार मारूगां। इसी ध्यान में उसने जैसे ही पाद प्रहार किया वैसे ही सतू से भरा हुआ घड़ा फूट गया और उसके पर सतू गिरने से वह पीला हो गया।

2.7.5 निष्कर्ष

मन्थरक कौलिक कथा

प्रस्तुत कथा यह शिक्षा देती है कि यदि व्यक्ति के पास स्वंय की बुद्धि अर्थात् विवक न हो, साथ ही वह अपने मित्र के परामर्श के अनुसार भी कार्य न करता हो, तो ऐसी स्थिति में उसका विनाश सुनिश्चित है। इस कथा में यह बताया गया है कि किस प्रकार मन्थरकौलिक नामक जुलाहे ने अपने मित्र नाई की बात न मानकर, अपनी पत्नी के कहे अनुसार यक्ष से दो सिर तथा चार भुजाओं वाला रूप मांगा, परिणामतः

गांव वालों ने उसे राक्षस समझकर मार डाला। अगर उसने अपने मित्र की बात मानी होती तो उसकी यह दुर्दशा नहीं होती।

सोमशर्म–पितृ–कथा–

प्रस्तुत कथा से हमे यह शिक्षा मिलती है कि न आने वाली असम्भव घटना का चिन्ता करना ठीक नहीं होगी। वस्तुतः मनुष्य अनागत बातो की चिन्ता से दुःखी होता है। अर्थात् भविष्य के विषय में व्यर्थ की कल्पना करनेवाला व्यक्ति सतू–संग्रही सोमशर्मा के पिता के समान दुःखी होता है। सोमशर्मा' के पिता की भविष्य–कल्पना की परम्परा अपूर्व थी। अतः मनुष्य को व्यर्थ भविष्य की कल्पना में व्यस्त नहीं रहना चाहिए।

2.7.6 अभ्यास कार्य :–

प्र॰1 निम्नलिखित श्लोक का सप्रसंग हिन्दी अनुवाद लिखें ?

यत्र स्त्री : यत्र कितवों बालो यत्र प्रशासिता ।

तदगृहं क्षयमायाति भार्गवो हदीमब्रवीत् ।।

————————————————————————

————————————————————————

————————————————————————

————————————————————————

प्र॰2. निम्न गद्यांश का अनुवाद कीजिए :– ''ततः कश्चिद् ब्राहाणों मम ———— पाद प्रहारेण ताडयिष्यामि।।''

————————————————————————

————————————————————————

————————————————————————

————————————————————————

प्र॰3. मन्थरक कौलिक कथा का सार तथा उससे प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन करें।

____

____

____

____

प्र॰4. सोमशर्म–पितृ–कथा का सार तथा उससे प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन करें।

____

____

____

____

✠✠✠✠✠✠✠

2.8.1 प्रस्तावना

2.8.2 उद्देश्य

2.8.3 चन्द्रभूपति– कथा तथा 'विकाल वानर कथा' का अनुवाद एवं व्याख्या

2.8.4 साराशं

2.8.5 निष्कर्ष

2.8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.8.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत पाठ में चन्द्रभूपति– कथा तथा 'विकाल वानर कथा का समावेश किया गया है । चन्द्रभूपति – कथा' में एक लालची राजा के परिवार के विनाश का चित्रण है। जबकि 'विकाल वानर कथा' में यह बताया गया है कि अपने प्राणों को संकट में पड़ता देखकर दुःखी व्यक्ति के मित्र भी उसको छोड़ के भाग जाते हैं ।

2.8.2 उद्देश्य

- विद्यार्थियों को लोकव्यवहार एवं नैतिक शिक्षा प्रदान करना।
- पशु–पक्षियों की रोचक–कथाओं के माध्यम से उनमें संस्कृत–साहित्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना।
- सरल संस्कृत भाषा के माध्यम से विद्यार्थियों में गद्य तथा पद्य में रूचि उत्पन्न करना।

- संस्कृत गद्य एवं पद्य का लय के अनुसार पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना।
- संस्कृत भाषा का मातृभाषा एव मातृभाषा को संस्कृत में अनूदित करने की योग्यता उत्पन्न करना।
- संस्कृत भाषा में शुद्ध वाक्य रचना, पत्र लेखन, संवाद –प्रशन आदि की योग्यता उत्पन्न करना।
- विविध परिस्थितियों के अनुकूल मानवीय व्यवहार से छात्रों को परिचित करबाना।
- सरल एवं कठिन सभी प्रकार के गद्यों को उचित विराम एवं उच्चारण सहित पढ़ने की योग्यता उत्पन्न करना।
- आवश्यकतानुसार उचित अवसरों पर संस्कृत भाषा में बोलने की क्षमता प्रदान करना।
- छात्रों में 'संस्कृत शब्द –भण्डार में' वृद्धि करना।

2.8.3 चन्द्रभूपति– कथा तथा 'विकाल वानर कथा'का अनुवाद एवं व्याख्या

.चन्द्रभूपति–कथा

कस्मिंश्चिन्नगरे चन्द्रो नाम भूपतिः प्रतिवसति स्म । तस्य पुत्रा वानर–क्रीडारता वानरयूथं नितयमेवाऽनेकभोजनभक्ष्यादिभिः पुष्टि नयन्ति स्म । अथ वानरयूथाऽधिपो यः स औसनस–बार्हस्पत्य–चाणकयमतवित्, तदनुश्ठाता च तत्सर्वानप्यध्यापयति स्म । अथ तस्मिन् राजगृहे लघुकुमारवाहनयोग्यं मेषयुथमस्ति । तन्मध्यादेको जिवा लौल्यादहर्निशं निःशक महानसे प्रविष्य, यत्पश्यति तत्सर्वं भक्षयति ते च सूपकारा यत्किचित्काष्ठं, मृन्मयं भाजनं कांस्यपात्रं वा पश्यन्ति, तेनाष ताडयन्ति ।

हिन्दी– किसी नगर में चन्द्र नाम का एक राजा रहता था । उसके पुत्र बन्दरों के खेल में विशेष रूचि रखते थे । इस लिये बन्दरों के झुण्ड को विभित्र प्रकार की खाद्य सामग्रियों को देकर वे उनका पालन –पोषण करते थे । वानरों के झुण्ड का नायक उशनस्, बृहस्पति तथा चाणक्य आदि नीतिविदों द्वारा रचित नीतिशास्त्रों का ज्ञाता था । वह स्वयं भी नीतिसम्मत आचरण करता तथा अन्य बन्दरों को भी नीतिशास्त्र पढ़ाया करता था ।

तब उस राजभवन में छोटे राजकुमारों की सवारी के योग्य भेड़ों का एक झुण्ड भी पाला

गया था । उनमें से एक भेड़ अपने जीभ के लालच से चपलता के कारण रात –दिन जब भी अवसर पाता था निडर हाकर रसोई घर में घुस जाया करता और जो कुछ भी देखता सब खा जाया करता था। रसोईये भी उसे देखकर ही लकड़ी, मिटी का बर्तन, तॉबे का बर्तन जो कुछ पा जाते तुरन्त चलाकर मार दिया करते थे ।

सोऽपि वानरयूथपस्तद् दष्ट्वा व्यचिन्तयत्–'अहो, मेषसूपकारकलहोऽयं वानराणां क्षयाय भविष्यति । यतोऽन्नरसास्दवादलम्पटोऽयं मेष महाकोपाश्च सुपकारा यथासन्नवस्तुना प्रहरन्ति । तद्यदि वस्तुनोऽभाबात्कदाचिदुल्मुकेन ताडयिश्यन्ति, तदोणाप्रचुरोऽयं। मेष स्वल्पेनापि वहिना प्रज्वलिष्यति । तघ्हामानः पुनरश्वकुटयां समीपवर्तिन्यां प्रवेक्ष्यति । सोऽपि तृणप्राचुर्याज्ज्वलिष्यति । ततोऽश्वा वहिदाहमवाप्स्यन्ति ।

शालिहीत्रेण पुनरेतदुक्तच् यत्–''वानरवसयाऽश्वानां वहिदाहदाषः प्रशाम्यति'', तन्नूनमेतेन भाव्यम् । एषोऽत्रनिश्चयः । एवं निश्चित्य सर्वान् वानरानाहूय रहसि प्रोवाच, यत्–

हिन्दी– वानरों के यूथप ने जब इस घटना को देखा तो उसे बड़ी चिन्ता हूई । उसने मन ही मन सोचा – इस भेड़ और भण्डारियों के बीच होने वाला यह नित्य का झगड़ा किसी दिन वानरों के विनाश का कारण होगा , क्योंकि यह भेड़ अन्न खाने का लोभी है और रसोइये भी क्रुद्ध होकर पास में पड़ी हूई किसी भी वस्तु को चलाकर मार देते है । कभी संयोगवश किसी अन्य वस्तु के न मिलने पर अवश्य ही ये जलती हूई लकड़ी से ही मारेंगे । इस भेड़ की देह में ऊन है, वह चिंगारी लगते ही जल उठेगी । जलते हूए यह भेंड़ निकटवर्ती घुड़शाला की ओर दोड़ेगा। वह घास के इधर–उधर पड़े रहने के कारण वह तत्काल जलने लगेगी । परिणामतः घोड़े जलने लगेंगे ।

शालिहोत्र (घोड़ों का चिकित्सक) ने यह लिखा है कि घोड़ो के जलने का घाव बन्दरों की चर्वी से अच्छा होता है । एक न एक दिन घटना अवश्य घटेगी और वानरों की चर्वी की तलाश की जायेगी । इस विषय में मेरा यह निश्चय है । यह निर्विवाद है । यह सोच–विचार कर उसने सभी वानरों की एकान्त में ले जाकर कहा –

मेषेण सूपकाराणी कलहो योऽत्र जायते ।

स भविष्यत्यसन्दिग्धं वानराणां क्षयावहः।।

हिन्दी– यहॉ भेड़ों के साथ भण्डारियों का जो प्रतिदिन विवाद चलता रहता हैं, वह

निश्चित ही वानरों के विनाश का कारण होगा।

वानरराज ने सभी बन्दरों को कहा कि इस राजमहल मे यह जो भेड़ तथा रसोईयों का प्रतिदिन झगड़ा चल रहा है यह विवाद एक दिन हम सब बन्दरों के विनाश का कारण बनेगा ।

तस्मात् स्यात् कलहो यत्र गृहे नित्यमकारणः।

तद्गृह जीवित ं वाञ्छन् दूरतः परिवर्जयेत्।।

हिन्दी– इसलिए जिस घर में प्रतिदिन व्यर्थ का कलह होता रहता हो जीवित रहने की इच्छा वाले व्यक्ति को उस घर को तत्काल छोड देना चाहिए ।

अर्थात जो व्यक्ति अपने जीवन की रक्षा करना चाहता है, उसे कभी भी ऐसे स्थान पर नही रहना चाहिए, जहॉ बिना किसी कारण के, व्यर्थ ही प्रतिदिन झगड़े का वातावरण बना रहे, क्योकि उस झगड़े में उसकी जान भी जा सकती है । इसलिए बुद्विमान व्यक्ति को ऐसे स्थान को दूर से ही त्याग देना चाहिए ।

कलहान्तानि हर्म्याणि कुवाक्यान्तं च सौहृदम ।

कुराजान्तानि राष्ट्राणि कुकर्मान्तं यशो नृणाम्।।

हिन्दी– प्रतिदिन के कलह से अच्छे–अच्छे घर नष्ट हो जाते है । दुर्वचनों के प्रयोग से सुदृढ़ मित्रता भी टूट जाती है । दुष्ट राजा के कारण राज्य का विनाश हो जाता है और व्यक्ति दुष्कर्म करने से समाप्त हो जाता है ।

तात्पर्य यह है कि प्रतिदिन के झगड़े से अच्छे–अच्छे घर, कुवाक्यों से मित्रता, दुष्ट राजा से राष्ट्र और कुकर्म से मनुष्यों का यश नष्ट हो जाता है ।

तन्न यावत्सर्वेषां संक्षयो भवति, तावदेवैतद्राजगृहं सन्त्यज्य वनं गच्छामः ।

अथ तस्य वचनमश्रद्वेयं श्रुत्वा मदोद्धता वानराः प्रहस्य प्रोचुः–"भो।

भवतो वृद्धभावाद् बुद्धिवैकल्यं स ञ्जातं, येनैतद् ब्रवीषि । ड़क्त ञ्च

हिन्दी– इसलिए जब तक सबका विनाश नहीं होता तब तक इस राजघराने को छोड़कर किसी जगल में चले जाना चाहिए। यूथप के इस अविश्वसनीय वाक्य को सुनकर

मतवाले वानरों ने हॅसकर कहा –'अरे' बुढ़ापे के कारण आपकी बुद्धि भ्रम में पडने के कारण आपकी बुद्धि भ्रम में पड़ गयी है । इसीलिए आप ऐसी सलाह दे रहे हैं । कहा भी गया है–

वदनं दशनैर्हीनं, लाला स्रवति नित्यशः।

न मतिः स्फुरति क्वापि बाले वृद्धे विशेषतः।।

हिन्दी– मुॅह में दॉत न रहने के कारण निरन्तर लार टपकती रहती है । अतः वाल्यावस्था और वृद्वावस्था में विषेशकर किसी विषय में बुद्वि स्फुरित नहीं होती है ।

बचपन और वृद्वावस्था दोनों की तुलना करते हुए कवि कहता है कि जिस प्रकार बालक के मुख में दॉत नही होते है, उसके मुॅह से निरन्तर लार बहती रहती है उसकी बुद्वि भी कार्य नही करती है । ठीक उसी प्रकार वृद्व व्यक्ति के भी मुख में दातों का अभाव रहता है । उसके मुख से भी निरन्तर लार वहती रहती है तथा वुढ़ापे की विकलता के कारण उसकी वुद्वि किसी भी विषय में काम नही करती है ।

न वयं स्वर्गसमानोपभोगान् नानाविधान् राजपुत्रैः हस्तदतानमृतकल्पान् परित्यज्य तत्राऽटव्यां कषायकटुतिक्षाररूक्षफलानि भक्षयिष्यामः।'' तच्छृत्वाऽश्रुकलुषां, दृष्टि कृत्वा स प्रोवाच–

''रे रे मूर्खः ! युयमेतस्य सुखस्य परिणामं न जानीथ । किम्पाकरसास्वादन –प्रायमेतत्सुखं परिणामे विषवद् भविष्यति । तदहं कुलक्षयं स्वयं नावलोकयिष्यामि। साम्प्रतं वनं यास्यामि । उ़क्तच –

हिन्दी– हम लोग स्वर्ग के समान दिव्य उपभोगों की और अनेक प्रकार के भक्ष्यों एवं राजकुमारों के हाथ से स्नेहपूर्वक दिये गये अमृत के समान स्वादिष्ट पदार्थों को छोड़कर वन में कसैले, कड़वे, तीखे, खट्टे एवं नीरस फलों को खाने के लिए नहीं जायेंगे । यूथप ने वानरों के इस निर्णय को जब सुन लिया, तब ऑखों में आंसू भरकर रोता हुआ उनकी ओर देखकर बोला– अरे मूर्खो तुम सब इस सुख परिणाम को नही जानते हो । खाने में सुस्वादु विषमय फल के समान यह सुख परिणाम में कितना विषमय होगा । मैं अपनी इन ऑखों से अपने ही कुल का विनाश नहीं देख सकता हूॅ । अतः मैं अभी वन में चला जाता हूॅ

क्योंकि–

मित्रं व्यसनसम्प्राप्तं स्वस्थानं परपीडितम्।

धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देषङ्ंग कुलक्षयम्।।

हिन्दी– दुःख में पड़े हुए मित्रों को ओर शत्रुओं द्वारा आक्रान्त देश को नहीं देखना चाहिए । वे मनुष्य धन्य हैं जो अपने नेत्रो ,द्वारा अपने निवास स्थान एवं कुल का विनाश नहीं देखते है ।

इस संसार में वे लोग वस्तुतः भाग्यवान् है । जिन्हें अपने संकट ग्रस्त मित्रों को देखना नही पड़ता है । इस प्रकार वे लोग धन्य है, जिनके जीवन में कभी भी शत्रु द्वारा आक्रान्त किए गए अपने स्थान को देखने का मोका नही मिला । वे लोग भी भाग्यशाली है, जिन्होनें अपने जीते जी अपने ही वशजों का अपनी ऑखों से विनाश नही देखा ।

एवमभिधाय सर्वॉस्तान् परित्यज्य स यूथाधिपऽटव्यां गतः । अथ तस्मिन्गतेऽन्य स्मिन्नहनि स मेषो महानसे प्रविष्टो, यावत्सूपकारेण नान्सत्किलित्समासादितं तावदधंज्वलितकाष्ठेन ताडयमानो जाज्वल्यमानशरीरः शब्दायमानोऽश्वकुटायां प्रत्यासत्रवर्तिनयां प्रविश्टः।

तत्र तृणप्राचुर्ययुक्तायां क्षितौ तस्य प्रलुठतः सर्वत्राऽपि वहिनज्वालास्तथा समुत्थिता यथा केचिद्श्वाः स्फुटितलोचनाः पञ्चत्वं गताः। केचिद् बन्धनानि त्रोटयित्वा, अर्धदग्धशरीरा इतज्चेतल हेशायमाणा धावमानाः, सवंमपि जनसमूहमाकलीचक्रुः।

हिन्दी– इस प्रकार कहकर उन सबको छोड़कर वह समूह का स्वामी नेता बन्दर वन में चला गया। उसके चले जाने के बाद एक दिन भेड़ ने पाकशाला में ज्यों ही प्रवेश किया, त्यों ही रसोइये को जब कुछ नही मिला तो आधी जली हुई लकड़ी को चलाकर मारा, अधजली लकड़ी के लगते ही उस भेड़ की देह में आग लग गयी। जलता हुआ वह भेड़ चिल्लाकर पास की अश्वशाला में घुस गया और अपनी आग को बुझाने के निमित जमीन पर लोटने लगा ।

सूखी घासों के इधर उघर पड़ने के कारण शाला में भी आग लग गयी । थोड़ी ही देर में वहां ऐसी अग्निज्वाला उठी कि कुछ घोड़ों की ऑखें फूट गयी ओर वे तत्काल मर भी गये । कुछ घोड़ों ने अपने बन्धनों को तोड़ दिया और आधी जली देह लेकर इधर उधर हिनहिनाते हुए दोड़ लगाने लगे । उनकी इस भागदोड़ के कारण सम्पूर्ण जनसमुदाय व्याकुल हो उठा ।

अत्राऽन्तरे राजा सविषादः शालिहोत्रज्ञान् वैद्यानाहूय, प्रोवाच–''भोः! प्रोच्यतामेषामश्वानां

कश्चिद्होपषमनोपायः।'' तेऽपि शास्त्राणि विलोक्य प्रोचुः ''देव ! अत्र विषये भगवता शालिहोत्रेण, यद्–

हिन्दी– घोड़ों के जलने का समाचार पाकर राजा अत्यन्त दुःखी हुआ और अश्वचिकित्सा में निपुण वैद्यों को बुलाकर कहा – घोड़ों के जलने पर जो कोई उपचार हो सकता है तो आप लोग कृपया बतायें । वैद्यों ने चिकित्सा– शास्त्र देखकर कहा– महाराज, इस विषय में भगवान शालिहोत्र ने लिखा है कि–

कपीनां मेदसा दोषो वह्निदाहसमुद्भवः ।

अश्वानां नाशमभ्येति तमः सूर्योदये यथा।।

हिन्दी– घोड़ों के जलने का दाह वानरों की चर्बी से उसी प्रकार समाप्त हो जाता है जैसे कि सूर्योदय होने से अन्धकार समाप्त हो जाता हे ।

शालिहोत्र (घोड़ों का चिकित्सक) का कहना है कि जिस प्रकार सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट को जाता है ठीक उसी प्रकार आग से जले हुए घोड़ों की पीड़ा बन्दरों के शरीर की चर्बी लगाने से क्षणभर में ही दूर हो जाती है इसमे सन्देह नही है ।

तत्क्रियतामेतच्चिकित्सितं द्राक्, यावदेतेन दाहदोषेण विनश्यन्ति। सोऽपि तदाकर्ण्य समस्तवानरवधमादिश्टवान्। कि बहुना–सर्वेऽपि ते वानरा विविधायुधलगुडपाषाणादिभिर्व्यापादिताः इति।

अथ सोऽपि वानरयूथपस्तं पुत्रपौत्रभ्रातृसुभागिनेयादिसंक्षयं ज्ञात्वा विषादमुपगतः, सन्त्यक्ता हारक्रियो वनाद्वनं पर्यअति । अचिन्तयच्च–''कथमह् तस्य नृपापसदस्यानृणतां कृत्येनाऽपकृत्यं करिष्यामि । उक्त च–

हिन्दी – इसलिए जब तक ये दाह दोष ,द्वारा विनष्ट नही होते है' तब तक शीघ्र ही यह उपचार कीजिए। राजा ने वैद्यों की राय से समस्त वानरों को मार डालने का आदेश दे दियां अधिक क्या कहे वे सभी बन्दर विभिन्न प्रकार के आयुधों, लाठियों और पत्थरों द्वारा मार डाले । उस यूथप ने जब इस समाचार को सूना तब अपने पुत्र –पोत्र, भतीजे, भागिनेय आदि सगे–सम्बन्धियों की मृत्यु से अत्यन्त दुःखी हुआ। खाना –पीना छोड़कर इधर–उधर जगलों में घूमने लगा और निरन्तर यह सोचता रहा कि मैं किस प्रकार इस नीच राजा का अपकार करके अपने सम्बन्धियों की मृत्यु का बदला लूं ।

कहा भी गया है–

मर्षयेद्धर्षणां योऽत्र वंशजां परनिर्मिताम् ।

भयाद्वा यदि वा कामात् स ज्ञेयः पुरूषऽधमः ।

इस संसार में जो भय से अथवा कामना से दूसरों द्वारा किए गए अपने कुल के अपमान को सहन कर लेता है, उसे नीच पुरूष समझना चाहिए ।

कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को किसी भी परिस्थिति में, शत्रु द्वारा भी अपने वंश मे उत्पन्न लोग के अपमान को सहन नही करना चाहिए । भले ही उसे अपने प्राणों को भी क्यों न गवाना पड़े। इस विषय में किसी लालच आदि के वशीभूत नही होना चाहिए और न ही किसी से डरना चाहिए ।

अथ तेन वृद्धवानरेण कुत्रचित्पिपासाकुलेनभ्रामता पद्मिनीखण्ढमण्उितं सरः समासादितम् तद्यावतसुक्ष्मेक्षिकयावलोकयति तावद् वनचरमनुष्याणां पदपक्तिप्रवेशोस्ति न निष्क्रमणम् । ततक्षिनितमृ "नूनमत्र आक्रान्ते दुष्टग्राहेण भाष्यमृ तत्पद्मिनीनालमादाय दुरस्थो जलं पिबामि।"

तथनुशृते तन्मध्याद्राक्षसो निष्क्रम्य, रत्नमालाविभूशितकण्ठसतमुवाच–"भोः ! अत्र यः सल्प्रिवेषं करोति स मे भक्ष्यः इति। तन्नाऽस्ति धूर्ततर–स्तवत्समोन्यो यः पानीयमनेन विधिना पिबति। ततस्तुष्टोऽहं, प्रार्थयस्व हदयवाञ्छवतम्।"

कपिराह –"भो ! कियती ते भक्षणशक्तिः?"

स आह –' शतसहस्त्रायुतलक्षाण्यपि जलप्रविष्टानि भक्षयामि । बाहातृगालोपि मांधर्शयति ।" वानर आह –" अस्ति मे केनचिद् भूपतिता सहातयन्तवरम् । यद्येनां रत्नमालां मे प्रयच्छसि, तत्सपरिवारमपि तं भूपति वाक्यप्रवचेन लोभयितवात्र सरसि प्रवेशयामि ।"

सोपिश्रद्धेयं वचस्तस्य श्रुत्वा रत्नमालां दत्वा प्राह –" भो मित्र ! यत्समुचितं भवति तत् कर्तव्यम्" इति।

हिन्दी– इसके बाद उस वृद्ध वानर ने प्यास से व्याकुल होकर इधर उधर की खोज में घूमते हुए कमलिनी से सुशोभित एक तालाब को देखा। मनुष्य को उसने ध्यान से देखा तो वहां तालाब में प्रवेश करने वाले जीवों का पदचिह्न दिखा दिया, किन्तु उनके निकलने का कोई चिह्न नहीं था । इसे देखकर उसने इस तालाब में कोई न कोई दुष्ट मगर अवश्य रहता है । अतः अन्दर जाना ठीक नहीं होगा । बाहर से ही कमलनाल के सहारे

पानी पी लेता हूॅं ।

वह कमलनाल के द्वारा पानी पी रहा था कि तालाब के अन्दर से राक्षस निकला । वह रत्न की अत्यन्त सुन्दर माला पहने हुए था। वानर देखकर उसने कहा –अरे वानर ! इस पानी के अन्दर जो प्रवेश करता है, वह मेरा भोजन होता है । तुम्हारे समान धूर्त मैंने नहीं देखा, क्योंकि तुम पानी प्रवेश किये बिना ही कमलनाल से पानी पी रहे हो। मैं तुम्हारी चतुरता से सन्तुष्ट तुम पर प्रसन्न हूॅं । तुम्हारी जो मनोकामना हो मुझसे माॅग लो ।

वानर ने पूछा – तुम कितने जीवों को खा सकते हो ?

राक्षस ने कहा – इस पानी में प्रविष्ट हुए एक सौ, हजार, लाख व्यक्तियों को खा सकता हूॅ, किन्तू पानी से बाहर निकलने पर एक सियार भी मुझे मसल सकता है ।

यह सुनकर उस वानर ने कहा – एक राजा के साथ मेरी शत्रुता हैं । यदि इस रत्नमाला को तुम मुझे दे दो तो मैं अपनी वाणी से प्रलोभित करके सपरिवार उस राजा को इस तालाब के अन्दर प्रवेश करा सकता हूँ।

राक्षस ने उस वानर की विश्वास योग्य बात को सुनकर रत्नमाला को देते हुए कहा – मित्र जो तुम्हें उचित प्रतीत हो वह करना ।

वानरोऽपि रत्नमालाविभूषितकण्ठो वृक्षाप्रासादेषु परिभ्रमञ्जनैदृष्टः, पृष्टक्ष–''भो यूथप! भवानियन्तं कालं कुत्र स्थितः ? भवता ईदृशीरत्नमाला कुत्र जब्धा,दीप्त्या सूर्यमपि तिरस्करोति।''

वानरः प्राह–'' अस्ति कुत्रचिदरण्ये गुप्ततरं महत्सरो धनदनिर्मितम् । तत्र सूर्योदिते रविवारे यः कश्चिन्निमञ्जति, स धनदप्रादादीद्ग्रत्नमालाविभूषित–कण्ठो निःसरति। ''

अथ भूभुजा तदाकर्ण्य ,वानरः समाहूतः–''भो यूथधिप ! किं सत्यमेतत्, रत्नमालासनार्थ सरोऽस्ति क्वापि?''

कपिराह–''स्वामिन्! एष प्रत्यक्षतया मत्कण्ठस्थितया रत्नमालया प्रत्ययस्ते। तद्यदि रत्नमालया प्रयोजनं तन्मया सह कमपि पशय, येन दर्षयामि।''

तच्छ्रुत्वा नृपतिराह–'' यद्येवं तदहं सपरिजनः स्वयमेष्यामि, येन प्रभूता रत्नमाला उत्पद्यन्ते।''

हिन्दी :– राक्षस की दी हुई माला को कण्ठ में धारण करके वह वानर वृक्षों एवं भवनों पर क्रमशः घुमता हुआ नगर वासियों की दृष्टि में पड़ गया । नगर निवासियों ने प्रेमपूर्वक उससे पूछा – अरे यूथप ! आप इतने दिनों तक कहॉ रहे, इतनी सुन्दर रत्न की माला आपको कहॉ से मिल गयी । यह तो कहॉ चमक कान्ति से सूर्य को भी तिरस्कृत कर दे रही है ।

बन्दर ने उत्तर दिया – वन में कुबेर द्वारा निमित एक अत्यन्त गुप्त तालाब है। उस तालाब में रविवार को अर्ध सूर्यो काल में जो स्नान करता है, वह कुबेर की कृपा से ऐसी ही रत्नमाला से सुशोभित कण्ठवाला होकर तालाब से बाहर निकलता है ।

राजा ने जब समाचार सुना तो उसने उस यूथप को बुलाकर उससे पूछा – यूथाधिप ! क्या यह बात सत्य है ? कहीं पर रत्नमालाओं से युकत तालाब है ?

उस यूथप बन्दर ने कहा – स्वामिन् ! यह तो मेरे कण्ठ में प्रत्यक्ष रूप से स्थित इस रत्नमाला को देखकर ही विश्वास किया जा सकता है । यदि आपको रत्नमाला की आवश्यकता है, तो मेरे साथ किसी को भेज दीजिए मैं उसे भी सरोवर दिखा दूॅगा ।

यह सुनकर राजा ने कहा – यदि ऐसा है तो मैं स्वयं अपने समस्त परिवार के साथ वहॉ चलूॅगा । चलने से मेरे पास बहुत सी रत्नमालाएॅ हो जायेंगी ।

वानर आह – ''एवं क्रियताम् ।''

वानर ने कहा – ठीक है, आप स्वयं चल सकते है ।

तथानुष्टते, भूपतिना सह रत्नमाला लोभेन सर्वे कलत्रभृत्याः प्रस्थिताः । वानरोऽपि राज्ञा दोलाऽ धिरूढ़ेन स्वोत्सडेः आरोपितः सुखेन प्रीतिपूर्वमानीयते । अथवा साध्विदमुच्यते –

हिन्दी :– राजा के प्रस्थान करने पर रत्नमाला के लोभ से राजा स्त्रियां तथा नौकर के साथ चल पड़े। पालकी में बैठे हुए राजा ने प्रेमपूर्वक उस वृद्ध वानर को अपनी गोद में बैठा लिया और वह सुखपूर्वक चलने लगा। अथवा ठीक ही कहा गया है–

तृष्णे ! देवि ! नमस्तुभ्यं, यया वित्ताऽन्विताऽपि ।

अकृत्येषु नियोज्यन्ते भ्राम्यन्ते दुर्गमेष्वपि ।।

हिन्दी– हे देवि तृष्णे ! तुमको प्रणाम है, क्योंकि जिस तेरे द्वारा वशीभूत होकर धनवान

व्यक्ति भी अनुचित कार्य में प्रवृत हो जाते हैं ओर दुर्गम स्थानों में भी भटकते फिरते है ।

कवि तृष्णा को सम्बोधित करके कहता है कि तुम्हें मेरा प्रणाम है, क्योंकि यह तुम्हारी ही सामर्थ्य है कि धनी लोग भी तुम्हारे प्रभाव के कारण अनुचित कार्य करते है । वस्तुतः उनकी और अधिक धनवान् बनने की चाह निरन्तर बनी रहती है । अपनी इसी चाह को पूरा करने के लिए वे लोग दुर्गम स्थानों पर भी भटकते रहते है ।

इच्छति शती सहस्त्रं, सहस्त्री लश्मीहते ।

लक्षाऽधिपस्तथा राज्यं, राज्यस्थः स्वर्गमीहते ।।

हिन्दी– सौ रूपयेवाला व्यक्ति हजार रूपये चाहता है, हजार रूपयेवाला लाख रूपये चाहता है, जो लखपति है वह सम्पूर्ण राज्य चाहता है उसी प्रकार राज्याधिरूढ सब सुविधाओं वाला स्वर्ग चाहता है इस तृष्णा के वशीभूत होकर प्रत्येक व्यक्ति आगे बढ़ना चाहता है, किन्तु मनुष्य की कामनाएॅ अपरिमित होती हैं, उनका कभी अन्त नहीं होता है ।

कवि कहता है कि जिस व्यक्ति के पास 100 रूपये हैं, वह उस से सन्तुष्ट न हो कर ऐसा प्रयास करता है कि उसके पास एक हजार रूपये हो जाएॅ। इसी प्रकार एक हजार वाला लाख, और एक लाख वाला राज्य की कामना करता है तथा जो राज्य पर स्थित है वह भी उससे सन्तुष्ट न होकर स्वर्ग–प्राप्ति की कामना करता रहता है । इस प्रकार इस संसार मे यह तष्णा सभी को परेशान करती रहती है ।

जीर्यन्ते जीर्यतः केशाः, दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।

जीर्यत श्रक्षुषी, तृष्णैका तरूणायते ।।

हिन्दी– वृद्ध व्यक्ति का बाल, दॉत, ऑख और कान आदि सभी इन्द्रियॉ शिथिल हो जाती हैं । किन्तु उसकी एकमात्र तृष्णा–कामना इच्छा नित्य प्रति युवती सी बनी रहती है । अर्थात् मनुष्य की कामनाएॅ कभी पूर्ण नहीं होती है, वे हमेशा नवयोवना युवती के समान नवीन होती रहती है।

कवि कहता है कि व्यक्ति जब बूढ़ा हो जाता है तो उसके बाल सफेद हो जाते है, दॉत गिर जाते है, ऑखो से दिखाई देना बंद हो जाता है तथा कानों से सुनाई नही देता। इस प्रकार शरीर के सभी अंग जीर्ण हो जाते है किन्तु एकमात्र तृष्णा ही है जो शरीर के बूढ़े होने पर भी निरन्तर मानों युवावस्था को प्राप्त होती जाती है ।

अथ तत्सरः समासाद्य वानरः प्रत्यूषसमये राजानमुवाच –"देव ! अन्ना–र्धोदिते सूतः प्रविष्टानां सिद्विर्भवति तत्सर्वोऽपि जन एकदेव प्रविशतु । त्वया पुनर्मया सह प्रवेष्टव्यं, येन पूर्व्रदृष्टस्थानमायाद्य, प्रभूतास्ते रत्नमाला दर्शयामि।"

अथ प्रविश्टास्ते लोकाः सर्वे भक्षिता राक्षसेन । अथ तेशु चिरमाणेशु राजा वानरमाह–'भो यूथाधिप ! किमिति विरायते मे परिजनः?"

तच्छ्रत्वा वानरः सत्वरं वृक्षमारूह्य, राजानमुवाच –"भो दुष्टनरपते ! राक्षसेनान्तः सलिलस्थितेन भक्षितास्ते परिजनः। साधितं । मया कुलक्षयजं वैरम्, तद् गम्यताम् । त्वं स्वामीति मत्वा नाऽत्र प्रवेशितः। उक्तं च ।

हिन्दी– इसके बाद प्रातःकाल में उस सरोवर पर पहुँचकर बन्दर ने राजा से कहा – राजन् ! सूर्य आधा उदित होने पर ही इस सरोवर में प्रवेश करने से अभीष्ट की सिद्धि होती है । अतः सभी लोग एक ही समय में प्रवेश करें तो अच्छा होगा । और आप अभी रुक जाइए, मेरे साथ प्रवेश कीजिएगा, जिससे मैं पहले देखे गये स्थान में आपको ले असंख्य रत्नमालाओं को दिखाऊगा ।

उस सरोवर में प्रवेश करते ही राजा के समस्त परिवार को वह राक्षस खा गया । अपने परिजनों को देख कर राजा ने वानर से पूछा – मेरे अनुयायी लोग अभी तक बाहर नहीं निकले, उनके निकलने में देर क्यों हो रही है ?

राजा के प्रश्न को सुनकर वह वानर तत्काल एक वृक्ष पर चढ़ गया और बोला – अरे नीच राजा ! पानी में रहने वाले राक्षस ने तुम्हारे परिवार को खा लिया है । मैंने अपने कुल के विनाश का बदला चुका लिया । अब तुम यहॉ से जा सकते हो । तुमको अपना पालक समझकर मैंने इस सरोवर में प्रवेश नहीं करने दिया । कहा भी गया है कि –

कृते प्रतिकृतं कुर्याद्विंसिते प्रतिहिंसितम् ।
न तत्र दोषं पश्यामि, यो दुष्टे दुष्टमाचरेत् ।।

हन्दी :– उपकार करने वाले व्यक्ति का उपकार करना, मारनेवाले व्यक्ति को मारना और दुष्ट प्रकृति वाले व्यक्ति के प्रति दुष्टता करना उचित है । ऐसा करने पर कोई दोष नही होता । अतः तुम्हारे प्रति किये गये आचरण को मैं दोष नहीं समझता हूँ ।

अर्थात इस संसार में व्यक्ति को अपने प्रति किए उपकार किये जाने पर उसके बदले

सामने वाले व्यक्ति का अवश्य उपकार करना चाहिए । ठीक इसी प्रकार हिंसक व्यक्ति के साथ हिंसापूवर्क ही आचरण करना चाहिए । इस प्रकार आचरण करनें में किसी प्रकार का कोई दोष नही होता है ।

" तत्वया मम कुलक्षयः कृतः, मया पुनस्तव" इति ।

अथैतदाकर्ण्य, राजा कोपाविष्ट पदातिरेकाकी यथायातमार्ग्रण निष्क्रान्त :।

अथ तस्मिन् भूपतौं गते राक्षसस्तृप्तो जलानिष्क्रम्य सानन्दमिदमाह –

हिन्दी :– तुमने मेरे कुल का विनाश किया । अतः मैंने भी तुम्हारे कुल का नाश कर दिया ।

वानर की इस बात को सुनकर राजा क्रोधाभिभूत हो पैदल ही जिस रास्ते से आये थे उसी रास्ते से वापस चले गये । राजा के चले जाने के बाद राक्षस ने जलाशय से बाहर निकलकर अत्यन्त प्रसन्नता के साथ कहा –

"हतः शत्रुः, कुतं मित्रं, रत्नमाला न हारिता ।

नलेन पिबता तोयं भवता साधु वानर ।।

हिन्दी :– कमलनाल से पानी पीने की निपुणता दिखाकर तुमने अपने शत्रु का विनाश कर दिया, मेरे साथ मित्रता कर ली और रत्नमाला को कहीं खोया भी नहीं । वानरराज ! तुम्हारी बुद्धि धन्य है । वस्तुतः तुम एक चतुर वानर हो ।

प्रस्तुत श्लोक में यूथधिप वानर की बुद्विमता की राक्षस द्वारा मुक्तकण्ठ से प्रशसा की गई है ।

अतोऽहं ब्रवीमि – " यो लौल्यात्कुरूते कर्म " इति

हिन्दी :– अतः मैं कहता हूँ कि जो लोभ के कारण कार्य करता है इत्यादि ।

एवमुक्त्वा, भूयोऽपि स चक्रधरमाह – " भो मित्र ! प्रेषंय मां, येन स्वगृहं गच्छामि । "

चक्रघर आह – "भद्र ! आपदर्थें धनमित्रसङ्ग्रहः क्रियते । तन्मामेवंविधं त्यक्त्वा क्व यास्यसि ? उक्तं च –

हिन्दी :–. कथा को सुनने के बाद सुवर्णसिद्धि ने चक्रधर से कहा – मित्र ! अब मुझे

जाने की अनुमति दो, जिससे मैं घर जा सकूं ।

चक्रधर ने कहा – भद्र ! विपतिकाल में सहयोग करने के लिए ही धन और मित्र संग्रह किया जाता है । मुझे इस स्थिति में छोड़कर कहाॅ जाओगे, क्योंकि

यस्त्यवत्वा सापदं मित्रं याति निष्ठुरतां वहन् ।

कृतध्नस्तेन पापेन नरके यात्यस श यमू ।।

हिन्दी :– जो व्यक्ति आपत्ति में पड़े हुए मित्र को छोड़कर निष्ठुरतांपूर्वक चला जाता है वह कृतध्न उसी पाप के कारण निःसन्देह नरक का भागी बनता है ।

कवि कहता है जो व्यक्ति अपने मित्र के संकटग्रस्त होने पर उसकी सहायता करने की अपेक्षा उसे उसी स्थिति में छोड़कर अन्यत्र चला जाता है । निष्ठुर ह्रदय वाला वह व्यक्ति निष्चय ही नरक में जाता है, क्योंकि आपत्ति में पडे हुए व्यक्ति की सहायता करना व्यक्ति का परमकर्तव्य होता है ।

सवर्णसिद्विराह – भोः, सत्यमेतद्यदि गम्यस्थाने शक्तिर्भवति । एतात्पुनमंनु –व्याणामगम्यस्थानम् । नास्ति कसयाऽपि त्वामुन्मोचयितुं अपरं यथा चक्रभ्रमवेदनया तव मुखविकारं पश्यामि तथा – तथाऽहमेतज्जानामि यत् द्राग् गच्छामि मा कश्चिन्ममाऽप्यनर्थो भवेदिति । यत :–

हिन्दी :– सुवर्णसिद्वि ने कहा – तुम ठीक कहते हो यदि इस स्थान में रहने की सामर्थ्य़ होती तो मैं अवश्य रह जाता । यह स्थान मनुष्य के ठहरने योग्य नहीं है और तुम्हें इस चक्र से छुड़ाने की सामर्थ्य किसी में नही है । दूसरी बात यह कि जैसे इस चक्र के घूमने से पीड़ा के कारण तुम्हारी बदलती हुई मुखाकृति को देखता हूॅ तो उसमें इस निष्कर्ष पर पहुॅचता हूॅ कि मुझे यहॉ से अतिशीघ्र चले जाना चाहिए । कहीं ऐसा न हो कि मैं भी किसी आपत्ति में पड़ जाऊ, क्योंकि कहा गया है,

यादृशी वदनच्छाया , दृश्यते तव वानर ।

विकालन गृहीतोऽसि, यः परैति स जीवति ।।

हिन्दी :– हे वानर ! जैसी तुम्हारे मुख की कान्ति दिखाई देती है उससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि तुम विकाल नामक राक्षस से अभिभूत हो चुके हो । अतः जो यहॉ से दूर भाग जायेगा वही जीवित बच सकेगा ।

प्रस्तुत श्लोक में आगे आने वाली विकाल–वानर कथा की ओर संकेत किया गया है ।

चक्रधर ने पूछा– यह कैसे ? सुवर्णसिद्धि ने कहा–

चक्रधर आह – कथमेतत् ? सोऽब्रवीत्

चक्रधर ने पूछा–यह कैसे? सुवर्ण सिद्धि ने कहा–

विकाल –वानर –कथा

कस्मिंश्चिन्नगरे भद्रसेनो नाम राजा प्रतिवसति स्म । तस्य सर्वलक्षणसम्पन्ना रत्नवती नाम कन्याऽस्ति । तां कश्चिद्राक्षसो जिहीर्षति । रात्रावागत्योपभुङ्क्ते, परं कृतरक्षोपधानां तां हर्तुं न शक्नोति । साऽपि तत्समये रक्षःसान्निध्यजामवस्थामनुभवति कम्पादिभिः ।

एकमतिक्रामति काले कदाचित्स राक्षसो मध्यनिशायां गृहकोणे स्थितः । साऽपि राजकन्या स्वसखीमुवाच – "सखि ! पश्यैश विकाल : समये नित्यमेव मां कदर्थयति। अस्ति तस्य दुरात्मन : प्रतिषेधोपाय : कश्चित् ? "

तच्छ्रुत्वा राक्षसोऽपि व्यचिन्तयत् – " नूनं यथाहं, तथाऽन्योऽपि कष्विद्विकाल–नामास्या हरणाय नित्यमेवागच्छति, परसोंऽप्येनां हर्तुं न शक्नोति । ततावदश्वरूपं कृत्वाऽश्व मध्यगतो निरीक्षयामि – किंरूपः सः किं प्रभावश्चेति ?" एवं राक्षसोऽश्वरूपं कृत्वाऽश्वानां मध्ये तिष्ठति ।

हिन्दी :– किसी नगर में भद्रसेन नाम का राजा रहता था । उसकी सभी लक्षणों से सम्पन्न रत्नवती नाम की एक कन्या थी । कोई राक्षस उस कन्या को हरना चाहता था । वह रात में आकर उस कन्या के साथ काम–क्रीड़ा करता था । किन्तु उसका अपहरण नहीं कर सकता था । रात के समय वह अपने शरीर के प्रकम्पन आदि से राक्षस के आगमन का आभास पा जाती थी ।

इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर एक दिन कभी वह राक्षस आधी रात में उस कन्या के घर के कोनो में आकर बैठ गया । उसी समय वह राजकन्या भी अपनी सखी से बोली – हे सखि ! देखो यह विकाल नाम का राक्षस नित्य रात में निष्चित समय पर मुझे कष्ट पहुॅचाता है । क्या उस पापी के रोकने का कोई उपाय है ?

उस कन्या के कथन को सुनकर उस राक्षस ने सोचा, मालूम पड़ता है कि जिस

प्रकार मैं इसका अपहरण करना चाहता हूँ उसी प्रकार कोई दूसरा भी विकाल नामक राक्षस इसको हरने के लिए नित्य आया करता है, किन्तु यह भी इसको हरने में समर्थ नहीं होता । मैं घोड़े का रूप धारण कर घोड़े के बीच बैठ जाता हूँ और देखता हूँ कि वह कितना सुन्दर और कैसा प्रभावशाली है । तदनुसार वह राक्षस घोड़ा बनकर घोड़ों के मध्य में खड़ा हो गया ।

तथाऽनुष्ठिते निशीथसमये राजगृहे कश्चिदश्वचौर : प्रविष्टः। स च सर्वानश्वान् अवलोक्य, तं राक्षसमश्वतमं विज्ञायाधिरूढ : ।

अत्राऽन्तरे राक्षसश्चिन्तयामास –''नूनमेश विकालनामा मां चौरं मत्वा कोपान्निहतुमागतः । तत्किं करोमि ?'' एवं चिन्तयन् साऽपि तेन खलीनं मुंखे निधाय, कशाघातेन ताडितः । अथाऽसौ भयत्रस्तमना : प्रधावितुमारब्धः ।

चौरोऽपि दूरं गत्वा, खलीनाकर्षणेन तं स्थिरं कर्तुमाररब्वधवान् । स तु वेगाद्वेगतरं गच्छति । अथ तं तथाऽगणितखलीनाकर्षणं मत्वा चोरश्चिन्तयमास– ''अहो, नैवंविधा वाजिनो भवन्तयगणितखलीनाः तन्नूनमनेनासवरूपेण राक्षसेन भवितव्यम् । यद्यपि कञ्चित्पांसुलं भूमिदेशमवलोकयामि तदात्मानं तत्रपात यामि । नाऽन्यथा मे जीवितव्ययमस्ति ।

हिन्दी :– वैसा करने पर आधी रात के समय कोई घोड़ों का चोर राजभवन में घुसा और घोड़ों को देखकर उस राक्षस को सबसे अच्छा घोड़ा–समझकर उसी पर सवार हो गया ।

इसके बाद राक्षस सोचने लगा– निःसन्देह यही विकाल नाम का वह राक्षस है, जो मुझे चोर समझकर मारने के लिए आया है । तो क्या करूँ ? अभी वह सोच ही रहा था कि उस चोर ने उसके मुख में लगाम लगाकर चाबुक (कोड़े) से मारा । कोड़े की मार खाकर वह भयभीत हो उठा और दौड़ना प्रारम्भ किया । कुछ दूर जाने के बाद चोर लगाम को खींचकर उसे रोकने लगा । लगाम को खींचने पर वह राक्षस और भी वेग से भागने लगा । लगाम खींचने की परवाह न करने वाले इसको समझकर चोर चिन्ता में पड़ गया और सोचने लगा, निश्चय ही यह घोड़ा बना हुआ राक्षस है । यदि कहीं रेतीली जमीन मिल जाय तो में वहाँ कूद पडूँ, अन्यथा मेरे प्राण बचना कठिन है ।

एवं चिन्तयत इष्टदेवतां स्मरतस्तस्य साऽश्वो वटवृक्षस्य तले निष्क्रान्तः । चौरोऽपि वटप्ररोहमासाद्य तत्रैव विलग्न ततो द्वावपि तौ पृथग्भूतौ परमानन्द

भाजौ, जीवितविषये लब्धप्रत्याजौ सम्पन्नौ ।

अथ तत्र वटे कश्चिद्राक्षससुहृद्वानर स्थित आसीत् । तेन राक्षसं त्रस्तमालोक्य व्याहतं–'' मो मित्र ! किमेव– फ्रपलाटयतेफ्रलीकभयेन ? तद्भक्ष्योऽयं मानुषः, भक्ष्यताम् ।''

साऽपि वानरवचो निषम्य, स्वरूपमाधाय शकिंतमनाः स्खलितगतिनिवृत : । चौरोऽपि तं वानराहूतं ज्ञात्वा, कोपातस्य लाड्गूलं लम्बमानं मुखे निधाय, चर्वितवान् ।

वानरोऽपि तं राक्षसाऽभ्यधिकं मन्यमानो भयान्न किन्चिदक्तुवान् । केवलं व्यथार्तो निमीलितनयनस्तिष्टति। राक्षसोऽपि तं तथाभूतमवलोक्यष्लोकमेनभमपठत् –

यादृशी वदनच्छाया दुश्यते तव वानर ।

विकालेन गृहीताऽसि, यः परैति स जीवति ।।

हिन्दी :– उसके ऐसा सोचते हुए और इष्ट देवता का स्मरण करते हुए वह घोड़ा एक वटवृक्ष के नीचे से निकला । चोर वट की जटाओं को पकड़कर वहीं चिपक गया । तब वे दोनों अलग हुए तथा अत्यधिक प्रसन्न हुए एवं जीवन के विषय में आशावान् हो गये ।

उस वटवृक्ष पर राक्षस का मित्र एक वानर रहता था । राक्षस को भयभीत होकर भागते हुए जब उसने देखा तो उसे रोकते हुए बोला – अरे, झूठमूठ के भय से तुम क्यों भाग रहे हो ? यह तो तुम्हारा भक्ष्य मनुष्य है । इसे पकड़ कर खा जाओ ।

वानर की बात सुनकर वह राक्षस अपना स्वरूप प्रकट करके शंकायुक्त मन वाला भय त्रस्त सा धीरे–धीरे अपनी बति को रोकते हुए खड़ा हो गया । चोर भी उस राक्षस को वानर द्वारा बुलाया हुआ जानकर क्रोध के कारण उसकी लटकती हुई पूंछ को चबाने लगा । उस चोर को राक्षस से भी अधिक बलवान् समझकर डर के मारे वानर ने कुछ नहीं कहा, केवल अपनी दोनों ऑखों को बन्द करके मौन बैठा रहा । राक्षस ने जब उसको इस प्रकार मौन देखा तो इस श्लोक को पढ़ा–

'यादृशी वदनच्छाया' आदि । इस श्लोक को पढ़ने के बाद वह तत्काल वहाँ से भाग खड़ा हुआ ।

''तत्प्रेशय मां येन गृहं गच्छामि । त्वं पुनरनुभुङक्ष्वाऽत्र स्थित एव

लोभवृक्षफलम् । ''

चक्रधर आह–''भेः अकारणमेतत्। दैवात्सम्पद्यते नृणां शुभाङशुभम् । उक्तं च –

दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो रक्षांसि योधाधनदाच्च वितंम् ।

शास्त्रं च यस्योजनसा प्रणीतं स रावणों दैववशाद्विपन्न : ।।

हिन्दी :– सुवर्ण सिद्धि ने कहा ..... कहा भी है त्रिकूट पर्वत ही जिसका दुर्ग था, समुद्र खाई का काम करता था, राक्षस ही जिसका योद्धा थे, कुबेर का समस्त धन ही जिसका अपना था और शक्राचार्य द्वारा नीतिशास्त्र ही ज्ञानवर्द्धक शास्त्र था, वह रावण भी भाग्य की प्रतिकूलता के कारण मारा गया।

प्रस्तुत श्लोक में बताया गया है कि जिस शक्तिसम्पन्न रावण की लंका में त्रिकूट पर्वत दुर्ग का कार्य करता था। समुद्र खाई के समान चारो ओर से उसके राज्य की सुरक्षा करता था, राक्षस युद्ध करने के लिए हमेशा तत्पर रहते थे । स्वयं कुबेर से जिसे धन प्राप्त था, शुक्राचार्य जिसे मार्गदर्शन प्रदान करते थे । भाग्य के विपरीत होने पर वह रावण भी मृत्यु को प्राप्त हुआ । अतः यह दुर्भाग्य की ही परिणाम है कि आज मैं विपत्ति में फंसा हूँ ।

तथा च– अन्धकः, कुब्जकश्चैव, त्रिस्तनी राजकन्यका।

त्रयोऽप्यन्यायतः सिद्वाः सम्मुखे कर्मणि स्थिते।

हिन्दी :– और भी– अन्ध, कुब्ज तथा त्रिस्तनी राजकुमारी इन तीनों ने ही असत् कार्य किया था, किन्तु भाग्य की अनुकूलता से तीनों के मनोरथ पूर्ण हो गये।

कवि का कहना है कि यदि व्यक्ति का भाग्य अनुकूल होता है तो उसके द्वारा अनीतिपूर्वक किया गया कार्य भी अनुकूल फल प्रदान करने वाला होता है । जिस प्रकार अनाचरण में लिप्त अन्धें, कुबड़े तथा अशुभलक्षणों से युक्त तीन स्तनों वाली राजकन्या तीनों ही सफलता को प्राप्त हो गए । इससे यही सिद्ध होता है कि व्यक्ति का अच्छा या बुरा केवल भाग्य पर ही निर्भर होता है ।

सुवर्णसिद्धिः प्राह– ''कथमेतत '' साऽब्रवीत –

सुवर्णसिंद्धि ने पूछा–'यह कैसे,'' चक्रधर ने कह्ना शुरू किया–

2.8.4 साराशं :–

चन्द्रभूपति–कथा –

किसी नगर में चन्द्र नामक राजा रहता था। उसने राजकुमारों के खेलने के लिए कुछ बन्दर तथा भेड़ों को पाला हुआ था । भेढ़ों में एक भेड़ खाने का अत्यधिक लालची था । वह छिपकर चोरी से रसोई में जाकर जो कुछ भी मिलता उसे खा जाता था। रसोईये उससे अत्यन्त परेशान थे । अतः वे जो कुछ भी हाथ में आता उसे ही भेड़ पर दे मारते थें। यह सब देखकर बन्दरों के नेता ने इस घटना को सभी बन्दरों के लिए अनिश्ट का कारण मानते हुए राजमहल छोड़ने का निश्चय किया ।

साथ ही सभी युवा बन्दरों से राजमहल को शीघ्र ही छोड़ने के लिए कहा, किन्तु उन्होंने लालच के वशीभूत होकर उस वृद्ध बन्दर की बात को हॅसी उड़ाते हुए, वहॉ से अन्यत्र जाने के लिए मना कर दिया उनके उपहास से दुःखी वृद्ध बन्दर जंगल में जाकर रहने लगा।

तत्पश्चात् एक बार वही भेड़ खाने के लालच में रसोई में घुसा । उसे देखकर एक रसोइये ने क्रोध से उसकी पीठ पर जलती लकड़ी का प्रहार किया । जिससे उसकी पीठ के बालों में आग लग गयी । जलने की पीड़ा से व्याकुल वहॉ से दौड़कर घुड़साल में घुस गया । जिससे वहॉ रख्खी घास में आग लग गयी और बहुत से घोड़ों की चिकित्सा करने वाले लोगों ने घोड़ों की चिकित्सा के लिए बन्दरों की चर्बी की आवश्यकता बतायी इसके लिए महल के सभी बन्दरों को मार डाला गया ।

उधर जैसे ही बन्दरों के नायक को जंगल में अपने परिवार के विनाश का समाचार मिला तो वह अत्यन्त दुखी हुआ तथा उसने राजा से इसका बदला लेने का निर्णय किया। जंगल में घूमते हुए उसने एक तालाब देखा जहॉ पशुओं एवं मनुष्यों के पैरों के चिन्ह जाते हुए तो विद्यमान थे, किन्तु वापस लौटने के निशान नहीं । अतः उसने कमल की नाल द्वारा अत्यन्त सावधानी से दूर बैठकर ही तालाब का जल पिया । वस्तुतः उस तालाब में एक राक्षस रहता था, जो इस तालाब में प्रवेश करने पर सभी प्राणियों का खा जाता था । यह देखकर बन्दर ने राक्षस के माध्यम से राजा चन्द्रभूपति से बदला लेने की योजना बनाई । उसने राक्षस से पूछा कि तुम एक साथ कितने लोगों को खा सकते हो । राक्षस ने कहा –''मैं इस तालाब में धूमने वाले सौ हजार हाथियों को भी एक साथ खाने का सामर्थ्य रखता हूँ, किन्तु इससे बाहर मैं गीदड़ का भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

इस पर उसने राक्षस के गले की बहुमूल्य रत्नमाला लेकर उसे राजा के सभी परिजनों

को भोजनार्थ तालाब तक लाने का आश्वासन दिया। बन्दरों के वृद्धनायक ने राक्षस की रत्नमाला ले जाकर राजा को दिखायी तथा उसे तालाब में जाकर स्नान करके अन्य भी बहुत सी रत्नमालाओं के मिलने का लालच दिया। लालच के वशीभूत हुआ राजा अपने परिवार के सभी सदस्यों एवं सेवकों के साथ तालाब पर आया तथा उन सभी के तालाब में घुसने पर राक्षस ने उन्हें खा लिया। केवल राजा को बन्दर ने नीतिपूर्वक इस तालाब में नहीं घुसने दिया, जिससे वह उसके परिवार जनों के विनाश के दुख से दुःखी हो सके।

इस प्रकार नीतिनिपुण बन्दर ने राक्षस को अपना मित्र भी बना लिया, अपने शत्रु राजा से बदला भी ले लिया तथा बहुमूल्य रत्नमाला भी प्राप्त कर ली। साथ ही राजा की सुरक्षा करते हुए अपनी स्वामी–भक्ति भी प्रकट कर दी। राजा को अपने परिजनों के विरह दुःख अनुभव करने के लिए जीवित भी छोड़ दिया।

विकाल वानर कथा–

किसी नगर में भद्रसेन नामक राजा रहता था। उसकी एक रत्नवती नाम की सुन्दर एवं शुभलक्षणों से युक्त कन्या थी। विकाल नामक एक राक्षस, उसका हरण करना चाहता था। एक बार अर्द्धरात्रि में जब वह राक्षस कोने में छिपकर खड़ा हुआ था, तभी उस राजकुमारी ने अपनी सखी से कहा कि–'एक विकाल नाम का राक्षस मुझे प्रतिदिन निश्चित समय पर परेशान करता है। उसकी बात सुनकर राक्षस ने सोचा कि मेरे अतिरिक्त कोई अन्य विकाल राक्षस भी इसे हरण करना चाहता है। उसे देखने की उत्सुकता के कारण वह घोड़ा बनकर राजा के घोड़ों में जाकर छिप गया।

तभी घोड़ों को चुराने वाला एक चोर श्रेष्ठ घोड़ा मानकर उसे लेकर चल दिया और उस पर चढ़कर जोरदार चाबुक लगाया। यह सब देखकर अश्वरूपधारी राक्षस ने सोचा कि यही वस्तुतः विकाल नामक वह राक्षस है जो राजकुमारी का हरन करना चाहता है। और मुझे पहचानने के कारण ही मुझे इस प्रकार कठोरतापूर्वक मार रहा है। इसलिए वह तीवग्रति से दौड़ा तथा बार–बार लगाम खींचने पर भी नहीं रुका।

उधर चोर ने लगाम खींचने पर भी उसके न रूकने पर विचार किया कि अवश्य ही यह कोई अश्व रूपधारी राक्षस है। अतः वह अपने प्राणों की रक्षा का उपाय सोचने लगा। तभी मार्ग में एक बरगद का पेड़ आया, चोर ने उसकी शाखाओं से लटकर अपनी जान बचाई।

तभी उस वटवृक्ष पर बैठे हुए राक्षस के मित्र बन्दर ने कहा–हे राक्षस! तुम इससे क्यों डर रहे हो? यह तो तुम्हारा भोजन मनुष्य है। उसकी बात सुनकर राक्षस कुछ करता,

इससे पहले ही क्रोधित होकर चोर ने बन्दर की लटकती हुई पूछॅ को दातों से चबा डाला। बानर को पीड़ा के कारण अनेक प्रकार से मुॅह बनाते देखकर राक्षस अपने प्राणों की रक्षा करने की दृष्टि से वहॉ से भाग खड़ा हुआ।

2.8.5 निष्कर्ष

चन्द्रभूपति–कथा–

प्रस्तुत कथा में यह बताया गया है कि परिणाम को जाने बिना में लोभवश कोई भी कार्य नहीं करना चाहिए। इस कथा में एक बन्दर की बात पर विश्वास कर प्रचुर रत्नमाला की प्राप्ति के लिए राक्षसयुक्त एक तालाब में अर्धादय काल के अवसर पर अपने परिवार एवं परिजनों को स्नान कराकर धोखा खाने का तथा तृष्णा की तरूणाई का वर्णन है । परिणाम का विचार न कर अपने नेता की समुचित बात न मानने वाले व्यक्ति वानरों के समान मारे जाते हैं और लोभवश कार्य करने वाले व्यक्ति चन्द्रभूपति की तरह धोखा खाते हैं ।

अतः बिना परिणाम सोचे अति लोभ से किसी अविश्वासी का सहसा विश्वास कर कोई कार्य नही करना चाहिए ।

विकाल–वानर–कथा –

यह कथा इस तथ्य को व्यक्त करती है कि अपने प्राणों को संकट में देखकर दुखी व्यक्ति के मित्र भी उसको छोड़ कर उससे दूर भाग जाते हैं । जिस प्रकार अपने मित्र बन्दर को कष्ट में पड़े देखकर उसके मित्र विकाल नामक राक्षस उसे छोड़ कर भाग गया उसी प्रकार दुःखी व्यक्ति को उसके मित्र छोड़ देते हैं ।

2.8.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. चन्द्रभूपति कथा का सार तथा इससे प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन कीजिए?

____

____

____

____

2. विकाल–वानर–कथा का सार तथा उससे प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन कीजिए?

—————————————————————————————————————

—————————————————————————————————————

—————————————————————————————————————

—————————————————————————————————————

3. निम्न श्लोक की सप्रसंग व्याख्या कीजिए :–

" तस्मात् स्थात् कलधे ———————— दूरतः परिवर्जयेत्।।' '

—————————————————————————————————————

—————————————————————————————————————

—————————————————————————————————————

—————————————————————————————————————

4. निम्न गद्यांश की सप्रसंग व्याख्या कीजिए :–

तच्छु त्वा राक्षसोऽपि व्यचिन्तयत् – '' नूनं यथाहं, तथाऽन्योऽपि कष्विद्विकाल–नामास्या हरणाय नित्यमेवागच्छति, परसोंऽप्येनां हर्तुं न शक्नोति । ततावदश्वरूपं कृत्वाऽश्व मघ्यगतो निरीक्षयामि – किंरूपः सः किं प्रभावश्चेति ?'' एवं राक्षसाऽष्वरूपं कृत्वाऽष्वानां मध्ये तिष्ठति ।

—————————————————————————————————————

—————————————————————————————————————

—————————————————————————————————————

—————————————————————————————————————

✠✠✠✠✠✠✠

2.9.1 प्रस्तावना

2.9.2 उद्देश्य

2.9.3 'अन्धक–कुब्जक–त्रिस्तनी' कथा तथा 'राक्षस गृहीत ब्राहमण कथा' का अनुवाद एवं व्याख्या

2.9.4 साराशं

2.9.5 निष्कर्ष

2.9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

2.9.1 प्रस्तावना :–

यह पाठ भी 'पञ्चतन्त्र' के पञ्चम तन्त्र से लिया गया है। प्रस्तुत पाठ के अन्तर्गत 'अन्धक–कुब्जक–त्रिस्तनी' कथा तथा 'राक्षस गृहीत ब्राहमण कथा' का समावेश किया है। 'अन्धक–कुब्जक त्रिस्तनी' कथा यह स्पष्ट करती हैं कि भाग्य के अनुकूल होने पर, किस प्रकार बुरा कार्य भी एक अन्धे, कुबड़े तथा त्रिस्तनी के लिए वरदान सिद्ध हुआ तथा 'राक्षस गृहीत–ब्राह्मण में सन्देह उपस्थित होने पर बार–बार पूछने वाले व्यक्ति के स्वभाव की प्रशंसा की गयी है ।

2.9.2 उद्देश्य

- सरल संस्कृत भाषा के माध्यम से विद्यार्थियों में गद्य तथा पद्य में रूचि उत्पन्न करना।

- संस्कृत गद्य एवं पद्य का लय के अनुसार पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना।
- संस्कृत का मातृभाषा एवं मातृभाषा को संस्कृत में अनूदित करने की योग्यता उत्पन्न करना।
- संस्कृत में शुद्ध वाक्य रचना, पत्र लेखन, संवाद – आदि की योग्यता उत्पन्न करना।
- विविध परिस्थितियों के अनुकूल मानवीय व्यवहार से छात्रों को परिचित करवाना।
- सरल एवं कठिन सभी प्रकार के गद्यों को उचित विराम एवं उच्चारण सहित पढ़ने की योग्यता उत्पन्न करना।
- आवश्यकतानुसार उचित अवसरों पर संस्कृत भाषा में बोलने की क्षमता प्रदान करना।
- छात्रों में 'संस्कृत शब्द भण्डार में' वृद्धि करना।
- विद्यार्थियों को लोकव्यवहार एवं नैतिक शिक्षा प्रदान करना।
- पशु–पक्षियों की रोचक–कथाओं के माध्यम से उनमें संस्कृत–साहित्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना।

2.9.3 अन्धक–कुब्जक–त्रिस्तनी' कथा तथा 'राक्षस गृहीत ब्राह्मण कथा' का अनुवाद एवं व्याख्या

अन्धक–कुब्जक–त्रिस्तनी–कथा

''अस्तयुतरापथे मधुपुरं नाम नगरम्। तत्र मधुसेनो नाम राजा बभुव। तस्य कदाचिद्विशयसुखमनुभवतस्त्रिस्तनी कन्या वभूव। अथ तां त्रिस्तनी, श्रुत्वा, स राजा कचुकिनं प्रोवाच–यतु–''भोः! त्यज्यतामियं त्रिस्तनी, गत्वा दूरेऽरण्ये यथा कश्चित् न जानाति।''

तत् श्रुत्वा कचुकिनः प्रोचुः– 'महाराज! ज्ञायते यदनिष्टकारिणी त्रिस्तनी कन्या भवति। तथापि ब्राहाणं आहूय प्रष्टव्याः, येन लोकद्वयं न विरूध्यते।

यतः–

हिन्दी :– उतर दिशा में मधुपुर नामक एक नगर है, वहॉ मधुसेन नाम का राजा रहता था। विषयों का सुख अनुभव करते हुए उसके यहां कभी त्रिस्तनी (तीन स्तनोंवाली) कन्या उत्पन्न हुई। तब उस त्रिस्तनी कन्या के जन्म को सुनकर राजा बहुत चिन्तित हुआ। उसने कचुंकियों को बुलाकर कहा–इस कन्या को ले जाकर कहीं दूर वन में छोड़ दो। जिससे कि इस बात को कोई जानने न पाये।

राजा के इस आदेश को सुनकर कंचुकियों ने कहा– महाराज हम लोग इस बात को जानते हैं कि त्रिस्तनी कन्या अनिष्टकारिणी होती है फिर भी ब्राह्मण को बुलाकर पूछ लेना चाहिए जिससे इस लोक में निन्दा और परलोक में असद्‌गति न हो।

क्योंकि–

यः सततं परिपृच्छति, शृणोति, सन्धारयत्यनिशाम्।

तस्य दिवाकरकिरणैर्नलिनीव विवद्धंते बुद्धिः।

हिन्दी :– जो व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से परामर्श करता है, दूसरे की बात को ध्यान से सुनता है और उसके अनुसार आचरण करता है, उसकी बुदि सूर्य की किरणों से विकसित होने वाली कमलिनी के समान हमेशा विकसित होती रहती है ।

कवि का मानना है कि व्यक्ति को सदैव जिज्ञासा करते रहना चाहिए तथा किसी भी वात को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए और सुनी हुई बात को दीर्घकाल तक धारण किये रहना चाहिए । इस प्रकार आचरण करने से उसकी बुद्वि निष्चय ही वृद्वि को प्राप्त होती है ।

तथा च –

पृच्छकेन सदा भाव्यं पुरूषेण विजानता ।

राक्षसेन्द्रगृहीतोऽपि प्रश्नान्मुक्तो द्विजः पुरा ।।

हिन्दी :– और भी, सब कुछ जानते हुए भी मनुष्य को जिज्ञासु होना चाहिए, क्योंकि राक्षस के द्वारा गृहीत ब्राह्मण उससे पूछने के कारण ही मुक्त हुआ था ।

अथ तेभ्यस्तच्छ त्वा, राजा द्विजानाहूय प्रोवाच–" भो ब्राह्मणः ! त्रिस्तनी मे कन्या समुत्पन्ना, तत्किं तस्याः प्रतिविधानमस्ति, न वा ? "

ते प्रोचुः– देव श्रूयताम् –

तब उन कचुकियों से उस बात को सुन कर राजा ने ब्राह्मणों को बुला कर पूछा–हे ब्राह्मणों ! मेरी त्रिस्तनी कन्या पैदा हुई है । तो उसके प्रतीकार की कोई विधि है अथवा नहीं है ? उन्होंने कहा महाराज सुनिए–

हीनाग़ी वाऽधिकाग़ी वा या भवेत् कन्यका नृणाम् ।

भर्तुः स्यात् सा विनाशाय स्वशीलनिधनाय च ।।

हिन्दीः– मनुष्यों के यहॉ कम अगंवाली या अधिक अङ्गवाली जो कन्या उत्पन होती है, वह पति के विनाश के लिए और अपने चरित्र के हनन के लिए होती है ।

शास्त्रों के अनुसार कन्या का कम अंगों वाला अथवा अधिक अंगों से युक्त उत्पन्न होना दोनों ही अनिष्ट के कारण होते है, क्योंकि इस प्रकार की कन्या जहॉ अपने पति के विनाश का कारण होती है, वही अपने चरित्र का हनन करने वाली भी होती है ।

या पुनस्त्रिस्तनी कन्या याति लोचनगोचरम् ।

पितरं नाशत्येव सा द्रुतं नात्र संशयः

हिन्दी– यदि त्रिस्तनी कन्या के पिता की दृष्टि में पड़ती है, तो अपने पिता का शीघ्र ही नाश कर देती है, इसमें सन्देह नहीं ।

इस विषय में आगे कहते हैं कि यदि कोई तीन स्तनों वाली कन्या अपने पिता की दृष्टि में आती है तो वह कन्या पिता के विनाश का कारण बनती है । अतः अपना भला चाहने वाले अधिक अंगों वाली कन्या के पिता को इस विषय में सावधानी रखनी चाहिए ।

तस्मादस्या दर्शनं परिहरतु देवः । तथा यदि कश्चिदुद्वाहयति, तदेनां तस्मै दत्वा, देशत्यागेन स नियोजयितन्यः इति । एवंकृते लोकद्वयाऽविरूद्वता भवति । "

अथ तेषां तद्वचनमाकर्ण्य, स राजा पटहशब्देन सर्वत्र घोषणामाज्ञापयामास "अहो ! त्रिस्तनीं राजकन्यां यः कचिदुद्वाहयति, स सुवर्णलक्षमाप्नोति देशत्यागन्च ।"

एवं तस्यामाघोषणायां कियमाणायां महान् कालो व्यतीतः । न कश्चिद् तां प्रतिगृहाति । साऽपि यौवनोन्मुखी सन्जाता सुगुतस्थानस्थिता, यत्नेन रक्ष्यमाणा तिष्ठति ।

हिन्दी– इसलिए महाराज ! आप इस कन्या का दर्शन न करें । यदि कोई इसके साथ विवाह करना चाहे तो उसके साथ इसका विवाह करके इसको राज्य ने निकाल दिया जाये । ऐसा करने से आपके दोनों लोक बने रहेगे ।

तब उन ब्राह्मणों के वचन को सुनकर राजा ने ढोल की ध्वनि के साथ घोषणा कराने की आज्ञा दे दी कि मेरी त्रिस्तनी कन्या के साथ जो विवाह करेगा उस व्यक्ति को एक लाख सुवर्ण मुद्राएँ दी जायेंगी और साथ ही उसको राज्य से निकाल भी दिया जायेगा।

राजा की इस घोषणा के हुए बहुत दिन बीत गये, परन्तु कोई व्यक्ति उस कन्या से विवाह करने के लिए तैयार नही हुआ । वहाँ कन्या भी धीरे–धीरे युवती हो गयी । उसको गुप्त स्थान में अत्यन्त प्रयत्न के साथ सुरक्षित रखा गया।

अत्र तत्रैव नगरे कश्चिदन्धस्तिष्ठति । तस्य च मन्थरकनामा कुब्जोऽग्रेसरो यष्टिग्राही । ताभ्यां तं पटह शब्दमाकर्ण्य, मिथोमन्त्रितं – स्पृश्यतेऽयं पटह : यदि कथमपि दैवात् कन्या लभ्यते, सुवर्णप्राप्तिश्च, भवति तथा सुखेन सुवर्णप्राप्त्या कालो व्रजति । अथ यदि तस्य दोषतो मृत्युर्भवति, तदा दारिद्रयोपातस्याऽस्य कलेशस्य पर्यन्तो भवति?।

उक्तं च –

हिन्दी :– उसी नगर में एक अन्धा रहता था और मन्थरक नाम का एक कुबड़ा व्यक्ति उसका मित्र था, जो उसकी लाठी पकड़कर आगे–आगे चलता था। उन दोनों ने जब राजा की घोषणा को सुना तो आपस में विचार यह ढोल यदि हमारे द्वारा छू लिया जाता है। संयोग से राजकन्या मिलती है, एक लाख स्वर्ण मुद्राएँ भी मिल जायेंगी, उनसे हम लोंगो का समय सुख से बीतेगा । इसके अतिरिक्त यदि उसके कुलक्षणी होने से मृत्यु होती है तो निर्धनता से होनेवाले इस कष्ट का अन्त हो जायेगा ।

क्योंकि कहा भी गया है–

लज्जा स्नेह : स्वरमधुरता बुद्वयो यौवनश्री : ,
कान्तासङ्ग स्वजनममता दुःखहानिर्विलासः ।
धर्मः शास्त्रं सुरगुरूमतिः शौचमाचारचिन्ता,
पूर्णे सवें जठरपिठरे प्राणिनां सम्भवन्ति ।।

हिन्दी– लज्जा, प्रेम, प्रियभाषिता, विचारशीलता, युवावस्था का सौन्दर्य, प्रेमिका का साथ, प्रिय व्यक्तियों का मोह, कष्ट, हानि, विलास, सुखोपभोग, धर्माचरण, शास्त्राध्ययन, देवता तथा गुरूजनों में श्रद्धा, आचार, पवित्रता आदि का विचार मनुष्य के मन में तभी तक होता है जब तक उसका पेट भरा रहता है, पेट के खाली रहने पर कोई भी बात अच्छी नहीं लगती ।

प्रस्तुत श्लोक में कहा है कि भूखे पेट व्यक्ति को कुछ भी अच्छा नही लगता, इसके विपरीत यदि उसका पेट भरा हुआ होता है, वह तृप्त रहता है तो ही इस संसार में आचरण की जाने वाली लल्जा, प्रेम, वाणी का माधुर्य, विचारशीलता, यौवन के प्रति आकर्षण, प्रेमिका के प्रति आसक्ति, तथा शृंगारिक चेष्टाओं मे व्यक्ति का मन लगता है । इसी प्रकार अपनों के प्रति लगाव, सुख–दुख, लाभ–हानि आदि के विषय में वह विचार कर पाता है । धर्म के प्रति उसकी रूचि होती है और वह देवताओं तथा गुरूओं के प्रति श्रद्धायुक्त आचरण करता है । तथा अच्छे बुरे कायों के विषय में विचार करता है ।

एवमुक्त्वाऽन्धेन गत्वा, स पटहः स्पष्टः । उक्तं च–''भोः, अहं तां कन्यामुद्वाहयामि, यदि राजा मे प्रयच्छति । ''

ततस्तै राजपुरूशैर्गत्वा, राज्ञे निवेदितम्–''देव ! अन्धेन केनचित्पटहः स्पृष्टः । तदत्र विषय देवः प्रमाणम् ।''

राजा प्राह –

हिन्दी– इस प्रकार आपस में विचार करके अन्धे ने जाकर ढोल को पकड़ लिया और कहा–यदि महाराज कहें तो मैं उस कन्या के साथ विवाह करना चाहता हूँ । राजपुरूषों ने राजा के पास जाकर तत्पश्चात् निवेदन किया –देव ! एक अन्धे ने ढोल को पकड़ लिया है । इस विषय में आपका जो आदेश हो उसका पालन हम

लोग करेंगे । राजा बोला।

अन्धो वा बधिरो वाऽपि कुष्ठी वाप्यन्त्यजोऽपि वा ।

प्रतिगृहणातु तां कन्यां सलक्षयां स्याद्विदशाग : ।।

हिन्दी– चाहे वह अन्धा हो, बहिरा हो, कोढ़ी हो या चाण्डाल हो, मैं उसके साथ इस कन्या का विवाह करने को प्रस्तुत हूँ । वह एक लाख स्वर्ण–मुद्राओं के साथ इस कन्या को ग्रहण करे और तत्काल यह राज्य छोड़ दे ।

प्रस्तुत श्लोक में राजा द्वारा किसी भी व्यक्ति को कन्या देने का दृढ़ निश्चय अभिव्यक्त हुआ है । वस्तुतः राजा भविष्य में होने वाले अनिष्ट के प्रति भयभीत है, अतः उसने वर में किसी भी बात को देखना ठीक नही समझा ।

अथ राजादशातै राजपुरूषैस्तं नदीतीरे नीत्वा सुवर्णलक्षेण समं विवाह विधिना त्रिस्तनीं तस्मै दत्वा, जलयाने निधाय कैवर्ताः प्राक्त्नः– "भो ! देशान्तरं नीत्वा कस्मिंश्चिदधिष्ठानेऽन्ध : सपत्नीकः, कुब्जकेन सह मोचनीय : "।

तथानुश्ठिते विदशमासाद्य, कस्मिंष्चिदधिश्ठाने कैवर्तदषिते त्रयोऽपि मूल्येन गृहं प्राप्ताः सुखेन कालं नयन्ति स्म । केवलमन्ध : पर्यकें सुप्त :तिष्ठति, गृहव्यापार मन्थरकः करोति । एवं गच्छता कालेन त्रिस्तन्या कुब्जकेन सह विकृतिः समपद्यत् । अथवा साध्विदमुच्यते –

हिन्दीः – तब राजा के आदेश से उन राजपुरूषों ने उस अन्धे को नदी के किनारे पर ले जाकर विधि से विवाह कर त्रिस्तनी को एक लाख स्वर्णमुद्राओं के साथ उसे देकर उन्हे नौका में बैठाकर मल्लाहों से कहा–'अरे दूसरे देश में ले जाकर कुबड़े के साथ पत्नी सहित इस अन्धे को छोड़ देना ।

वैसा करने पर विदेश पहुॅच कर केवटों, द्वारा दिखाये गये किसी नगर में भाड़े पर मकान लेकर वे तीनों ही सुख से रहने लगे । अन्धा रात–दिन चारपाई पर पड़ा रहता था और मन्थरक घर का सारा प्रबन्ध किया करता था । इस प्रकार कुछ दिन बीत जाने पर त्रिस्तनी की कुबड़े मन्थरक के साथ अवैध सम्बन्ध स्थापित हो गये ।

अथवा ठीक ही कहा गया है –

यदि स्याच्छीतलो वहिन्श्चन्द्रमा दहनात्मक : ।

सुस्वादुः सागरः स्त्रीणां तत्सतीत्वं प्रजायते ।।

हिन्दी– यदि आग अपनी स्वाभाविक उष्णता को छोड़कर शीतल हो जाये, चन्द्रमा शीतलता को छोड़कर उष्ण हो जाये और खारा समुद्र मधुर हो जाये तो कदाचित् शायद स्त्री अपने सतीत्व का पालन कर सकती है।

कहने का अभिप्राय यह है कि – क्योंकि उपर्युक्त तीनो बाते–अग्नि का शीतल होना, चन्द्रमा का जलने वाला होना, तथा समुद्र का स्वादिष्ट जल वाला होना, असम्भव हैं । इसलिए स्त्रियों के चरित्र में पवित्रता भी पूर्णतया असम्भव है ।

अथाऽन्येद्यत्रिस्तन्या मन्थरकाऽभिहित :– " भो सुभग ! यद्येशोऽन्ध : कथन्वित् व्यापाद्यते, तदावयोः सुखेन कालो याति । तदन्विश्यतां कुत्रचिद्विषम्, येनाऽस्मै तत् प्रदायसुखिनी भवामि ।"

अन्यदा कुब्जकेन परिभ्रमता, मृतः कृष्णसर्पः प्राप्तः। तं गृहीत्वा, प्रहष्टमना गृहमभ्येत्य, तामाह–"सुभगे ! लब्धाऽयं कृष्णसर्प : । तदेनं खण्डशः कृत्वा प्रभूतसुष्ठयदिभिः । संस्कार्यास्मै विकलनेत्राय मत्स्यामिश भणित्वा प्रयच्छ, येन द्राग्विनष्यति । यताऽस्य मत्स्यामिशं सदा प्रियम् । " एवमुक्त्वा मन्थरको बहिर्गत : ।

हिन्दी– इसके बाद त्रिस्तनी ने एक दिन मन्थरक से कहा –हे प्रिय ! यदि यह अन्धा किसी प्रकार मार दिया जाता तो हम दोनों का समय सुखर्पूवक बीतता । तो तुम कहीं से विष खोजकर लाओ जिससे इसको विष खिलाकर निश्चिन्त एवं निर्भय हो जाउँ ।

इसके उपरान्त एक बार घूमते हुए कुबड़े को एक मरा हुआ काला सॉप मिल गया । उसे लेकर वह प्रसन्नतापूर्वक लौटा और त्रिस्तनी से कहा –प्रिये ! यह काला सॉप मिला है, तो इसे टुकड़े–टुकड़े करके सोंठ, मिर्च, नमक आदि से स्वादिष्ट खूब बढ़िया बना दो और मछली का मांस कहकर इस अन्धे को खिला दो जिससे यह शीघ्र ही मर जायेगा । क्योंकि इसे मछली का मांस हमेशा अच्छा लगता है । यह कहकर मन्थरक कहीं बाहर चला गया ।

साऽपि प्रदीप्ते वहनै कृष्णसर्प खण्डशः कृत्वा तक्रस्थाल्यामधाय गृहव्यापारा–कला तं विकलाऽक्षं सप्रश्रयमुवाच–"आर्यपुत्र ! तवाभीष्टं मत्स्यमांसं समानी–तम् ।

यतस्त्वं सदैव तत्पृच्छसि । ते च मत्स्या वहौ पाचनाय तिष्ठन्ति । तद्यवदहं गृहकृत्यं करोमि, तावत्वं दवींमादाय क्षणमेकं तान् प्रचालय ।''

साऽपि तदाकर्ण्य दृष्टमनाः सृक्कणी परिलिहन् द्रुतमुस्थाय दवींमादाय प्रमथितुमारब्धः । अथ तस्य मत्स्यान् मथ्नतो विशगर्भबाष्पेण संस्पृष्टं नीलपटलं चक्षुर्भ्यामगलत् । असावप्यन्धास्तं बहुगुणं मन्यमानो विषेशान्नेत्राभ्यां बाष्पग्रहणमकरोत् ।

हिन्दी– उस त्रिस्तनी ने उस साँप को टुकड़े टुकड़े काटकर छाँछ की पतीली में रख उसे आग पर रखकर ग्रह कार्य की व्यस्तता के कारण प्रेमपूर्वक उस अन्धे से कहा –आर्यपुत्र ! आपकी प्रिय वस्तु मछली मँगायी गयी है, क्योंकि आप उसके विषय में बार–बार पूछा करते हैं । उन मछलियों को पकने के लिए मैंने आग पर चढ़ा दिया है, आप कड़छी लेकर उसे तब तक चलाते रहिये जब तक मैं घर का अन्य कार्य कर लेती हूँ । अपने दोनों ओठों के किनारे को जीभ से चाटते हुए कड़छी को लेकर उसने चलाना प्रारम्भ किया । मछली को चलाते समय उसके नेत्रों में विषमिश्रित वाष्प के लगने से आँख का नीलापर्दा गलकर गिरने लगा । उसे अत्यन्त लाभकारी मानते हुए इस अन्धे ने भी अपने नेत्रो से विशेष रूप से इसके भाप को ग्रहण किया ।

ततो लब्धादृष्टिर्जातो यावत्पश्यति, तावतकमध्ये कृष्णसर्पखण्डानि केवलान्येवाऽवलोकयति ततो व्यचिन्तयत्–''अहो, किमेतत् ? मम मत्स्यामिश कथितमासीदनया । एतानि तु कृष्णसर्पखण्डानि । तत्रावद्विजानामि सम्यक् त्रिस्तन्याश्चेष्टितं, किं ममवधोपायकमः कुब्जस्य वा । उताहो अन्यस्य वा कस्यचित् ।'' एव विचिन्त्य स्वाकारं गूहयन्नधवत्कर्म करोति यथापुरा । अत्रान्तरे कुब्जः समागत्य, निःशकतयालिडगनचुम्बनादिभिस्त्रिस्तनीं सेवितुमुपचकमे । सोऽप्यन्धस्तमवलोकयत्रपि यावन्त किश्चिच्छस्त्रं पश्यति, तावत्कोप ब्याकुलमनाः पुर्ववच्छयनं गत्वा कुब्जं चरणाभ्यां सङ्गृह्य, सामर्थ्यात्स्वमस्तकोपरि भ्रामयित्वा त्रिस्तनीं ह्दये व्यताडयत् ।

अथ कुब्जप्रहारेण तस्यास्तृतीयः स्तन उरसि प्रविष्टः । तथा वलान्मस्तकोपरि भ्रमणेन कुब्जः प्रान्चलतां गत : । अताऽहं ब्रवीमि –अन्धकः कुब्जकश्चैव इति ।

सुवर्णसिद्विराह –''भोः ! सत्यमेतत् । दैवाऽनुकूलतया सर्व कल्याण सर्व कल्याणं सम्पद्यते । तथापि पुरूषेण सतां वचनं कार्यम् । पुनरेवमेव वर्तितव्यम् । अथ

एवमेव यो वर्तते, स त्वमिव विनश्यति । तथा च –

हिन्दी :– भाप के सेवन से अन्धे की ऑखें खुल गई । बाद में उसने देखा कि छाछ मट्ठे में केवल काले सॉप के टुकड़े पड़े हुए हैं । उसने सोचा – अरे ! यह क्या है ? त्रिस्तनी ने तो मुझसे कहा था कि मछली का मांस है । ये तो काले सॉप के टुकड़े हैं । अच्छा, जरा समझ तो लूं त्रिस्तनी की चाल को । यह मुझे मारने का उपाय किया गया है, या कुब्जे को अथवा किसी अन्य को । यह सोच कर वह अपने स्वरूप को छिपाते हुए अन्धे की तरह पहले की भाति कार्य करने लगा ।

इसी समय वह कुबड़ा घर में आकर त्रिस्तनी का आलिङ्गन एवं चुम्बन आदि उसके साथ रमण करने लगा । अन्धे ने उन्हें इस अवस्था में देख कर मारने के लिए जब दूसरी वस्तु नहीं पायी, तो क्रोध से व्याकुल होकर पहले के समान टटोलता हुआ खाट के पास जाकर कुबड़े की दोनों टॉगों को पकड़ लिया और पूरी ताकत लगाकर अपने सिर के उपर घुमाने के बाद त्रिस्तनी की छाती पर दे मारा ।

अन्धे के इस प्रहार से त्रिस्तनी का तीसरा स्तन उसकी छाती में घुस गया और बलपूर्वक घुमाने के कारण कुबड़ा भी सीधा हो गया, इसलिए मैं कहता हूॅ कि भाग्य के अनुकूल होने पर अन्धा, कुबड़ा एवं त्रिस्तनी तीनों का दोष बुरा कर्म करते हुए भी मिट गया ।

यह सुनकर सुवर्णसिद्वि ने कहा–भाई, तुम ठीक कहते हो । भाग्य के अनुकूल रहने पर सर्वत्र कल्याण लाभ होता है । फिर भी मनष्यों को सज्जन व्यक्तियों का आदेश मानना चाहिए अपने मन का नहीं करना चाहिए । दूसरों की बात न मानकर अपने मन से कार्य करने वाला व्यक्ति तुम्हारी ही तरह बुरा कष्ट उठाता है । क्योंकि कहा भी गया है –

एकोदरा : पृथग्ग्रीवा अन्योन्यफलभक्षिणः ।

असंहता विनश्यन्ति, भारूण्डा इव पक्षिण ।।

हिन्दी :– एकमत होकर कार्य न करने वाले व्यक्ति एक उदर, किन्तु दो मुख वाले और परस्पर में पृथक्–पृथक् फलों कों खानेवाले भारूण्ड नामक पक्षी के समान विनष्ट हो जाते हैं ।

प्रस्तुत श्लोक में आगे आने वाली 'भारूण्डपक्षि–कथा' की ओर संकेत किया गया है ।

चक्रधर आह–''कथमेतत् ?'' सोऽब्रवीत् –

चक्रधर ने पूछा–'यह कैसे ?' सुवर्णसिद्धि ने कहा –

राक्षस गृहीत ब्राह्मण–कथा

''देव ! कस्मिंश्चिद्वनोदेशे चण्डकर्मा नाम राक्षसः प्रतिवसति स्म। एकदा तेन भ्रमताऽटव्यां कश्चिद् ब्राह्मणः समासादितः । ततस्तस्य स्कन्धमारूह्य प्रोवाच । ''भे ! अग्रेसरो गम्यताम् ।''

ब्राह्मणोऽपि भयत्रस्तमनास्तमादाय प्रस्थितः– अथ तस्य कमलोदरकौमलौ पादौ दृष्टवा ब्राह्मणो राक्षसमपृच्छत् ''मोः । किमेवंविधै ते पादावतिकोमलो ? राक्षस आह–''भोः ! व्रतमस्ति, नाहमाद्रपादो भूमिं स्पृशामि । ''

ततस्तच्छ्रु त्वात्मनो मोक्षोपायं चिन्तन् स सरः प्रासः। ततो राक्षसेनाऽभिहित– ''भे ! यावदहं स्नान कृत्वा, देवतार्चनविधि विधायागच्छामि, तावत्वयाऽतः स्थानादन्यत्र न गन्तव्यम् । ''

हिन्दी :– स्वामिन् ! किसी वनप्रान्त में चण्डकर्मा नाम का राक्षस रहता था । एक दिन वन में घूमते हुए उसने एक ब्राह्मण को देखा। तब उस ब्राह्मण के कन्धे पर चढ़कर बोला– अरे ! आगे चलो ।

वह बाह्मण भयभीत होकर चला । कुछ दूर जाने के बाद राक्षस के कमलवत् कोमल चरणों को देखकर ब्राह्मण ने पूछा– आपका चरण इतना कोमल क्यों है ? राक्षस ने उत्तर दिया, मेरी यह प्रतिज्ञा है कि मै भीगे हुए चरणों से पृथ्वी का स्पर्श नहीं करता हूँ ।

राक्षस की बात सुनकर वह ब्राह्मण अपनी मुक्ति का उपाय सोचता हुआ एक सरोवर तक जा पहुँचा । राक्षस ने सरोवर को देखकर कहा– मैं स्नानकर देवताओं का पूजन कर लेता हूँ । जब तक मैं वापस न लौटूँ तब तक तुम आगे न बढना ।

तथाऽनुष्टिते द्विजश्चिन्तयामास – '' नूनं देवताऽर्चनविधेरूर्ध्व मामेश भक्षयिष्यति । तद् द्रततरं गच्छामि, येनैश आर्द्रपादो न मम पृष्टमेश्यति । ''तथानुष्ठिते, राक्षसो व्रतभगंभयात्तस्य पृष्ठं न गतः । अताऽहं ब्रवीमि –'' पृच्छकेन सदा भाव्यम्'' इति ।।

हिन्दी :– राक्षस के स्नान करने के लिए चले जाने पर ब्राह्मण ने विचार किया –'अवश्य ही देवार्चन विधि के पश्चात् वह राक्षस मुझको खा जायगा । अतः शीघ्र ही यहाँ से चला जाता हूँ, जिससे यह गीले पैर होने के कारण मेरे पीछे न आ सकेगा । ब्राह्मण के ऐसा करने पर अपनी प्रतिज्ञा भंग होने के डर से राक्षस उसके पीछे नहीं गया । इसलिए मैं कहता हूँ व्यक्ति को सदा पूछने वाला होना चाहिए ।

2.9.4 साराशं

<u>अन्धक–कुब्जक–त्रिस्तनी कथा–</u>

उतर दिशा में स्थित मधुपुर नामक नगर में मधुसेन नामक राजा था। उसके यहाँ तीन स्तनों वाली एक कन्या ने जन्म लिया। राजा ने उस कन्या को वन में छोड़ने का आदेश दिया, किन्तु मन्त्रियों ने इस विषय में ब्राह्मण पण्डितों से परामर्श लेने का सुझाव दिया। ब्राह्मणों से पूछे जाने पर उन्होंने राजा को इस देखने से मना करते हुए युवती होने पर इसका विवाह किसी पुरूष के साथ करके दोनों को इसे देशत्याग कराने का परामर्श दिया।

तदनुसार ही कन्या को युवती होने तक राजा की दृष्टि से छिपाकर रखा गया। बाद में एक लाख स्वर्ण मुद्रा प्रदान करके एक अन्धे व्यक्ति के साथ उसका विवाह करके उसे देश से बाहर छुड़वा दिया। उसी दौरान अन्धे व्यक्ति की लाठी पकड़कर आगे–आगे चलने वाले कुबड़े तथा त्रिस्तनी युवती में परस्पर प्रेम हो गया। उन्होंने अन्धे को मार डालने की योजना बनायी। तदनुसार उन्होंने मरा हुआ काला सांप लाकर अन्धे को मछली का मांस बताकर पकाने को दिया। पके हुए सांप की भाप से अन्धे की ऑखों का मोतियाबिन्द गल कर गिर गया जिससे उसकी आखें ठीक हो गई।

ऑखे ठीक होने पर जब उसे उन दोनों के प्रेम–सम्बन्धों का पता चला तो उसने क्रोध में कुबड़े को पकड़कर जोरदार ढंग से घुमाया और त्रिस्तनी के पर दे मारा । यद्यपि उसने यह उन दोनों को ही मारने के लिए किया था, किन्तु भाग्य की अनुकूलता के कारण जोरदार ढ़ग से घुमाने से कुबड़े का कूबड़ ठीक हो गया और कुबड़े के छाती से टकराने से त्रिस्तनी का तीसरा स्तन भी वक्षस्थल में घुसकर ठीक हो गया। इस प्रकार भाग्य की अनुकूलता के कारण तीनों का परस्पर अनिष्ट की दृष्टि से किया गया कार्य भी उनके लिए जीवनदायी सिद्ध हुआ।

राक्षस–गृहीत ब्राहाण–कथा–

किसी वन में चण्डकर्मा नाम का राक्षस एक ब्राह्मण को पकड़कर सदैव उसके कन्धों

पर बैठकर सवारी करता था। उस ब्राह्मण की प्रश्न पूछने की आदत थी। अतः उसने राक्षस के आगे लटकते हुए कोमल पैरों को देखकर उससे उनकी कोमलता का कारण पूछा। राक्षस ने कहा–मेरा यह नियम है कि मैं गीले पैर पृथ्वी पर नहीं रखता हूॅं। इस नियम को सुनकर ब्राह्मण ने तालाब में स्नान करते हुए राक्षस को वहीं छोड़कर उससे मुक्ति प्राप्त की। राक्षस गीले पैरों से पृथ्वी पर न चल पाने के कारण ब्राह्मण का कुछ नहीं बिगाड़ सका । इस प्रकार अपनी प्रश्न पूछने की आदत के कारण राक्षस की कामजोरी जानकर ब्राह्मण ने राक्षस से मुक्ति पाई।

2.9.5 निष्कर्ष

अन्धक–कब्जक–त्रिस्तनी–कथा–

इस कथा में अदृष्ट का चित्रण करते हुए बताया गया है कि भाग्य की अनुकूलता पर अनुचित कार्य भी उत्कृष्टफल देने वाले होते हैं। भाग्य के अनुकूल होने पर कुकर्मी व्यक्ति भी कभी जीवन में सफल हो जाता है, जैसे बुरा कर्म करने पर भी अन्धक कुब्जक और त्रिस्तनी का जीवन अन्त में पहले से अधिक सुखी हो गया। यद्यपि इन तीनों ने धर्मपूर्वक उचित कार्य नहीं किया था, फिर भी भाग्य अच्छा होने के कारण उनके बुरे कर्म का परिणाम अच्छा ही निकला ।

राक्षसगृहीत– ब्राहाण––कथा–

प्रस्तुत कथा का निष्कर्ष यही है कि किसी विषय में जिज्ञासा होने और उसके बारे में जानने की प्रवृत्ति अत्यन्त लाभकारी होती है। क्योंकि सन्देह उपस्थित होने पर बार–बार पूछ लेने का परिणाम अच्छा ही होता है। अतः जिस प्रकार पूछने के स्वभाव के कारण ब्राह्मण के जीवन की रक्षा हुई, उसी प्रकार जिज्ञासु स्वभाव वाला व्य़क्ति लाभ में रहता है। वस्तुतः अपने कन्धे पर बैठे हुए राक्षस से उसके लटके हुए पैर की कोमलता के विषय में पूछकर उसे राक्षस जानकर भाग जाने के कारण उस ब्राह्मण के प्राण बच सके ।

2.9.6 अभ्यासार्थ प्रश्न :–

1. निम्न गद्यांश का अनुवाद कीजिए–

   अत्र तत्रैव नगरे कश्चिदन्धस्तिष्ठति । तस्य च मन्थरकनामा कुब्जोऽग्रेसरो यश्टिग्राही । ताभ्यां तं पटह शब्दमाकर्ण्य, मिथोमन्त्रितं – स्पशृयतेऽयं पटह : यदि कथमपि दैवात् कन्या लभ्यते, सुवर्णप्राप्तिश्च, भवति तथा

सुखेन सुवर्णप्राप्त्या कालो व्रजति । अथ यदि तस्य दोषतो मृत्युर्भवति, तदा दारिद्रयोपातस्याऽस्य कलेशस्य पर्यन्तो भवत्रि?।

---

2. अन्धक–कुब्जक–त्रिस्तनी नामक कथा का सार एवं उससे प्राप्त होनेवाली शिक्षा का वर्णन कीजिए?

---

2. राक्षसगृहीत– ब्राह्मण––कथा– का सार एवं उससे प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन कीजिए ?

---

4. निम्न श्लोक की सप्रसगं व्याख्या करें –

यदि स्याच्छीतलो वहिन्श्चन्द्रमा दहनात्मक : ।
सुस्वादुः सागरः स्त्रीणां तत्सतीत्वं प्रजायते ।।

____

____

____

____

✠✠✠✠✠✠✠

2.10.1 प्रस्तावना

2.10.2 उद्देश्य

2.10.3 भारूण्डपक्षि–कथा तथा ब्राहाण–कर्कटक कथा का अनुवाद एवं व्याख्या।

2.10.4 साराशं

2.10.5 निष्कर्ष

2.10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न :–

2.10.1 प्रस्तावना :–

विष्णुशर्मा द्वारा रचित 'पञ्चतन्त्र' के 'अपरीक्षितकारक' नामक पञ्चम तन्त्र से उद्धृत प्रस्तुत पाठ के अन्तर्गत भारूण्डपक्षि–कथा तथा ब्राह्मण–कर्कटक कथा संकलित है। भारूण्ड पक्षि कथा में एकता के अभाव में दो मुखों का विनाश प्रदर्शित है। एकता का हमारे जीवन में बहुत महत्व है। हमें परस्पर एक–दूसरे की बात को मानना चाहिए और बॉट के खाना चाहिए। प्रस्तुत कथा बताती है कि किस प्रकार परस्पर विरोध के कारण भारूण्ड नामक पक्षी के दोनो मुख विनष्ट हो गये। ब्राहाण–कर्कटक कथा में यह बताया गया है कि एकाकी यात्रा सुखदायी नहीं होती। भले ही कोई क्षुद्र जीव क्यों न हो, पर यात्रा में किसी न किसी का साथ रहना आवश्यक है। प्रस्तुत कथा में यह बताया गया है कि किस प्रकार एक ब्राह्मण अपनी मॉ के कहने पर यात्रा में एक केकड़ा साथ ले जाता है, और वह केकड़ा किस प्रकार एक सॉप से ब्राह्मण की रक्षा करता है।

2.10.2 उद्देश्य

- विद्यार्थियों को लोकव्यवहार एवं नैतिक शिक्षा प्रदान करना।
- पशु–पक्षियों की रोचक–कथाओं के माध्यम से उनमें संस्कृत–साहित्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना।
- सरल संस्कृत भाषा के माध्यम से विद्यार्थियों में गद्य तथा पद्य में रूचि उत्पन्न करना।
- संस्कृत गद्य एवं पद्य का लय के अनुसार पाठ करने की योग्यता उत्पन्न करना।
- विविध परिस्थितियों के अनुकूल मानवीय व्यवहार से छात्रों को परिचित करबाना।
- सरल एवं कठिन सभी प्रकार के गद्यों को उचित विराम एवं उच्चारण सहित पढ़ने की योग्यता उत्पन्न करना।
- आवश्यकतानुसार उचित अवसरों पर संस्कृत भाषा में बोलने की क्षमता प्रदान करना।
- छात्रों में 'संस्कृत शब्द–भण्डार में' वृद्धि करना।
- संस्कृत भाषा का मातृभाषा एवं मातृभाषा को संस्कृत में अनूदित करने की योग्यता उत्पन्न करना।
- संस्कृत भाषा में शुद्ध वाक्य रचना, पत्र लेखन, संवाद आदि की योग्यता उत्पन्न करना।

2.10.3 भारूण्डपक्षि–कथा तथा ब्राह्मण–कर्कटक कथा का अनुवाद एवं व्याख्या।

भारूण्डपक्षिकथा –

कस्मिंश्चित् सरोवरे भारूण्डनामा पक्षी एकोदरः, पृथग्ग्रीवः प्रतिवसति स्म । तेन च समुद्रतीरे परिभ्रमता कचित्फलममृतकल्पं तरङरक्षित सम्प्राप्तम् । सोऽपि भक्षयन्निदमाह–''अहो, बहूनि मय ऽमृतप्रायाणि समुद्रकलोलाहतानि फलानि भक्षितानि । परमपूर्वोऽस्यास्वादः । तत्कि पारिजातहरिचन्दनतरूसम्भवम् ? किं वा किन्चिदमृतमयफलमिदमव्यक्तेनापि विधिनाऽपातितम् ।

एवंतस्य ब्रुवतो द्वितीयमुखेनाऽभिहितम् ''भो यद्येवं तन्ममाऽपिस्तोकं प्रयच्छ, येनाऽहमपि जिहासौख्यमनुभवामि ।''

ततो विहस्य प्रथमवक्त्रेणाभिहितम्–''आवयोस्तावदेकमुदरम्, एका तृप्तिश्च भवति । ततः किं पृथग्भक्षितेन ? वरमनेनेशषेण प्रियातोष्यते । ''

हिन्दी :– किसी सरोवर में एक पेट, किन्तु अलग–2 कण्ठवाला एक भारूण्ड नाम का पक्षी रहता था । एक दिन समुद्र के किनारे घूमते हुए उसको अमृत तुल्य फल मिल गया, जो समुद्र की तरङ्गों द्वारा किनारे पर लाया गया था । उस फल को खाते हुए उसने कहा – ओह मैंने समुद्र की लहरों द्वारा तीर पर लाये गये बहुत से अमृत तुल्य फल खाये थे, किन्तु इसका स्वाद तो अद्भुत है, तो क्या यह किसी परिजात या हरिचन्दन आदि देववृक्ष का फल है ? अथवा मेरे अन्यन्त भाग्य ने कहीं से फल को लाकर यहॉ छोड़ दिया है ?

प्रथम मुख की बात को सुनकर द्वितीय मुख ने कहा – अरे भाई ! यदि इतना मधुर फल है तो थोड़ा मुझे भी दे दो, जिससे मैं भी इसके आस्वाद का आनन्द ले लूॅ ।

यह सुनकर पहले मुख ने हॅसकर कहा हमारा एक ही तो पेट है और एक से ही तृप्ति भी होती है, फिर अलग – अलग खाने से क्या लाभ है ? अच्छा तो यह होगा कि बचा हुआ भाग प्रियतमा को दे दिया जाये, जिससे वह भी सन्तुष्ट हो जायेगी ।

एवमभिधाय तेन शेषं भारूण्डयाः प्रदतम् । साऽपि तदास्वाद्य प्रड.गश्टतमा लिडनचुम्बनसम्भावनाद्यनेकचाटुपरा च बभूव । द्वितीयं मुखं तदिदनादेव प्रभृति सोद्वेगं सविषादं च तिष्ठति ।

अथाऽन्येद्युर्द्वितीयमुखेन विषफलं प्राप्तम् । तद् दृश्वाफ्रपरमाह–'' भो निर्स्त्रिष ! पुरूषाधम ! निरपेक्ष ! मया विषफलमासादितम् । तत्तेवाऽपमानादक्षयामि । ''

अपरेणाभिहितम्—"मूर्ख ! मा मैवं कुरू । एवं कृते द्वयोरपि विनाशो भविष्यति" । अथैवं वदता तेनाऽपमानेन तत्फलं भक्षितम् । किं बहुना, द्वावाप विनष्टौ ।" अतोऽहं ब्रवीमि –

" एकोदराः पृथग्ग्रीवा" इति ।

चक्रधर आह – " सत्यमेतत् । तद्गच्छ गृहम् । परमेकाकिना न गन्तव्यम् ।

उक्तं च –

हिन्दी :– यह कहकर बचे हुए फल को उसने अपनी पत्नी को दे दिया । उस फल के खाने के बाद वह प्रसन्न होकर पति को आलिङ्गन, चुम्बन तथा कटाक्ष–विक्षोप आदि द्वारा प्रसन्न करने लगी । दूसरा मुँह उस दिन से उदास एवं दुःखी रहने लगा।

किसी दूसरे दिन दूसरे मुँह ने एक विष्फल को प्राप्त किया । उसको देख कर उसने कहा – अरे नीच स्वार्थी ! आज मैंने विष्फल पाया है । तुमसे अपमानित होने के कारण मैं उसे खाउँगा । यह सुनकर पहले मुँह ने कहा – मूर्ख ! ऐसा करने से तो हम दोनों का ही विनाश हो जायेगा ।

उसके मना करने पर भी दूसरे मुँह ने उस फल को खा लिया । अधिक क्या कहा जाये दोनों ही उस विष्फल के खाने से मर गये । इसीलिए मैं कहता हूँ कि एकमत न होकर कार्य करने से भारूण्ड पक्षी के समान व्यक्ति का विनाश हो जाता है ।

चक्रधर ने कहा – तुम ठीक कहते हो । अच्छा, तो तुम जाओ, किन्तु अकेले मत जाना ।

क्योंकि कहा गया है ।

एकः स्वादु न भञ्जीत, नैकः सुप्तेषु जागृयात् ।

एको न गच्छेदध्वानं, नैकश्च्चार्थान्प्रचिन्तयेत् ।।

हिन्दी :– स्वादिष्ट या मीठी वस्तु को अकेले नही खाना चाहिए । यदि साथ के सभी व्यक्ति सो गये हों तो उनमें से एक व्यक्ति को नही जागना चाहिए । मार्ग में अकेले ही यात्रा नही करनी चाहिये । किसी गूढ़ विषय पर अकेले विचार नही करना चाहिए ।

प्रस्तुत श्लोक में यह बताया गया है कि इस संसार में कुछ कार्य व्यक्ति को

अकेले नही, अपितु सबके साथ मिलजुल कर करने चाहिए । इस श्लोक में कवि ने उन कार्यों का वर्णन किया है, जो व्यक्ति को अकेले नही करने चाहिए ।

अपि च –

अपि कापुरूषो मार्गे द्वितीय : क्षेमकारक : ।

कर्कटेन द्वितीयेन जीवितं परिरक्षितमु ।।

हिन्दी :– मार्ग में यदि अत्यन्त कायर व्यक्ति हो तो भी उसे साथ लेकर जाना चाहिए, क्योंकि साथ में रहने के कारण ही कर्कटक ने ब्राह्मण की जीवन रक्षा की थी ।

अर्थात मार्ग मे जाते समय व्यक्ति को हमेशा किसी दूसरे व्यक्ति को अवश्य साथ में ले लेना चाहिए । भले ही वह व्यक्ति कितना भी कायर अथवा डरपोक क्यों न हो । जैसे एक बार अकेले जा रहे ब्राह्मण की माता ने उसके साथ केंकड़े को कर दिया तो सामान्य से उस जीव द्वारा भी सांप से उस ब्राह्मण के प्राणों की रक्षा की गई ।

सुवर्णीसद्विराह –'कथमेतत्?'' सोऽब्रवीत्–

सुवर्णसिद्वि ने कहा –'यह कैसे हुआ ?' चक्रधर बोला

ब्राह्मणकर्कटक–कथा

कस्मिंश्चिदधिष्ठाने ब्रहादतनामा ब्राहाण : प्रतिवसति स्म । स च प्रयोजनवशाद् ग्रामं प्रस्थितः स्वमात्राऽभिहितः, यद् ''वत्स ! कथमेकाकी ब्रजसि ? तदन्विश्यता कश्चिद् द्वितीयः सहाय : ।

स आह – '' अम्ब ! मा भैषीः । निरूपद्रवोऽयं मार्गः । कार्यवषादेकाकी गमिष्यामि ।''

अथ तस्य तं निश्चयं ज्ञात्वा, समीपस्थवाप्याः सकाषात्कर्कटमादाय मात्राऽभिहितं –'' वत्स! अवश्यं यदि गन्तव्यं, तदेष कर्कटोऽपि सहायो भवतु । तदेनं गृहीत्वा गच्छ । ''

साऽपि मातुर्वचनादुभाभ्यां पाणिभ्यां न संगृहा कर्पुरपुटिकामध्ये निधाय, पात्रमध्ये संस्थाप्य शीघ्रं प्रस्थितः ।

हिन्दी :– किसी स्थान ब्रह्मदत नाम का एक ब्राह्मण रहता था । वह आवश्यक कार्य से जब एक दिन किसी दूसरे ग्राम को जाने लगा, तो उसकी मॉ ने कहा – पुत्र ! अकेले क्यों जा रहे हो, किसी साथी को खोज लो ।

उसने उत्तर दिया – मॉ डरो मत, यह मार्ग बाधा रहित है । कुछ कार्यवश अकेले ही जा रहा हूॅं ।

मॉ ने उसके दृढ़ निश्चय को जानकर पास की बाबली से कर्कट को लाकर देते हुए कहा–वत्स ! यदि तुम्हारा वहॉ जाना आवष्यक है तो इस केकड़े को ही साथ में ले लो । यही तुम्हारा सहायक होगा ।

मॉ की आज्ञा से उसने उस केकड़े को दोनों हाथों से पकड़ा और कपूर की डिबिया में रखकर चल दिया ।

अथ गच्छन्ग्रीश्मोष्मणा सन्तप्रः कश्चिन्मार्गस्थं वृक्षमासाद्य, तत्रैव प्रसुप्तः । अत्रान्तरे वृक्षकोटरान्निर्गत्य सर्पस्तत्समीपमागतः ।

यन्तरगतां कर्पूरपुटिकामतिलौल्यादभक्षयत् । सोऽपि कर्कटस्तत्रैव स्थितः सन् सर्पप्राणानपाऽहरत ।

ब्राहाणोऽपियावत्प्रबुद्व । पश्यति, तावत्समीप मृत कृष्णसपों निजपाष्वे कर्पूरपुटिकोपरि स्थितस्तिष्ठति । तं दृष्टवा व्यचिन्तयत् – '' कर्कटेनाऽय हत :'' इति । प्रसन्नो भूत्वाऽब्रवीच्च – '' भोः ! सत्यभभिहित मम मात्रा यत् – ''पुरूषेण कोऽपि सहायः कार्य । नैकाकिना गन्तव्यम् । '' यतो मया श्रद्वापूरितचेतसा तद्वचनमनुष्ठितं तेनाऽहं कर्कटेन सर्वव्यापादनाद्रक्षितः''

अथवा साध्विदमुच्यते –

हिन्दी :– कुछ दूर जाने के बाद ग्रीष्मकालिक भीषण धूप से व्याकुल होकर रास्ते के बीच में ही एक पेड़ के नीचे वह सो गया । इसी समय पेड़ की खोखर से निकलकर एक सॉप उस ब्राह्मण के पास गया । कपूर की सुगन्धि में स्वाभाविक रूचि होने के कारण सर्प ने ब्राह्मण को छोड़ दिया और पोटली को फाड़कर उसके अन्दर रखी हुई कपूर की पुड़ियां शीघ्रतावश निगल गया । उसमें रखे हुए केकड़े ने बाहर निकलकर सॉप को मार डाला ।

नींद खुलने पर जब ब्राह्मण ने इधर–उधर देखा, तो उसकी दृष्टि पास में पड़ी

हुई उस कपूर की डिबिया पर पड़ी, जिसपर मरा हुआ वह सॉप पड़ा था । उस सॉप को देखकर वह सोचने लगा कि केकड़े ने ही इसको मारा है । पुनः उसने प्रसन्न होकर अपने मन में सोचा कि मेरी मॉ ने ठीक ही कहा था –यात्राकाल में मनुष्य को कोई न कोई सहायक अवश्य खोज लेना चाहिए । अच्छा ही हुआ कि मैंने श्रद्धापूर्वक मॉ की आज्ञा को मान लिया था । उसी का यह परिणाम है कि आज इस केकड़े ने मुझे सॉप के काटने से बचा लिया है ।

अथवा ठीक ही कहा गया है –

क्षीणः श्रयति शशी रविमृद्धो वर्द्धयति पयसां नाथम् ।

अन्ये विपदि सहाया धनिनां, श्रियमनुभवन्त्यनये ।।

हिन्दी :– अमावस्या का कलाहीन चन्द्रमा सूर्य का आश्रय ग्रहण करता है, पूर्णिमा के दिन कलाओं से पूर्ण होने पर सूर्य को भूल जाता है तथा समुद्र को अहादित करता है । इससे यह स्पष्ट है कि सम्पन्न व्यक्तियों को आपत्ति काल में सहयोग देनेवाले दूसरे व्यक्ति होते हैं और उनके धन का उपयोग दूसरे व्यक्ति करते है ।

अर्थात छोटा दिखाई देने वाला भी अनेक बार अत्यधिक सामर्थ्य सम्पन्न कार्य करके सहयोगी बनता है तथा कार्यसिद्धि मे सहायक होता है । इसी प्रकार अनेक बार आपत्ति में बडे–बडे धनवान् लोगों की सहायता करने वाले अत्यन्त निर्धन लोग भी देखे जाते है । साथ ही दूसरे धनवान् लोग उनके धनों का भेग करके आनन्द प्राप्त करते हुए भी देखे जाते हैं। कहने का ताप्पर्य यह है कि कभी भी किसी को छोटा नही समझना चाहिए ।

मन्त्रे तीथे द्विजे देवे देवज्ञे भेषज्ञे गुरौ ।

यादृशी भावना यस्य सिद्विर्भवति तादृशी ।।

हिन्दी :– वेदमंत्र में, तीर्थ में, ब्राह्मण में, देवता में, ज्योतिषी में, औषधि में तथा गुरू में जिसकी जैसी भावना होती है, उसे वैसे ही सिद्धि प्राप्त होती है ।

प्रस्तुत श्लोक में कुछ बातों का उल्लेख करते हुए कवि कहता है कि इनमें व्यक्ति की जिस प्रकार की भावना होती है । उसे–उससे वह व्यक्ति उसी प्रकार की सफलता प्राप्त करता है । जैसे–वेदमन्त्रों के उच्चारण से प्राप्त हुई सफलता उसके प्रति श्रद्धाभाव पर निर्भर है । इसी प्रकार तीर्थ कितना भी पवित्र क्यों न हो, भावना

के अभाव मे वह भी कोई पुण्य प्रदान नही करता । इसी प्रकार ब्राह्मण सेवा तथा देवता भी भावना के अनुसार ही फल प्रदान करते है । ज्योतिषी , वैद्य, तथा गुरू आदि भी श्रद्धा के अनुसार ही सिद्धि प्रदान करने वाले होते हैं । ब्राह्मण ने अपनी माता के वचनों का श्रद्धा के साथ पालन कर केकड़े को अपने सहयोगी के रूप में साथ लिया, जिससे उसके प्राणों की रक्षा हो सकी ।

एवमुक्त्वासौ ब्राह्मणों यथाऽभिप्रेतं गतः ।

अतोऽहं ब्रवीमि–"अपि का पुरूषों मार्गे इति ।

।। एवं श्रुत्वा सुवर्णसिद्धिस्तनमनुज्ञाप्य स्वगृहं प्रतिनिवृत्तः

हिन्दी :– इस प्रकार कहकर वह ब्राह्मण अपनी इच्छानुसार चला गया । इसलिए मैं कहता हूॅ – 'मार्ग में कायर पुरूष भी' इत्यादि । इस प्रकार सुनकर सुवर्णसिद्धि उससे आज्ञा लेकर अपने घर लोट गया ।

2.10.4 सारांश

भारूण्डपक्षि–कथा–

किसी सरोवर में एक उदर पेट तथा दो अलग–अलग सिरों वाला पक्षी रहता था। एक बार उसे समुद्र की लहरों द्वारा लाया हुआ, अमृतमय रस के समान स्वादिष्ट फल मिला। उस फल को खाते हुए जब एक मुख आनन्द का अनुभव कर रहा था । तभी दुसरे मुख ने उस फल का स्वाद चखने की इच्छा प्रकट की किन्तु उसने यह कहते हुए उसे देने से मना कर दिया कि– 'तुम्हारा एवं मेरा पेट तो एक ही है, जो में खा रहा हूॅ वह एक ही पेट में तो जा रहा हैं अतः तुम्हारे अलग से खाने से क्या लाभ? इस बचे फल द्वारा मैं अपनी पत्नी को प्रसन्न करूगां । यह कहते हुए उसने शेष फल अपनी पत्नी को प्रदान कर दिया । उसके स्वाद से आनन्दित पत्नी ने प्रसन्न होकर उस मुख के प्रति आलिंगन, चुम्बन आदि द्वारा अत्यन्त प्रेम प्रदर्शित किया, किन्तु अपने प्रति उपेक्षावृति के कारण दूसरा मुख अत्यधिक दुःखी हुआ। इसके बाद एक दिन दूसरे सिर को विषफल मिला। उसे देखकर वह बोला– हे नीच! स्वार्थी! मुझे आज विषफल प्राप्त हुआ है। अतः तुम्हारे द्वारा उपमान की आग में जलाया गया मैं अब इसे खा रहा हूॅ । दूसरे मुख ने उसे ऐसा करने से बहुत रोका किन्तु बदले की भावना के कारण उसने उसकी एक नहीं सुनी और वह फल खा लिया। परिणामस्वरूप उन दोनों की एक साथ मृत्यु हो गयी।

ब्राहाण–कर्कट–कथा–

किसी स्थान पर ब्रह्मदत नामक ब्राह्मण रहता था। एक बार वह कार्यवश कहीं अकेले ही यात्रा के लिए जाने लगा तो उसकी माता ने अकेले जाने से मना करते हुए बावड़ी के पास से एक केकड़ा लाकर उसे अपने साथ ले जाने के लिए कहा तथा कपूर की पुडिया में बांध कर उसे प्रदान किया।

ब्राह्मण भी माता का कहना मानकर अपने साथी के रूप में केकड़े को लेकर यात्रा के लिए निकल पड़ा। मार्ग में तेज धूप में चलने से हुई थकान से वह एक घनी छाया वाले पेड़ के नीचे सो गया। तभी पेड़ के खोकर से निकलकर एक काला सांप वहॉ आया तथा कर्पूर की सुगन्ध के स्वाभावित रूप से प्रिय होने के कारण उस ब्राह्मण को छोड़कर कर्पूर की पुड़िया को खाने लगा। तब उसमे स्थित केकड़े ने वहीं उसके प्राणों को हर लिया। ब्राह्मण ने नींद खुलने पर मरा हुआ काला सांप और कपूर की पुडिया के ऊपर पड़ा हुआ केकड़ा देखा। उसे देखकर वह सब समझ गया। उसने मन में अपनी माता को धन्यवादपूर्वक स्मरण किया।

2.10.5 निष्कर्ष

भारूण्डपक्षि–कथा–

प्रस्तुत कथा में एकता के अभाव में दो मुखों का विनाश प्रदर्शित है। परस्पर विरोध के कारण भारूण्ड पक्षी के दोनों मुख विनष्ट हो गये। अतः एक साथ रहने पर भी मेल के बिना जीवन खतरे में रहता है। साथ ही साथ इस कथा में यह बतलाया गया है कि किसी स्वादिष्ट वस्तु को प्रस्तुत कथा का एकता का महत्व प्रदर्शित है। इसमें आपस में मेल न रहने के कारण दो मुखों को अकेले नहीं खाना चाहिए, अन्य लोगों के सो जाने पर जागते नहीं रहना चाहिए, विचारणीय वस्तु को अकेले नहीं विचारना चाहिए और अकेले ही विदेश भी नहीं जाना चाहिए ।

ब्राहाण –कर्कटक–कथा–

इस कथा द्वारा यह भाव व्यक्त किया गया है कि एकाकी यात्रा करना हानिप्रद है, क्योंकि केकड़े को साथ ले जाने के कारण ही ब्राह्मण के प्राण बच सके, अन्यथा उसके प्राण पखेरु उड़ जाते। साथ में लिया छोटे से छोटा जीव भी अनेक बार अत्यन्त कल्याणकारी होता है। अतः यात्रा में किसी न किसी को अपना सहायक अवश्य बनाना चाहिए।

2.10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न :–

1. भारूण्ड़पक्षि नामक कथा का सार तथा उससे प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन कीजिए?

____

____

____

____

2. ब्राह्मण–कर्कट–कथा का सार तथा उससे प्राप्त होने वाली शिक्षा का विवरण दीजिए?

____

____

____

____

3. निम्न श्लोक की सप्रसंग व्याख्या कीजिएः

एकः स्वादु न भजुीत, नैकः सुप्तेशु जागृयात् ।

एको न गच्छेदध्वानं, नैकष्चार्थान्प्रचिन्तयेत् ।।

____

____

____

____

4. निम्न गद्यांश का अनुवाद कीजिए –

अथ गच्छन्ग्रीश्मोष्मणा सन्तप्रः कष्चिन्मार्गस्थं वृक्षमासाद्य, तत्रैव प्रसुप्तः । अत्रान्तरे वृक्षकोटरान्निर्गत्य सर्पस्तत्समीपमागतः ।

____

____

____

____

✠✠✠✠✠✠✠

3.11.1 प्रस्तावना

3.11.2 उद्देश्य

3.11.3 पञ्चतन्त्र के लेखक का परिचय एवं नीतिकथाओं में पञ्चतन्त्र का स्थान

3.11.4 सारांश

3.11.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.11.1 प्रस्तावना

पञ्चतन्त्र न केवल भारतवर्ष में ही, अपितु समस्त विश्वसाहित्य में एक कथा–साहित्य के रूप में मान्य है। इसकी रचना से पूर्व नीतिशास्त्र विषयक जितने भी ग्रन्थों की रचना आचार्य विष्णुशर्मा के समय तक की गयी थी, उन सभी का गहन अध्ययन करने के पश्चात् ही उन्होंने इस सुन्दर ग्रन्थ की रचना की । पञ्चतन्त्र की सरल, रोचक एवं उपदेशप्रद कथायें जहाँ उसे नीतिकथाओं में सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ सिद्ध करती हैं, वही इन कथाओं से विष्णुशर्मा का नीतिविषयक वैदुष्य भी दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत पाठ में पञ्चतन्त्र के लेखक विष्णुशर्मा का परिचय एवं 'नीतिकथाओं में पञ्चतन्त्र का स्थान ' नामक दो विषयों पर विस्तार से चर्चा की गयी हैं।

3.11.2 उद्देश्य

विद्यार्थियों को 'पञ्चतन्त्र' के लेखक विष्णुशर्मा के जीवन से परिचित करवाना ।

1) विष्णुशर्मा के नीतिविषयक ज्ञान से अवगत करवाना।

2) नीतिशास्त्र का सामन्य परिचय करवाना।

3) विविध परिस्थितियों के अनुकूल मानवीय व्यवहार से छात्रों को परिचित करवाना ।

4) नीतिकथाओं में 'पञ्चतन्त्र' की उपयोगिता सिद्व करना ।

3.11.3 पञ्चतऩ्त्र के लेखक का परिचय

'पञ्चतऩ्त्र' सस्ंकृत नीतिकथा साहित्य का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसके लेखक, उसके निवास–स्थान, वंश माता–पिता एंव आश्रयदाता आदि के विषय में कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं होता। यह तो र्निविवाद सत्य है कि विश्व के सभी सस्करणों में 'पञ्चतऩ्त्र' के लेखक के रूप में विष्णुशर्मा का नाम अवश्य उपलब्ध होता हैं। यद्यपि कुछ विद्वान् इसमें विश्वास नहीं करते, तथापि अन्य किसी नाम के उपलब्ध न होने के कारण इस सम्बन्ध में सन्देह करना अनावश्यक है। विष्णुशर्मा के परिचय के विषय में पञ्चतऩ्त्र के कथामुख से यह प्रतीत होता है कि वे दक्षिण देश के महिलारोप्य नामक नगर के राजा के राज्य में रहते थे। 'पञ्चतऩ्त्र' में वर्णित भौगोलिक परिस्थितियों एंव पशुओं के आधार पर कुछ विद्वान् उनका जन्मस्थान कश्मीर मानते हैं। इसके अतिरिक्त उनके पारिवारिक जीवन के विषय में कुछ भी वर्णन नहीं मिलता।

'पञ्चतऩ्त्र' के कथामुख से संकेत मिलता है कि विष्णुशर्मा भारतीय नीतिशास्त्र में बड़े प्रवीण एंव प्रखर बुद्धि के थे। उन्हें प्राचीन नीतिविद्ों एवं उनके नीतिशस्त्रों का पूर्ण ज्ञान था। उन्होंने समस्त नीतिज्ञों की नीतियों को अपने जीवन में उतार कर, जो समुचित समझा, उसे अपनी कृति 'पञ्चतऩ्त्र' में प्रस्तुत किया। वे बड़े निस्पृह, निर्भीक एवं त्यागी विद्वान् थे। 80 वर्ष की अवस्था में जब उनका मन एवं सभी इन्द्रियॉ विषयों से विमुख होकर शिथिल हो चुकी थीं, तब भी उन्हें राजा अमरशक्ति (मतान्तर से अमरकीर्ति) के द्वारा दिया जाने वाला लोभ अपनी ओर आकृष्ट नहीं कर सका।

ग्रन्थ – विष्णुशर्मा द्वारा लिखा गया ग्रन्थ 'पञ्चतऩ्त्र' सस्ंकृत नीतिकथा का प्रमुख ग्रन्थ है। इसका रचनाकाल 300ई.पू0 माना गया हैं। विष्णुशर्मा ने 'पञ्चतऩ्त्र' का निर्माण कोमलमति राजकुमारों को आसानी से नैतिक व्यवहार सिखाने के निमित्त

किया है, न कि कलाचातुर्य एंव पाण्डित्य–प्रदर्शन के लिए। महिलारोप्य नगर के राजा अमरशक्ति के तीन मूर्ख पुत्र थे, जो राजनीति एवं नेतृत्व गुण सीखने में असमर्थ थे। राजा ने उन्हें नीतिनिपुण बनाने के लिए बहुत विद्वानों को नियुक्त किया, लेकिन वे सभी असफल रहे। राजा ने घोषणा करवायी की जो विद्वान् राजकुमारों को नीतिनिपुण बना देगा, उसे भरपूर धन राशि दी जाएगी। राजा के मत्रियों ने इस काम के लिए विष्णुशर्मा को नियुक्त करने का परामर्श दिया। राजा ने विष्णुशर्मा को दरबार में बुलाकर घोषणा की कि यदि वे उसके पुत्रों को कुशल राजसी प्रशासक बनाने में सफल होते हैं, तो वह उन्हें सौ गॉव तथा बहुत सा स्वर्ण देंगे । तब विष्णुशर्मा ने हंसकर कहा, हे राजन ! मैं अपनी विद्या को बेचता नहीं, और न ही मुझे किसी उपहार की इच्छा या लालच है

''नाऽहं विद्याविक्रयं शासनशतेनापि करोमि'' ।

''अपने मुझे विशेष सम्मान सहित बुलाया है, इसलिए मैं आपके पुत्रों को छः महीने के भीतर कुशल प्रशासक बनाने की शपथ लेता हूँ । अगर मैं अपना संकल्प पूरा करने में असफल रहा तो मैं अपना नाम बदल लूंगा –''**पुनरेतांस्तव पुत्रान् मासषट्केन यदि नीतिशास्त्रज्ञान् न करोमि,ततः स्वनाम त्यागं करोमि।**''

राजा ने हर्षपूर्वक तीनों राजकुमार विष्णुशर्मा को सौंप दिये । विष्णुशर्मा जानते थे कि वे उन राजपुत्रों को पुराने तरीको से कभी नहीं पढ़ा सकते । उन्होंने इसके लिए सरल तरीका अपनाया तथा रोचक जन्तु कथाओं की रचना कर उनके माध्यम से राजकुमारों को नीति सिखाने लगे। शीघ्र ही राजकुमारों ने इनमें रूचि लेना आरम्भ कर दिया तथा नीति सीखने में सफलता प्राप्त की ।

'पञ्चतन्त्र' जैसा कि इसके नाम से ही स्पष्ट है, इसमें राजनीति के पॉच तन्त्र अर्थात् सिद्वान्तों का कथाओं के माध्यम से पॉच अध्यायों में उल्लेख हुआ है। इन अध यायो' के नाम इस प्रकार है –1. मित्रभेद – इसमें दो मित्रों में झगड़ा कराने की नीति का कथन हुआ है । 2. मित्रसम्प्राप्ति– इसमें मित्र बनाने के उपायों का उल्लेख है । 3.काकोलूकीय–इसमें स्वार्थसिद्वि हेतु शत्रु से भी मित्रता करने एवं बाद में उसे नष्ट करने को कहा गया है । 4. लब्धप्रणाश – इसमें यह बताया गया है कि बुद्विमान अपनी बुद्वि से विजय प्राप्त करता है तथा मूर्ख हाथ आई वस्तु को भी खो देता है ।
5. अपरीक्षितकारक – इसमें यह शिक्षा दी गयी है कि बिना सोचे –विचारे जल्दबाजी में कोई कार्य नहीं करना चाहिये।

इसकी भाषा अत्यन्त सरल एवं बोलचाल की भाषा है पाण्डित्य प्रदर्शन का लेशमात्र भी प्रयोग नहीं हुआ है। प्रत्येक मुख्य कथा में अनेक उपकथाओं का प्रयोग किया गया है। इनको हृदयगंम कर लेने से मनुष्य किसी व्यावहारिक या नैतिक विचारों से वंचित नहीं रहता। इनकी रोचकता मधुरता एवं सरलता सर्वप्रसिद्ध है

''नीतिकथाओं में 'पञ्चतन्त्र का स्थान''

संस्कृत साहित्य ने विश्व साहित्य को एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण देन प्रदान की है और वह देन है, कथा साहित्य या आख्यान साहित्य की । जो मनुष्य किन्हीं कारणों से वेद स्मृति पुराण इत्यादि का पठन –पाठन नहीं कर पाते थे ,उन्हें भी नीति, धर्म इत्यादि का ज्ञान देने के लिए कथा साहित्य का विकास हुआ । कथा साहित्य में इतिहास व पुराण सम्बन्धी ज्ञान नहीं होता । इसकी कथायें पूर्ण रूप से काल्पनिक होती हैं । इन कल्पनाओं में घटनाओं की विविधता, हास्य, विनोद, मौलिकता आदि का ऐसा समन्वय होता है, जिससे पाठक या श्रोता स्वयं ही इनकी तरफ आकर्षित हो जाता है ।

इन कथाओं की रोचकता और मनोरञ्जकता से नर–नारी, बाल–वृद्व शिक्षित अशिक्षित, निर्धन–धनवान, मूर्ख व ज्ञानी सभी आनन्द प्राप्त करते हैं । इसी कारण पाश्चात्य विद्वानों ने भी भारतीय आख्यान साहित्य की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है ।

संस्कृत के कथा साहित्य में प्रथम स्थान नीतिकथाओं का है। नीतिकथाओं का मुख्य उद्देश्य रोचक कहानियों द्वारा त्रिवर्ग धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति करवाना ही है । इनका प्रतिपाद्य विषय सदाचार व राजनीति और व्यवहारिक ज्ञान ही है, मोक्ष या अध्यात्म विद्या नहीं। पशु–पक्षियों की रोचक कहानियों द्वारा सदाचार व राजनीति के गूढ़ से गूढ़ तत्व भी बड़ी सरलता और सहजता से समझा दिये जाते हैं। नीति का उपदेश करवाने वाली पूरी कथा प्रायः गद्य में दी जाती हैं , परन्तु उसकी समाप्ति उससे मिलने वाली शिक्षा या नैतिक उपदेश द्वारा की जाती है, जो उपदेश पद्य में होता हैं ।

'पञ्चतन्त्र ' संस्कृत नीति कथा साहित्य का अत्यन्त प्राचीन और महत्वपूर्ण ग्रन्थ है । इसकी लोकप्रियता इसी बात से सिद्व होती है कि विश्व की 50 से अधिक भाषाओं में इसका अनुवाद हो चुका है । यह रचना पञ्चतन्त्र इसलिए कहलाती है, क्योंकि यह पॉच उपखण्डों में विभाजित है । साहित्यिक दृष्टिकोण से भारतीय साहित्य की इस शाखा में यह सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और मनोरञ्जक रचना है ।

पञ्चतन्त्र का मुख्य उदेश्य सम्भवतः एक राजा के राजकुमारों के लिए नीति और व्यवहार की शिक्षा देने के लिए एक सार पुस्तिका तैयार करना था, क्योंकि इसकी प्रस्तावना दक्षिण भारत के एक नगर महिलारोप्य के राजा अमरशक्ति (मतान्तर से अमरकीर्ति) की कथा से प्रारम्भ होती है। राजा के तीन मुखो पुत्रों के विद्वान् तथा नीतिसम्पन्न बनाने के लिए योग्य गुरू की आवश्यकता थी । विष्णुशर्मा नामक एक ब्राह्मण राजकुमारों को छः महीने में नीतिशास्त्र में पारंगत बनाने का बीड़ा उठाता है। इसके लिए वह पञ्चतन्त्र की रचना कर और उसे युवा राजकुमारों को सुनाकर इस उद्देश्य की सही अर्थों में पूति करता है । इसका रचनाकाल ई.पू. 300 के लगभग माना गया है ।

'पञ्चतन्त्र' के पॉच तन्त्रों में से प्रथम तन्त्र का नाम है – 'मित्रभेद', जिसमें दो मित्रों में परस्पर वैर कराने वाले एक सियार की कथा है ।

द्वितीय तन्त्र 'मित्रसम्प्राप्ति' कहलाता है, जिसमें विभिन्न प्राणियों की एकजुटता की कहानियॉ हैं।

तृतीय 'काकोलूकीय' नामक तन्त्र में 'कोओं और उल्लुओं के युद्व' में यह बात दिखलाई गयी है कि पुराने शत्रुओं के मध्य में सम्पादित की हुई मित्रता से क्या हानियॉ होती हैं ? 'लब्धप्रणाशः' नामक चतुर्थ तन्त्र में बन्दर और मगर की मुख्य कहानी के माध्यम से यह बताया गया है कि किस प्रकार चाटुकारिता से दूसरों को मुर्ख बनाया जा सकता है, जिससे वे अपनी प्राप्त की हुई वस्तु से वंचित किये जा सकें ।

पॉचवे तन्त्र का शीर्षक है –'अपरीक्षितकारक'। इसमें बिना सोचे–विचारे कार्य करने से होने वाली कहानियॉ वर्णित हैं ।

इस महान् संग्रह की विविधता की रूपरेखा प्रस्तुत करना असम्भव है । पुस्तक एक विलक्षण आनन्दमयी मनोवृत्ति से ओतप्रोत है, जो पशु जगत् को सभी प्रकार के मानवीय क्रिया कलापों में परिवर्तित करती है । वे नैतिकता के सूक्ष्म तत्वों के विषय में विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।

अनेक कहानियॉ ऐसे धूर्तों से सम्बद्व हैं, जो बाद में बन्दी हो जाते हैं । ''प्याज चुराने वाले एक चोर को यह दण्ड दिया जाता है कि वह या तो सौ रूपये दे,या सौ कौड़े खाये, या सौ प्याज खाये । जुर्माना देने की अपेक्षा वह प्याज खाना ही पसन्द करता है । एक दर्जन प्याज खाते–खाते उसकी ऑखो' से पानी निकलने लगता है,

और अब वह कोड़े खाने लगता है, प्रायः एक दर्जन कोड़े पड़ते–पड़ते वह यह कामना करने लगता है कि उसका जन्म ही व्यर्थ हुआ और अन्त में जुर्माना देकर छूटता है, जो वह पहले ही कर सकता था।

प्रस्तुत ग्रन्थ में यह बताया गया है कि निर्बल भी अपनी बुद्विपूर्ण युक्तियों से शक्तिशाली को परास्त कर सकता है। एक कौआ, जिसके अण्डों को एक सर्प सदैव खा लिया करता था, राजमहल से एक सोने का हार चुराकर उसे सर्प के बिल में गिरा देता है, जिसके बाद महल के सेवक उस हार को ढूंढते हुए उसे सर्प के बिल से प्राप्त करते हैं, और परिणामस्वरूप सर्प का वध कर देते हैं ।

'एकता ही शक्ति है' यह शिक्षा जाल में फॅसे कबूतरों के एक झुण्ड की कथा के माध्यम से दी गयी है । कबूतरों का नेता यह परामर्श देता है कि व्यर्थ प्रयास करने की अपेक्षा सभी एक साथ जाल के साथ ऊॅचे उड़ जायॅ । सभी कबूतर यही करते हैं और बाद में उनका एक मित्र चूहा जाल काट कर उन्हें मुक्त कर देता है । यदि कोई व्यक्ति निर्धन है तो उसके वास्तविक महत्व को भी संसार स्वीकार नही करता । इसके अतिरिक्त उसमें जो कुछ निहित बुद्विि होती भी है, वह भी कौटुम्बिक चिन्ताओं से भ्रष्ट हो जाती है ।

अत्यधिक व्यंग्यात्मक और उपहासात्मक ढंग से विभिन्न प्रकार के मानव दोषों को खुलकर कहा गया है, अन्य दोषों के साथ ब्राह्मणों के पाखण्ड और लालच, राजदरबारियों के षड्य़न्त्रपरक चरित्र और स्त्रियों के विश्वासघात के दोष प्रमुख हैं।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पञ्चतन्त्र की उत्पत्ति उसे राजनीति तथा लोकनीति का ग्रन्थ प्रामाणित करती है । इसकी भाषा मुहावरेदार एंव सीधी–सादी है । वाक्य– विन्यास में न तो कहीं दुरूहता है और न भावों के समझने में कठिनता इसमें पाण्डित्य–प्रदर्शन का लेशमात्र भी प्रयोग नहीं हुआ है । ग्रन्थकार की नीतमता ग्रन्थ के प्रत्येक पृष्ठ पर झलकतीं है । कथानक का वर्णन गद्य में किया गया है, जबकि उपदेशात्मक सूक्तियॉ पद्य में निहित हैं, और ये पद्य रामायण, महाभारत तथा नीतिग्रन्थों से संगृहीत हैं।

अन्त में आचार्य बलदेव उपाध्याय के शब्दों में, ''सचमुच पञ्चतन्त्र विश्व साहित्य की एक दिव्य विभूति है । कथा के साथ में नीति की महनीय शिक्षा प्रदान करने की सुन्दर भारतीय योजना को स्वीकार कर विश्व साहित्य ने अपने आपको उदात्त तथा लोकप्रिय बनाया है ।''

3.11.4 सारांश

विष्णुशर्मा प्राचीन संस्कृत नीति कथासाहित्य के विशिष्ट विद्वान् हुए हैं । उन्होंने सरल, सुबोध, एवं रोचक शैली में 'पञ्चतन्त्र' नामक ग्रन्थ की रचना कर संस्कृत कथा साहित्य को समृद्ध करने में अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया है । 'पञ्चतन्त्र' के द्वारा अल्पकाल में ही नीतिशास्त्र तथा वास्तविक व्यवहार का सारभूत ज्ञान सम्भव है । इसमें निहित नीतिवाक्यों का अभ्यास कर लेने पर कोई भी व्यक्ति अपने वैयक्तिक, पारिवारिक, आर्थिक एवं सामाजिक जीवन की समस्याओं को भलि–भांति सुलझा सकता है । इसमें स्थल–स्थल पर अनेक महत्वपूर्ण सूक्तियों का भी संग्रह है, जिनका समुचित अवसर पर प्रयोग कर लाभ उठाया जा सकता है ।

3.11.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. 'पञ्चतन्त्र' के लेखक विष्णुशर्मा का परिचय दीजिए?
2. पञ्चतन्त्र की रचना का उद्‌देश्य स्पष्ट कीजिए ।
3. नीतिकथाओं में 'पञ्चतन्त्र' का स्थान निंधारित कीजिए।
4. 'पञ्चतन्त्र' नीतिशास्त्र का सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ हैं, सिद्ध कीजिए।

✠✠✠✠✠✠✠

3.12.1 प्रस्तावना

3.12.2 उद्देश्य

3.12.3 पञ्चमतन्त्र(अपरीक्षितकारक) में वर्णित कथाओं का सार एवं पञ्चम तन्त्र में वर्णित कथाओं से प्राप्त होने वाली शिक्षाओं का विवरण।

3.12.4 सारांश

3.12.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

3.12.1 प्रस्तावना

'अपरीक्षितकारक' नामक पञ्चमतन्त्र विष्णुशर्मा द्वारा रचित 'पञ्चतन्त्र' का अन्तिम भाग है। इसमें ग्रन्थकार ने मुख्यतया विचारपूर्वक अच्छी तरह परीक्षा किये हुए कार्य को करने की नीति पर बल दिया है। बिना भलि–भांति विचार किये एवं बिना अच्छी तरह से देखे, सुने किसी कार्य को करने वाले व्यक्ति को कार्य में सफलता तो मिलती नहीं, साथ ही अनेक प्रकार के कष्टों को भी भोगना पड़ता है। इस तन्त्र में कुल पन्द्रह कथायें है। प्रस्तुत पाठ के अर्न्तगत उन कथाओं का सार एवं उनसे प्राप्त होने वाली शिक्षाओं का विवरण है।

3.12.2 उद्देश्य

1. विद्यार्थियों को विविध परिस्थितियों के अनुकूल मानवीय व्यवहार से परिचित करवाना।

2. विद्यार्थियों को नीतिविषयक ज्ञान से अवगत करवाना।

3. प्रत्येक कार्य को सोच–विचार कर सम्यक् नीति से करने की शिक्षा देना।

4. मनोरञ्जक कथाओं के मध्यम से सस्कृत–साहित्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना।

5. बिना सोचे –विचारे कार्य करने से होने वाली हानियों से अवगत कराना।

3.12.3 पञ्चमतन्त्र (अपरीक्षितकारक) में वर्णित कथाओं का सार एवं पञ्चम तन्त्र में वर्णित कथाओं से प्राप्त होने वाली शिक्षाओं का विवरणः–

(1) क्षपणक –कथा

दक्षिण दिशा में पाटलिपुत्र नामक नगर में मणिभद्र नाम का एक धनी सेठ निवास करता था । अपनी दानशील प्रवृत्ति के कारक वह अपना समस्त धन गवां बैठा और दरिद्र हो गया । दरिद्रता के कारण अपमानित और दुखी होकर उसने अपने प्राणों को त्यागने का निश्चय किया और सो गया। सोते समय पद्मनिधि ने जैन साधु (क्षपणक) के स्वरूप में उसे दर्शन देते हुए कहा –कि मैं कल सुबह इसी रूप में तुम्हारे घर आऊंगा, तब तुम मेरे सिर पर लाठी से प्रहार करना । उससे मैं स्वर्णमय होकर तुम्हारे घर में अक्षय कोश बनकर स्थापित हो जाऊंगा।

प्रातः काल उठकर वह रात में देखे गये स्वप्न की सत्यता के बारे में विचार कर ही रहा था कि उसकी पत्नी ने पैरों में महावर आदि लगवाने के लिए नाई को बुलवा लिया । उसी समय वह क्षपणक भी वहॉ प्रकट हो गया, प्रसन्न होकर मणिभद्र ने उसे देखकर उसके मस्तक पर लाठी से प्रहार किया । लाठी मारते ही वह क्षपणक साधु स्वर्ण का होकर भूमि पर गिर पड़ा । इस समस्त घटनाक्रम को नाई द्वारा देख लिये जाने पर सेठ ने उसे धन आदि देकर इन बातों को गुप्त रखने के लिए कहा ।

इस घटना को देखने के पश्चात् नाई ने घर जाकर विचार किया कि अवश्य ही ये सभी क्षपणक साधु सिर पर प्रहार करने पर स्वर्ण के बन जाते हैं, इसलिए यदि मैं कल प्रातः सभी क्षपणकों को घर पर बुलाकर उनके सिर पर लाठी से प्रहार करूं तो मेरे पास भी बहुत सारा सोना इकट्ठा हो जायेगा। तब वह क्षपणकों के आश्रम में गया और उन्हें अपने घर पर आने का निमन्त्रण दिया । बहुत विनती करने पर ही कुछ क्षपणक उसके घर पर आये । तब वह उनके सिर पर लाठी से प्रहार करने लगा। इससे बड़ा ही रक्तपात और कोलाहल हुआ । उनके शोर को सुनकर नगर

कोतवाल ने उसे पकड़ कर न्यायाधीश के सामने प्रस्तुत किया । न्यायाधीश ने उससे इस कृत्य का कारण पूछा । तब उसने मणिभद्र सेठ के यहॉ घटित घटना का वृत्तान्त कह सुनाया । परिणामतः नाई को फांसी पर चढ़ा देने का आदेश हुआ ।

(2) ब्राह्मणी–नेवले की कथा

किसी नगर में देवशर्मा नामक एक ब्राह्मण रहता था । दैवयोग से जिस दिन उसकी पत्नी द्वारा एक पुत्र को जन्म दिया गया उसी दिन एक नेवली ने भी एक पुत्र (नेवले) को जन्म दिया और उस नेवली की उसी दिन मृत्यु हो गयी । तब ब्राह्मणी ने उस नेवले का भी अपने पुत्र के साथ–साथ बड़े प्यार से पालन–पोषण किया । परन्तु अपने पुत्र से अधिक प्रेम होने के कारण वह नेवले पर शंका करती रहती थी कि कहीं यह नेवला मेरे पुत्र की कोई हानि न कर दे । एक दिन वह ब्राह्मणी अपने पुत्र को शैय्या पर सुलाकर अपने पति से बोली कि जब तक मैं जल भरकर लाती हूॅ तब तक इस नेवले से मेरे पुत्र की रक्षा करना । उसके जाने के बाद ब्राह्मण भी भिक्षा मॉगने के लिए घर को छोड़कर चला गया । उसी समय एक काला सांप बिल से बाहर निकला उस सांप को देखकर नेवले ने उसे अपना जातिगत शत्रु समझकर उसे मार दिया।

तब वह नेवला आनन्दित होकर खून से सने हुए मुख से घर के बाहर जल ले कर लौटती हुई ब्राह्मणी के सामने पहूॅचा । ब्राह्मणी उसके रक्त से सने मुख को देखकर अपने पुत्र की मृत्यु की आशंका से भर गयी । उसने हाथों में जल से भरे हुए कुम्भ को नेवले पर दे मारा जिससे नेवले की मृत्यु हो गयी । घर के अन्दर आकर अपने पुत्र को सुरक्षित सोता हुआ पाकर एवं पास में ही काले सांप के टुकड़े–टुकड़े देखकर उसे बहुत दुखः और पश्चाताप हुआ कि भली –भॉति देखे बिना ही मैंने नेवले को मार डाला । पति के लौट आने पर उसके अति लालची होने के कारण भिक्षा हेतु बाहर जाने उसे बड़ी खरी–खोटी सुनायी ।

(3) लोभाविष्ट चक्रघर कथा

किसी जगह पर चार ब्राह्मण मित्रतापूर्वक रहा करते थे । वे बहुत दरिद्र (निर्धन) थे । दरिद्रता से पीड़ित होकर धनोपार्जन के लिए वे घर से निकल पड़े । घूमते–घूमते वे अवन्तिका (उज्जैन) पहुंच गये । वहॉ उन्होंने क्षिप्रा नदी में स्नान किया । फिर भगवान महाकाल को प्रणाम कर मन्दिर से वे जैसे ही बाहर निकले ,उनकी भेंट भैरवानन्द योगी से हुई । उस सिद्व योगी ने चार सिद्व गुटिकाएं उन्हें दी

तथा कहा कि हिमालय की ओर जाओ, और जिसके हाथ से जहॉ पर गुटिका गिर जाए वहॉ पर भूमि को खोदकर धन को प्राप्त कर लो । इस प्रकार वे गुटिका लेकर चल पड़े तब आगे जाने पर एक स्थान पर एक ब्राह्मण के हाथ से गुटिका गिर गई उसने वहॉ से भूमि खोदकर तॉबा प्राप्त किया और वापस लौट गया । शेष तीनों के आगे बढ़ने पर एक जगह दूसरे ब्राह्मण के हाथ से गुटिका गिरी । उसने वहॉ से भूमि खोदकर चॉदी प्राप्त की । कुछ दूर चलने पर तीसरी सिद्व गुटिका भी एक स्थान पर गिर पड़ी। तीसरे ने भूमि खोदकर स्वर्ण प्राप्त किया और चौथे को भी वहीं से लौट चलने के लिए कहा, परन्तु लालचवश चौथे ब्राह्मण ने विचार किया कि आगे इससे भी उत्तम वस्तु रत्नों की खान प्राप्त होगी । अतः वह अकेला ही आगे बढ़ गया । तीसरा ब्राह्मण वहीं पर रूककर चौथे की वापस लौट आने की प्रतीक्षा करने लगा । चौथा आगे बढ़ गया और भूख प्यास से व्यथित होकर मार्ग में इधर उधर घूमने लगा। एक जगह पर उसने देखा कि एक व्यक्ति के सिर पर चक्र घूम रहा है । उसने उसके पास जाकर पूछा–यह क्या है ? उससे वार्तालाप करते ही वह चक्र उस व्यक्ति के सिर से उतरकर उस चौथे बाह्मण के सिर पर आ गया । इसके बाद उसने बाह्मण को बताया कि आगे जब कभी कोई दूसरा व्यक्ति सिद्व गुटिका लेकर धन की प्राप्ति के लिए यहॉ पर आयेगा और तुमसे वार्तालाप करेगा तभी यह चक्र तुम्हारे सिर से उतर कर उसके सिर पर घूमने लगेगा । इस चक्र के प्रभाव से तुम्हें भूख प्यास तो नहीं लगेगी परन्तु पीड़ा अवश्य होगी, मगर तुम मृत्यु को प्राप्त नहीं होंगे । उधर बहुत देर तक प्रतीक्षा के बाद भी जब वह नहीं आया तो स्वर्णसिद्वि उसे ढूढ़ता हुआ उसके पास पहुँचा और उससे सम्पूर्ण घटनाक्रम जानकर बोला कि ''बहुत मना करने पर भी तूने मेरी बात नहीं मानी । अतः लालच के कारण इस असह्य कष्ट को भोगो ।

(4) सिंहकारक–मूर्ख ब्राह्मण–कथा

किसी जगह पर चार ब्राह्मण मित्र रहते थे । उनमें से तीन शास्त्र–ज्ञान में पारंगत थे परन्तु बुद्विहीन थे । एक शास्त्रज्ञान से रहित था परन्तु बड़ा बुद्विमान था। एक बार उन चारों ने अपनी विद्या के बल पर विदेश जाकर धन कमाने का निश्चय किया । यह सोचकर वे पूर्व देश की ओर निकल पड़े । कुछ दूर जाने पर उनमें से एक ने कहा कि धन तो विद्या से ही प्राप्त होता है, बुद्वि से नहीं, अतः विद्याहीन को साथ में न ले जाकर घर वापस भेज दिया जाए । दूसरे मित्र ने भी इस बात का समर्थन किया ,पर तीसरे मित्र ने कहा कि यह हमारा बचपन का साथी है और सदैव हमारे साथ ही रहा है, अतः इसे भी अपने धन का समान हिस्सा प्रदान करना चाहिये। इस प्रकार वे चारों साथ–साथ ही आगे बढ़ गये । कुछ दूर चलने पर उन्हें एक सिंह

की हड्डियां दिखाई पड़ी। उन्हें देखकर एक विद्यावान् मित्र ने कहा कि आज अपनी विद्या की परीक्षा कर ली जाये तब एक विद्यावान ने उन हड्डियों को एकत्र किया । दूसरे विद्यावान् मित्र ने उन पर चर्म एवं मांस आदि चढ़ाने के लिए अपनी विद्या का प्रयोग किया ।

तीसरे विद्यावान् मित्र ने उस पर जब अपनी विद्या से प्राणों का संचार करना प्रारम्भ किया तो चौथे विद्याहीन किंतु बुद्धिहीन मित्र ने उसे ऐसा करने से मना किया और कहा कि एक सिंह जीवित होने पर हम सबको मार डालेगा। फिर भी जब तीसरे विद्यावान् मित्र ने उसका कहा नहीं माना तो वह विद्याहीन किंतु बुद्धिमान मित्र एक पेड़ पर चढ़ गया । प्राणों के संचार करने पर सिंह ने जीवित होकर शेष तीनों को मार डाला और वह बुद्धिमान ब्राह्मण बाद में वृक्ष से उतर कर अपने घर चला गया।

(5) मूर्ख पण्डित कथा

किसी नगर में चार ब्राह्मण मैत्रीभाव से रहा करते थे । बाल्यावस्था में वे विद्याध्ययन के लिए दूसरे प्रदेश (कान्यकुब्ज) के विद्यालय में गये । वहॉ पर बारह वर्ष तक गहन अध्ययन के पश्चात् वे गुरू की आज्ञा लेकर धनोपार्जन के लिए निकल पड़े । कुछ दूर चलने पर उन्हें दो मार्ग दिखाई दिये तब उन्होंने रूक कर विचार किया कि किस मार्ग पर आगे जाना चाहिए ? उसी समय एक मृतक के अन्तिम संस्कार के लिए बहुत से लोग श्मशान की ओर जा रहे थे उनमें से एक ने पुस्तक खोलकर देखा । उसमें लिखा था ''**महाजनो येनगतः स पन्थाः**'' अर्थात् जिधर अधिक लोग जा रहे हों उसी मार्ग का अनुसरण करना चाहिए । इस प्रकार वे सभी उसी मार्ग पर चल पड़े कुछ दूर चलने पर उन्हें श्मशान पर गधा दिखाई दिया । उसे देखकर दूसरे ने पुस्तक खोलकर देखी तो उसमें लिखा था''श्मशान आदि में जो साथ रहता है वही बन्धु है'' और उस गधे को मित्रों ने अपना बन्धु बना लिया। तभी उन्हें एक ऊंट दिखाई दिया। उसे देखकर तीसरे ने उसे शास्त्रानुसार धर्म बताया और ''चौथे ने कहा कि अपने भाई को धर्म से मिलना चाहिए। इष्टं धर्मेण योजयेत्' नियम के अनुसार उन्होंने उस ऊंट के साथ गधे को बांध दिया । गधे के मालिक धोबी के आने पर वे वहॉ से भागकर एक नदी के किनारे पर पहुॅचे। उस नदी में बहकर आते हुए पत्ते को देखकर उनमें से एक ने कहा कि यह पत्ता हम सभी को पार उतार देगा, यह कहकर वह पत्ते के ऊपर कूद पड़ा। जब वह डूबने लगा तो एक ने ''सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धत्यजति पण्डितः' अर्थात् पूर्ण विनाश की स्थिति में आधा त्यागने वाला पण्डित होता है' इस नियम से

उसका सिर काट कर रख लिया । आगे चलकर उन्हें एक गांव मिला। गांव वालों ने उन्हें विद्वान् समझकर अपने घरों में अलग–अलग भोजन के लिए आमन्त्रित किया तथा एक को खाने के लिए घी खण्ड से युक्त सेंवई प्रदान की । उसे देखकर उसने 'दीर्घसूत्री नष्ट हो जाता है '' यह कह कर भोजन छोंड़ दिया । दूसरे पण्डित को बड़ी–बड़ी फूली हुई रोटियॉ खाने दी गई उन्हें देखकर –''अत्यन्त फैली हुई वस्तु खाने से आयु क्षीण होती है'' यह कहकर भेजन छोंड़ दिया । तीसरे को भोजन में बाटियां दी गयीं और उसने यह कहकर भेजन का त्याग कर दिया कि '' छिद्‌ों में बहुत से अनर्थ होते हैं ।'' इस प्रकार विद्यावान होते हुए भी व्यवहारिक ज्ञान के अभाव में उपहास का पात्र बनते रहे ।

(6) मत्स्य–मण्डूक कथा

एक तालाब में शतबुद्विं तथा सहस्रबुद्वि नामक दो मछली तथा एकबुद्वि नामक एक मेंढ़क स्नेहपूर्वक रहा करते थे । सूर्यास्त के समय एक दिन जब वे गोष्ठी का आनन्द ले रहे थे , तब कुछ मछुआरे उस जलाशय के तट पर आये और आपस में कहने लगे ' इस जलाशय में बहुत सारी मछलियां है, अतः कल सुबह इस जलाशय की मछलियों को जाल बिछाकर पकड़ेगे ।' उनकी बातों को सुनकर एकबुद्वि मेंढक ने अपने दोनों मित्रों – शतबुद्वि और सहस्रबुद्वि से कहा– मित्रों, उचित यही होगा कि हमें विपत्ति आने से पहले ही इस जलाशय को छोड़कर कहीं ओर चले जाना चाहिए। इस पर शतबुद्वि एवं सहस्रबुद्वि ने कहा कि हम इस पूर्वजों के जलाशय को नहीं छोड़ेगें । हम अपनी तीक्ष्णबुद्वि एवं जलकीड़ा की कलाओं से इस विपत्ति से बच जायेंगे । तब एकबुद्वि मेंढक ने उनकी बात न मानकर अपने परिवार सहित उसी रात उस जलाशय को त्याग दिया ।

दूसरे दिन प्रातः मछुआरों ने अनेक मछलियों सहित शतबुद्वि एवं सहस्रबुद्वि को भी पकड़ लिया और भारी होने के कारण उन्हें अपने कन्धों व हाथों में लेकर चल दिये । मेंढक ने अपने मित्रों को मछुआरों के कन्धों पर लटकते हुए देखा और अपनी पत्नी से कहा यह शतबुद्वि (सिर) पर है और वह सहस्रबुद्धि कन्धे पर लटक रहा है और मैं एकबुद्वि जल में विहार कर रहा हूँ ।

(7) रासभ–श्रृगाल कथा

किसी नगर में एक धोबी के पास उद्वत नामक एक गधा था । वह गधा दिनभर धोबी के लिए भार ढोता था तथा रात में इच्छानुसार खेतों में चरा करता था ।

चरते समय उसकी मित्रता एक सियार से हो गई । एक बार दोनों बाड़ तोड़कर एक ककड़ी के खेत में घुस गये । एक दिन ककड़ी खाने के पश्चात् मनोहर चांदनी रात में गधे को गीत गाने की इच्छा उत्पन्न हुई । इस पर सियार ने अनेक उदाहरण देते हुए उसे गीत गाने के लिए मना किया और कहा कि तुम्हारी आवाज बेसुरी है तथा गीत गाने से खेत के रक्षक किसान जाग जायेंगे और हमें पकड़कर दण्डित करेंगे। परन्तु गधा नहीं माना तथा संगीत के विषय मे अपना विस्तृत ज्ञान प्रकट करने लगा । इस पर सियार ने कहा कि मैं खेत से बाहर जाकर रक्षकों को देखता हूँ तब तुम गीत गाना । इस प्रकार वह सियार खेत से बाहर चला गया । उधर गधा गीत गाने लगा । उसकी आवाज सुनकर रक्षक किसान जाग गये और डण्डे से पीटकर उसके गले में पत्थर का कोल्हू बांध दिया ।उसे देखकर गीदड़ ने दूर से मुस्कराते हुए कहा कि तुमने मेरा कहा नही माना, इसलिए पुरस्कार स्वरूप तुम्हारे गले में मणि बंधी हुई है ।

(8) मन्थरक कौलिक कथा

किसी नगर में मन्थरक नामक एक जुलाहा रहता था । एक दिन वह वस्त्र बुनने के लिए लकड़ी के औजारों के लिये लकड़ी काटने किसी जंगल में गया । वहाँ वह शीशम के वृक्ष को काटने के लिए कुल्हाड़ी चलाने लगा । उस वृक्ष पर एक यक्ष निवास करता था । उसने वृक्ष काटने के लिए मन्थरक को मना किया तथा इसके बदले उससे कोई भी इच्छित वस्तु मांगने के लिए कहा । जुलाहे ने कहा – यदि ऐसी बात है तो मैं घर जाकर अपनी पत्नी तथा मित्र से विचार– विमर्श करके आता हूँ ,तभी तुम मुझे इच्छित वस्तु प्रदान करना । घर जाते समय मार्ग में अपने मित्र नाई के मिलने पर उसने उसे सभी घटना कह सुनायी। तब मित्र नाई ने उससे राज्य मांगने के लिए कहा जिससे वे सभी प्रकार के सुखों का उपभोग कर सकें । मित्र नाई ने उसे पत्नी से सलाह करने के लिए यह कह कर रोका कि स्त्रियों में बुद्धि कम होती है । परन्तु जुलाहे ने उसकी बात नहीं मानी तथा अपनी पत्नी से इस बारे में पूछा तब पत्नी ने कहा कि नाई की बात मानना उचित नहीं है क्योंकि राज्य को चलाना बड़ा कठिन कार्य है । इसलिए तुम अपने लिए दो हाथ व दो मुख मांग लो जिससे हम अपने वस्त्रों का उत्पादन दोगुना कर सकेंगे । जुलाहे ने पत्नी की बातों के अनुसार यक्ष से स्वयं को चार हाथ व दो मुख वाला बनाने की प्रार्थना की । यक्ष ने उसे चार हाथ व दो मुख वाला बना दिया । तत्पश्चात् जैसे ही वह अपने गॉव लौटा तो गॉव के लोगों ने उसे भूत समझकर पत्थरों से मार दिया ।

(9) सोमशर्मपितृ– कथा

किसी नगर में एक कंजूस ब्राह्मण रहता था। वह भिक्षा माँग कर जीवन निर्वाह करता था। अपने खाने से बचे हुए सतू से उसने एक घड़ा भर लिया और उसे खूँटी पर लटकाकर स्वयं नीचे चारपाई पर लेट कर सोचने लगा – यदि अकाल पड़ जाये तो इस घड़े को सौ रूपये में बचे कर दो बकरियाँ खरीदूगां। कुछ दिनों के बाद प्रसव के कारण उनसे बकरियों का एक समूह हो जाएगा। उन बकरियों को बेच कर एक गाय खरीदूंगा, उससे अनेक बच्चे होगें, उन्हें बेचकर भैसे तथा भैसों से घोड़ियाँ खरीदूंगा । घोड़ियों के व्याने से मेरे पास बहुत सारे घोड़े हो जायगें, उन्हें बेच कर मेरे पास बहुत सा धन हो जाएगा। जिससे मैं एक सुन्दर घर का निर्माण कराउँगा । तब कोई ब्राह्मण अपनी सुन्दर कन्या मुझे प्रदान करेगा और उससे उत्पन्न पुत्र का नाम मैं सोमशर्मा रखूँगा।

जब सोमशर्मा घुटनों के बल घोड़ों के खुरों के पास से चलता हुआ मेरे पास घुड़साल में आएगा तो कोधित होकर मैं पत्नी से बालक को पकड़ने के लिए कहूगां और कार्यों में व्यस्त होने के कारण वह मेरे वचनों को नहीं सुनेगी। तब मैं उठाकर अपने पॉव से इस प्रकार मारूगां। इसी ध्यान में उसने जैसे ही पाद प्रहार किया वैसे ही सत्तू से भरा हुआ घड़ा फूट गया और उसके पर सत्तू गिरने से वह पीला हो गया।

(10) चन्द्रभूपति–कथा

किसी नगर में चन्द्र नामक राजा रहता था। उसने राजकुमारों के खेलने के लिए कुछ बन्दर तथा भेड़ों को पाला हुआ था । भेढ़ों में एक भेड़ खाने का अत्यधिाक लालची था । वह छिपकर चोरी से रसोई में जाकर जो कुछ भी मिलता उसे खा जाता था। रसोईये उससे अत्यन्त परेशान थे । अतः वे जो कुछ भी हाथ में आता उसे ही भेड़ पर दे मारते थें। यह सब देखकर बन्दरों के नेता ने इस घटना को सभी बन्दरों के लिए अनिष्ट का कारण मानते हुए राजमहल छोड़ने का निश्चय किया ।

साथ ही सभी युवा बन्दरों से राजमहल को शीघ्र ही छोड़ने के लिए कहा, किन्तु उन्होंने लालच के वशीभूत होकर उस वृद्व बन्दर की बात की हँसी उड़ाते हुए, वहॉ से अन्यत्र जाने के लिए मना कर दिया उनके उपहास से दुःखी वृद्व बन्दर जंगल में जाकर रहने लगा।

तत्पश्चात् एक बार वही भेड़ खाने के लालच में रसोई में घुसा । उसे देखकर

एक रसोइये ने क्रोध से उसकी पीठ पर जलती लकड़ी का प्रहार किया । जिससे उसकी पीठ के बालों में आग लग गयी । जलने की पीड़ा से व्याकुल वहाँ दौड़कर घुड़साल में घुस गया । जिससे वहाँ रखी घास में आग लग गयी और बहुत से घोड़ों की चिकित्सा करने वाले लोगों ने घोड़ों की चिकित्सा के लिए बन्दरों की चर्बी की आवश्यकाता बतायी इसके लिए महल के सभी बन्दरों को मार डाला गया । उधर जैसे ही बन्दरों के नायक को जंगल में अपने परिवार के विनाश का समाचार मिला तो वह अत्यन्त दुखी हुआ तथा उसने राजा से इसका बदला लेने का निर्णय किया। जंगल में घूमते हुए उसने एक तालाब देखा जहाँ पशुओं एवं मनुष्यों के पैरों के चिन्ह जाते हुए तो विद्यमान थे, किन्तु वापस लौटने के निशान नहीं । अतः उसने कमल की नाल द्वारा अत्यन्त सावधानी से दूर बैठकर ही तालाब का जल पिया । वस्तुतः उस तालाब में एक राक्षस रहता था, जो इस तालाब में प्रवेश करने पर सभी प्राणियों का खा जाता था । यह देखकर बन्दर ने राक्षस के माध्यम से राजा चन्द्रभूपति से वदला लेने की योजना वनाई । उसने राक्षस से पूछा कि तुम एक साथ कितने लोगों को खा सकते हो । राक्षस ने कहा –''मैं इस तालाब में धूमने वाले सौ हजार हाथियों को भी एक साथ खाने का सामर्थ्य रखता हूँ, किन्तु इससे बाहर में गीदड़ का भी कुछ नहीं बिगाड़ सकता।

इस पर उसने राक्षस के गले की बहुमूल्य रत्नमाला लेकर उसे राजा के सभी परिजनों को भोजनार्थ तालाब तक लाने का आश्वासन दिया। बन्दरों के वृद्धनायक ने राक्षस की रत्नमाला ले जाकर राजा को दिखायी तथा उसे तालाब में जाकर स्नान करके अन्य भी बहुत सी रत्नमालाओं के मिलने का लालच दिया। लालच के वशीभूत हुआ राजा अपने परिवार के सभी सदस्यों एवं सेवकों के साथ तालाब पर आया तथा उन सभी के तालाब में घुसने पर राक्षस ने उन्हें खा लिया। केवल राजा को बन्दर ने नीतिपूर्वक इस तालाब में नहीं घुसने दिया, जिससे वह उसके परिवार जनों के विनाश के दुख से दुःखी हो सके।

इस प्रकार नीतिनिपुण बन्दर ने राक्षस को अपना मित्र भी बना लिया, अपने शत्रु राजा से बदला भी ले लिया तथा बहुमूल्य रत्नमाला भी प्राप्त कर ली। साथ ही राजा की सुरक्षा करते हुए अपनी स्वामी–भक्ति भी प्रकट कर दी। राजा को अपने परिजनों के विरह दुःख अनुभव करने के लिए जीवित भी छोड़ दिया।

(11) विकाल वानर कथा–

किसी नगर में भद्रसेन नामक राजा रहता था। उसकी एक रत्नवती नाम की

सुन्दर एवं उत्तमलक्षणों से युक्त कन्या थी। विकाल नामक एक राक्षस , उसका हरण करना चाहता था। एक बार अर्द्धरात्रि में जब वह राक्षस कोने में छिपकर खड़ा हुआ था। तभी उस राजकुमारी ने अपनी सखी से कहा कि–'एक विकाल नाम का राक्षस मुझे प्रतिदिन निश्चित समय पर परेशान करता हैं। उसकी बात सुनकर राक्षस ने सोचा कि मेरे अतिरिक्त कोई अन्य विकाल राक्षस भी इसे हरण करना चाहता है। उसे देखने की उत्सुकता के कारण वह घोड़ा बनकर राजा के घोड़ों में जाकर छिप गया।

तभी घोड़ों को चुराने वाला एक चोर श्रेष्ठ घोड़ा मानकर उसे लेकर चल दिया और उस पर चढ़कर जोरदार चाबुक लगाया। यह सब देखकर अयवरूपधारी राक्षस ने सोचा कि यही वस्तुतः विकाल नामक वह राक्षस है जो राजकुमारी का हरन करना चाहता है। और मुझे पहचानने के कारण ही मुझे इस प्रकार कठोरतापूर्वक मार रहा है। इसलिए वह तीवग्रति से दौड़ा तथा बार–बार लगाम खींचने पर भी नहीं रूका।

उधर चोर ने लगाम खींचने पर भी उसके न रूकने पर विचार किया कि अवश्य ही यह कोई अश्व रूपधारी राक्षस हैं। अतः वह अपने प्राणों की रक्षा का उपाय सोचने लगा। तभी मार्ग में एक बरगद का पेड़ आया, चोर ने उसकी शाखाओं से लटकर अपनी जान बचाई।

तभी उस वटवृक्ष पर बैठे हुए राक्षस के मित्र बन्दर ने कहा–हे राक्षस! तुम इससे क्यों डर रहे हो? यह तो तुम्हारा भोजन मनुष्य है। उसकी बात सुनकर राक्षस कुछ करता, इससे पहले ही क्रोधित होकर चोर ने बन्दर की लटकती हुई पूछॅ को दातों से चबा डाला। बानर को पीड़ा के कारण अनेक प्रकार से मुॅह बनाते देखकर राक्षस अपने प्राणों की रक्षा करने की दृष्टि से वहॉ से भाग खड़ा हुआ।

(12) अन्धक–कुब्जक–त्रिस्तनी कथा

उतर दिशा में स्थित मधुपुर नामक नगर में मधुसेन नामक राजा था। उसके यहॉ तीन स्तनों वाली एक कन्या ने जन्म लिया। राजा ने उस कन्या को वन में छोड़ने का आदेश दिया, किन्तु मन्त्रियों ने इस विषय में ब्राहाण पण्डितों से परामर्श लेने का सुझाव दिया। ब्राहाणों से पूछे जाने पर उन्होंने राजा को इस देखने से मना करते हुए युवती होने पर इसका विवाह किसी पुरूष के साथ करके दोनों को इसे देशत्याग कराने का परामर्श दिया।

तदनुसार ही कन्या को युवती होने तक राजा की दृष्टि से छिपाकर रखा गया।

बाद में एक लाख स्वर्ण मुद्रा प्रदान करके एक अन्धे व्यक्ति के साथ उसका विवाह करके उसे देश से बाहर छुड़वा दिया। उसी दौरान अन्धे व्यक्ति की लाठी पकड़कर आगे–आगे चलने वाले कुबड़े तथा त्रिस्तनी युवती में परस्पर प्रेम हो गया। उन्होंने अन्धे को मार डालने की योजना बनायी। तदनुसार उन्होंने मरा हुआ काला सांप लाकर अन्धे को मछली का मांस बताकर पकाने को दिया। पके हुए सांप की भाप से अन्धे की ऑखों का मोतियाबिन्द गल कर गिर गया जिससे उसकी आखें ठीक हो गई।

ऑखें ठीक होने पर जब उसे उन दोनों के प्रेम–सम्बन्धों का पता चला तो उसने क्रोध में कुबड़े को पकड़कर जोरदार ढंग से घुमाया और त्रिस्तनी के पर दे मारा । यद्यपि उसने यह उन दोनों को ही मारने के लिए किया था, किन्तु भाग्य की अनुकूलता के कारण जोरदार ढ़ग से घुमाने से कुबड़े का कूबड़ ठीक हो गया और कुबड़े के छाती से टकराने से त्रिस्तनी का तीसरा स्तन भी वस्क्षस्थल में घुसकर ठीक हो गया। इस प्रकार भाग्य की अनुकूलता के कारण तीनों का परस्पर अनिष्ट की दृष्टि से किया गया कार्य भी उनके लिए जीवनदायी सिद्ध हुआ।

(13) राक्षस–गृहीत ब्राह्मण –कथा

किसी वन में चण्डकर्मा नाम का राक्षस एक ब्राह्मण को पकड़कर सदैव उसके कन्धों पर बैठकर सवारी करता था। उस ब्राह्मण की प्रश्न पूछने की आदत थी। अतः उसने राक्षस के आगे लटकते हुए कोमल पैरों को देखकर उससे उनकी कोमलता का कारण पूछा। राक्षस ने कहा–मेरा यह नियम है कि मैं गीले पैर पृथ्वी पर नहीं रखता हूँ। इस नियम को सुनकर ब्राह्मण ने तालाब में स्नान करते हुए राक्षस को वहीं छोड़कर उससे मुक्ति प्राप्त की। राक्षस गीले पैरों से पृथ्वी पर न चल पाने के कारण ब्राह्मण का कुछ नहीं बिगाड़ सका। इस प्रकार अपनी प्रश्न की आदत के कारण राक्षस की कामजोरी जानकर ब्राह्मण ने राक्षस से मुक्ति पाई।

(14) भारूण्डपक्षि–कथा

किसी सरोवर में एक पेट, दो मुख तथा दो अलग–अलग गर्दन वाला पक्षी रहता था। एक बार उसे समुद्र की लहरों द्वारा लाया हुआ, अमृतमय रस के समान स्वादिष्ट फल मिला। उस फल को खाते हुए जब एक मुख आनन्द का अनुभव कर रहा था । तभी दुसरे मुख ने उस फल का स्वाद चखने की इच्छा प्रकट की किन्तु उसने यह कहते हुए उसे देने से मना कर दिया कि– 'तुम्हारा एवं मेरा पेट तो एक ही है, जो में खा रहा हूँ वह एक ही पेट में तो जा रहा हैं अतः तुम्हारे अलग से खाने से

क्या लाभ? इस बचे फल द्वारा में अपनी पत्नी को प्रसन करूगां । यह कहते हुए उसने शेष फल अपनी पत्नी को प्रदान कर दिया । उसके स्वाद से आनन्दित पत्नी ने प्रसन्न होकर उस मुख के प्रति आलिंगन, चुम्बन आदि द्वारा अत्यन्त प्रेम प्रदर्शित किया, किन्तु अपने प्रति उपेक्षा के कारण दूसरा मुख अत्यधिक दुःखी हुआ। इसके बाद एक दिन दूसरे सिर को विष फल मिला। उसे देखकर वह बोला– हे नीच! स्वार्थी! मुझे आज विष फल प्राप्त हुआ है। अतः तुम्हारे द्वारा अपमान की आग में जलाया गया मैं अब इसे खा रहा हूँ । दूसरे मुख ने उसे ऐसा करने से बहुत रोका किन्तु बदले की भावना के कारण उसने उसकी एक नहीं सुनी और वह फल खा लिया। परिणामस्वरूप उन दोनों की एक साथ मृत्यु हो गयी।

(15) ब्राह्मण –कर्कट–कथा

किसी स्थान पर ब्रह्मदत नामक ब्राह्मण रहता था। एक बार वह कार्यवश कहीं अकेले ही यात्रा के लिए जाने लगा तो उसकी माता ने अकेले जाने से मना करते हुए बावड़ी के पास से एक केकड़ा लाकर उसे अपने साथ ले जाने के लिए कहा तथा कर्पूर की पुडिया में बांध कर उसे प्रदान किया।

ब्राह्मण भी माता का कहना मानकर अपने साथी के रूप में केकड़े को लेकर यात्रा के लिए निकल पड़ा। मार्ग में तेज धूप में चलने से हुई थकान से वह एक घनी छाया वाले पेड़ के नीचे सो गया। तभी पेड़ के खोकर से निकलकर एक काला सांप वहॉ आया तथा कर्पूर की सुगन्ध के स्वाभावित रूप से प्रिय होने के कारण उस ब्राह्मण को छोड़कर कर्पूर की पुड़िया को खाने लगा। तब उसमे स्थित केकड़े ने वहीं उसके प्राणों को हर लिया। ब्राह्मण ने नींद खुलने पर मरा हुआ काला सांप और कपूर की पुडिया के उपर पड़ा हुआ केकड़ा देखा। उसे देखकर वह सब समझ गया। उसने मन ही मन में अपनी माता को धन्यवादपूर्वक स्मरण किया।

पञ्चमतन्त्र में वर्णित कथाओं से प्राप्त होने वाली शिक्षाओं का विवरणः–

(1.) क्षपणक–कथा

प्रस्तुत कथा से यह शिक्षा मिलती है कि अच्छी प्रकार बिना देखे, बिना जाँचे परखे, जिसका भलि–भांति ज्ञान और अनुभव न हो तो उस कार्य को नहीं करना चाहिये। प्रस्तुत कथा में भलि–भांति परीक्षा किये बिना अनुकरण करने वाले एक नाई की कथा है, जिसको मणिभद्र नामक सेठ का अनुकरण कर जैन साधुओं के वध के दोष पर न्यायाधीशों द्वारा मृत्यु दण्ड दिया गया। अतः बिना परीक्षित नाई के समान अनुचित कार्य करना हितकर नहीं होता।

(2.) ब्राह्मणी–नकुल कथा

प्रस्तुत कथा में यह बताया गया है कि पूरी जानकारी के अभाव में तथा लालच के वशीभूत होकर कोई भी कार्य करना हानिप्रद होता है, तथा बाद में पश्चाताप के अतिरिक्त कुछ नहीं मिलता। इसमें बिना सोचे–समझे भ्रम में नेवले की हत्या से ब्राह्मण–पत्नी के पश्चाताप का चित्रण है, जिसने सॉप से अपने पुत्र की रक्षा करने पर भी भ्रमवश जल से भरे घड़े को नेवले के ऊपर पटक कर मार डाला था। अतः सम्पूर्ण ज्ञान के बिना कोई कार्य नहीं करना चाहिए।

(3.) लोभाविष्ट–चकधर–कथा

प्रस्तुत कथा में अत्यन्त लोभ के कारण होने वाले दुष्परिणामों का वर्णन है। व्यक्ति को अपने जीवन में कभी भी अत्यधिक लोभ नहीं करना चाहिये, क्योंकि लालच व्यक्ति को अनेक परेशानियों में डालने वाला होता है। साथ ही सांसारिकता की दृष्टि से व्यक्ति को लोभ का पूरी तरह परित्याग भी नहीं करना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से व्यक्ति अपने जीवन में निष्क्रिय हो जायेगा और वह कुछ भी प्राप्त करने का प्रयास नहीं करेगा। प्रस्तुत कथा में चार दरिद्र ब्राह्मणों का वर्णन है, जो भैरवानन्द नामक योगी से सिद्ध गुटिकाएं प्राप्त कर हिमालय की ओर प्रस्थान करते हैं। मार्ग में एक को तॉबे की खान मिली, दूसरे को चॉदी तथा तीसरे को सोने की खान मिली। वे तीनों उन्हें लेकर लौट गये, किन्तु अति लोभ के कारण चौथे को चक्रधर बनना पड़ा। अतः अत्यधिक लोभ करना ठीक नहीं होता।

(4.) सिहंकारक–मूर्ख ब्राह्मण–कथा

प्रस्तुत कथा यह बताती है कि समयानुसार विचार करने वाली बुद्धि विद्या की अपेक्षा श्रेष्ठ होती है, क्योंकि विद्वान् लोग भी बुद्धि के अभाव में दुःख पाकर विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। प्रस्तुत कथा में तीन शास्त्रज्ञानी, परन्तु लोकव्यवहार से शून्य, एवं एक अशास्त्रज्ञ किन्तु लोकव्यवहार में चतुर ब्राह्मण धनोपार्जन के निमित्त विदेश जाते हैं । मार्ग में किसी मृत सिंह की हड्डियों को इक्कठा कर विद्या के प्रभाव से उसको जीवित कर देने पर उसके द्वारा तीनों शास्त्रज्ञ मारे जाते हैं तथा चौथा लोकव्यवहार में कुशल ब्राह्मण बच जाता है । अतः शास्त्र ज्ञान के साथ–साथ लोकव्यवहार का ज्ञान भी अवश्य होना चाहिये।

(5.) मूर्ख पण्डित–कथा

प्रस्तुत कथा में यह बताया गया है कि केवल शास्त्र ज्ञान वाले किन्तु लोक

व्यवहार से वचित एवं ज्ञान शून्य व्यक्ति किस प्रकार दुःखी होते हैं। वस्तुत लोक व्यवहार से शून्य व्यक्ति केवल शास्त्रज्ञान के आधार पर सफल नहीं हो पाता है, अतः शास्त्रज्ञान के साथ–साथ लोक व्यवहार का ज्ञान भी आवश्यक है।

कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को अपने जीवन में शास्त्रों का अध्ययन करके केवल अक्षर ज्ञान या किताबी ज्ञान ही प्राप्त नहीं करना चाहिये, अपितु उसे लोकव्यवहार विषयक ज्ञान से भी परिचित होना चाहिये। अन्यथा मूर्ख पण्डितों के समान व्यक्ति अर्थ का अनर्थ कर समाज में हंसी का पात्र बनता है।

(6.) मत्स्य–मण्डूक–कथा

इस कथा से हमें यह शिक्षा मिलती है कि यदि भाग्य अनुकूल हो तो कम बुद्वि वाला व्यक्ति भी जीवन में सफल हो सकता है, इसके विपरीत भाग्य की प्रतिकूलता से बड़े–बड़े बुद्विमान् एवं कलाकार भी असफल हो जाते हें। इसमें बताया गया हैं। कि किस प्रकार भाग्य की प्रतिकूलता से शतबुद्वि और सहस्रबुद्वि मत्स्य जाल में फॅसकर मारे गये तथा भाग्य के अनुकूल होने पर बुद्धिवाला मेंढक बच गया। इसके साथ–2 इसमें विद्या की अपेक्षा बुद्धि को प्रधान माना गया है।

(7.) रासभ–शृगाल–कथा

प्रस्तुत कथा में यह बताया गया है कि जहॉ स्वयं की बुद्धि कार्य न करे वहॉ दूसरों की बात मान लेनी चाहिये। प्रस्तुत कथा में एक गधा अपने मित्र सियार की बात न मानकर आधी रात को ककड़ी के खेत में गाना गाता है, परिणामतः रखवालों दारा पकड़कर उसे पीटा जाता है। और उसके गले में ओखल का बन्धन डाल दिया जाता है। अगर उसने अपने मित्र की बात मानी होती, तो उसे इस संकट में नहीं पड़ना पड़ता।

(8.) मन्यरकौलिक–कथा

प्रस्तुत कथा भी पूर्व कथा की तरह यही शिक्षा देती है कि यदि व्यक्ति के पास स्वंय की बुद्धि अर्थात् विवक न हो, साथ ही वह अपने मित्र के परामर्श के अनुसार भी कार्य न करता हो, तो ऐसी स्थिति में उसका विनाश सुनिश्चित है। इस कथा में यह बताया गया है कि किस प्रकार मन्थरकौलिक नामक जुलाहे ने अपने मित्र नाई की बात न मानकर, अपनी पत्नी के कहे अनुसार यक्ष से दो सिर तथा चार भुजाओं वाला रूप मांगा, परिणामतः गांव वालों ने उसे राक्षस समझकर मार डाला। अगर उसने अपने मित्र की बात मानी होती तो उसकी यह दुर्दशा नहीं होती।

(9.) सोमशर्मा पितृ–कथा

प्रस्तुत कथा से हमें यह शिक्षा मिलती है, मनुष्य को व्यर्थ भविष्य की कल्पना में व्यस्त नहीं रहना चाहिये। इस संसार में जो व्यक्ति कभी सम्भव न होने वाली भविष्यकालीन बातों की परिकल्पना करके सोचता रहता है। वह वस्तुतः मूर्ख होता है तथा उसको सोमशर्मा के पिता के समान सतू के ऊपर गिरने के कारण पाण्डु होकर सोना पड़ता है। कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति को कभी भी इस प्रकार की बातों के विषय में विचार नहीं करना चाहिये, जिनका पूरा होना कभी सम्भव ही नहीं हैं। क्योंकि इससे जहॉ शक्ति का ह्रास होता है, वहीं व्यक्ति उपहास का पात्र बनता है।

(10.) चन्द्र भूपति कथा

प्रस्तुत कथा से हमें यह शिक्षा मिलती है कि व्यक्ति को कोई भी कार्य करने से पूर्व भविष्य में उससे होने वाले परिणाम के विषय में अवश्य सोच लेना चाहिये। कोई भी कार्य जल्दबाजी में लोभ या लालच के वशीभूत होकर नहीं करना चाहिये। क्योंकि यदि व्यक्ति ऐसा नहीं करता है, तो उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। यहॉ तक कि चन्द्र नामक राजा के समान वञ्चना का शिकार भी होना पड़ता है। अतः बिना परिणाम सोचे अति लोभ से किसी अविश्वासी का सहसा विश्वास कर कोई कार्य नहीं करना चाहिये।

(11.) विकाल–वानर कथा

प्रस्तुत कथा इस तथ्य को व्यक्त करती है कि दुःखी व्यक्ति के मित्र भी उसको छोड़कर उससे दूर भाग जाते हैं। वस्तुतः मित्र को उसी समय तक अपने मित्र का साथ देना चाहिये, जब तक यह उसकी शक्ति से सम्भव हो, किन्तु यदि मित्र को बचाने के प्रयास में अपने प्राणों का संकट हो तो व्यक्ति को शीघ्र उस स्थान को छोड़ कर दूर चले जाना चाहिये, तभी उसके प्राणों का बचना सम्भव होता है। प्रस्तुत कथा में यह बताया गया है कि किस प्रकार विकाल नामक राक्षस ने शक्तिसम्पन्न होते हुए भी अपने मित्र बन्दर के मुख की विकार युक्त चेष्टाओं द्वारा यह अनुमान लगाकर उसकी सहायता करने से मना कर दिया कि निश्चय ही इसे मुझसे भी अधिक शक्तिसम्पन्न राक्षस ने पकड़ लिया है, अतः वहॉ से भागने में ही वह अपना हित समझता है।

(12.) अन्धक–कुब्जक–त्रिस्तनी–कथा

प्रस्तुत कथा से हमें यह शिक्षा मिलती है कि भाग्य की अनुकूलता होने पर ही सभी कार्य सफल होते हैं। यदि व्यक्ति का भाग्य अनुकूल होता है तो उसके द्वारा अनीतिपूर्वक किया गया कार्य भी अनुकूल फल प्रदान करने वाला होता है। यद्यपि अन्धक, कुब्जक और त्रिस्तनी ने धर्मपूर्वक उचित कार्य नहीं किया था, फिर भी भाग्य के अनुकूल होने पर उनका जीवन अन्त में पहले की अपेक्षा अधिक सुखी हो गया। अतः जीवन में सफलता या असफलता भाग्य की अनुकूलता पर ही निर्भर है।

(13.) राक्षस–गृहीत ब्राह्मण–कथा

प्रस्तुत कथा से हमें यह शिक्षा मिलती है कि जिज्ञासु प्रवृत्ति वाला होना व्यक्ति के लिए अनेकशः लाभकारी होता है। अपनी जिज्ञासु प्रवृति के कारण ही एक राक्षसराज द्वारा पकड़ा गया ब्राह्मण राक्षस से उसके लटके हुए पैर की कोमलता के विषय में पूछकर उसके बन्धन से मुक्त हो गया था। अतः व्यक्ति को किसी विषय में ज्ञान होते हुए भी, उस विषय में और अधिक जानने की प्रवृत्ति वाला होना चाहिये।

(14.) भारूण्डपक्षि–कथा

प्रस्तुत कथा से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें मिलजुल कर रहना चाहिये। एकता का हमारे जीवन में बहुत महत्त्व है। एकता के अभाव में हमारा जीवन खतरे में रहता है। इस कथा में यह बताया गया है कि किस प्रकार परस्पर विरोध के कारण भारूण्ड पक्षी के दोनों मुख विनष्ट हो गये। इसलिए हमेशा मिलकर रहना चाहिए तथा किसी स्वादिष्ट वस्तु को अकेले नहीं खाना चाहिये।

(15.) ब्राह्मण–कर्कटक कथा

प्रस्तुत कथा से हमें यह शिक्षा मिलती है कि मार्ग में जाते समय किसी दूसरे को साथ लेकर जाना चाहिये। एकांकी यात्रा हानिप्रद होती है, क्योंकि केकड़े को साथ ले जाने के कारण ही ब्राह्मण के प्राण बच सके। भले ही साथ में रहने वाला प्राणी कितना भी डरपोक अथवा कायर क्यों न हो, पर यात्रा में किसी साथी का रहना लाभकारी ही होता है।

3.12.4 सांराश

प्रस्तुत पाठ के अर्न्तगत 'पञ्चतन्त्र' के अपरीक्षितकारक नामक पञ्चमतन्त्र की

पन्द्रह कथाओं का सार एवं उनसे प्राप्त होने वाली शिक्षायें वर्णित हैं। क्षपणक कथा में जहॉ बिना विचार कर कार्य करने वाले नाई का वर्णन है, वहीं ब्राह्मणी–नकुल कथा में जल्दबाजी में नेवले को मारने वाली ब्राहाणी के पश्चाताप का वर्णन है। 'लोभाविष्ट चक्रधर कथा' में लोभी ब्राह्मण के विपति में फॅसने का वर्णन है। 'सिंहकारक–मूर्ख ब्राहाण कथा' एवं मूर्ख–पण्डित कथा के माध्यम से यह शिक्षा दी गयी है कि पुस्तकीय ज्ञान के साथ–2 व्यावहारिक ज्ञान का होना भी आवश्यक है। 'मत्स्य–मण्डूक कथा' 'रासभ–श्रृगाल कथा' एवं मन्थरकौलिक कथाओं में यह बताया गया है कि जहॉ स्वयं की बुद्धि कार्य न करे, वहॉ मित्रों की बात मान लेनी चाहिये। सोमशर्मा–पितृ कथा में न होने वाली घटना का चिन्तन करने वाले ब्राह्मण का वर्णन है, जवकि चन्द्रभूपति कथा में एक लालची राजा के विनाश का चित्रण है। विकाल–वानर कथा में यह बताया गया है कि अपने प्राणों को संकट में देखकर मित्र भी उससे दूर भाग जाते है। अन्धक–कुब्जक–त्रिस्तनी कथा में बताया गया है कि भाग्य की अनुकूलता से अनुचित कार्य भी शुभ फल देते हैं। राक्षस गृहीत ब्रह्मण कथा में जिज्ञासु स्वभाव की प्रशंसा का वर्णन है, तथा भारूण्ड–पक्षी कथा में एकता का महत्व वर्णित है। ब्राह्मण–कर्कट कथा में एकांकी यात्रा को हानिप्रद्र बताया गया है।

3.12.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. लोभाविष्ट चक्रधर कथा का सार एवं उससे प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन कीजिए ?
2. सोमशर्मा पितृ कथा का सार एवं उससे प्राप्त होने वाली शिक्षा का वर्णन कीजिए ?
3. पञ्चमतन्त्र में वर्णित किन्ही दो कथाओं का सार लिखें।
4. पञ्चमतन्त्र में वर्णित किन्ही दो कथाओं से प्राप्त होने वाली शिक्षाओं का वर्णन कीजिए।

✠✠✠✠✠✠✠

संस्कृत में अनुवाद की सामान्य विशेषताएँ एवँ नियम

किसी भाषा के शब्दार्थ को दूसरी भाषा के शब्दों में बदलने को या प्रकट करने को अनुवाद कहते हैं ।

अनु (पश्चात्)+वद्–वाद (कहना) एक बात को फिर से कहना अर्थात् एक बात को अन्य शब्दों में कहना । इस यौगिक अर्थ के अनुसार अनुवाद एक भाषा से उसी भाषा में भी हो सकता है, परन्तु लोकव्यवहार में अनुवाद शब्द का योगरूढ़ अर्थ ही प्रसिद्ध है, अर्थात् एक भाषा के शब्दार्थ को दूसरी भाषा के शब्दार्थ में प्रकट करना ।

अनुवाद–प्रणाली अर्थात् अनुवाद की सामान्य विशेषताएँ एवं नियम बताने से पूर्व वाक्य में आने वाले सुबन्त, तिङन्त आदि शब्दों का विवेचन करना तथा कारकों का संक्षिप्त वर्णन भी यहाँ पर आवश्यक है ।

साधारण हिन्दी के वाक्य को पहले शुद्ध हिन्दी के वाक्य में परिवर्तित कर लो । इस प्रकार जो नया वाक्य बनेगा, उसमें लगभग वे ही शब्द होंगे, जिनका प्रयोग संस्कृत में करना है । यथा –

1. 'स्कूल' के स्थान पर 'पाठशाला'
2. 'छुट्टी के स्थान पर अवकाश'
3. 'कमरे' के स्थान पर 'कक्ष' आदि शब्दों का प्रयोग वाञ्छनीय है ।

इस प्रकार बने हुए नये वाक्य में जो शब्द आये हैं उनके बाद कारक और क्रिया विशेष लगाना है ।

कारक – कारक वह वस्तु है जिसका उपयोग क्रिया की पूर्ति के लिए किया जाता है । अतः सम्बन्ध की क्रिया के सम्पादन में सीधा सम्बन्ध न होने के कारण उसे कारक नहीं माना जाता, किन्तु कतिपय वैयाकरणों ने सम्बन्ध को भी कारक माना है ।

कारकों को जोड़ने के लिए हिन्दी में 'ने', 'को' आदि चिह्न काम में आते हैं, ये 'विभक्ति' (कारक–चिन्ह) कहलाते हैं । संस्कृत में सात विभक्तियाँ और एक सम्बोधन होता है । विभक्तियों के चिह्नों को कभी नहीं भूलना चाहिए । इनसे सामान्य वाक्यों के अनुवाद में बड़ी सहायता मिलती है । ये चिन्ह इस प्रकार हैं –

विभक्तियाँ (**Case Sign**)	कारक **(Cases)**	**हिन्दी चिह्न**
प्रथमा	कर्त्ता (Nominative)	ने
द्वितीया	कर्म (Accusative)	को
तृतीया	करण (Instrumental)	से, ने, के द्वारा
चतुर्थी	सम्प्रदान (Dative)	के लिए
पञ्चमी	अपादान (Ablative)	से(अलग होने के अर्थ में)
षष्ठी	सम्बन्ध (Genitive)	का, के, की
सप्तमी	अधिकरण (Locative)	में, पर, पे
सम्बोधन	सम्बोधन (Vocative)	है, अरे, अये, भोः आदि

हिन्दी में कर्त्ता, कर्म आदि सम्बन्ध दिखाने के लिए 'ने', 'को' आदि शब्द संज्ञा या सर्वनाम के पीछे जोड़ दिए जाते हैं, किन्तु संस्कृत में यह सम्बन्ध दिखाने के लिए संज्ञा या सर्वनाम का रूप ही बदल जाता है, यथा –

रामः (राम ने), रामम् (राम को), रामस्य (राम का) ।

इन प्रथमा आदि विभक्तियों से कारकों के निर्देश के साथ–साथ वाक्य में प्रति, बिना, अन्तरेण, ऋते, सह, साकम् आदि निपातों के से भी 'नाम' से परे प्रयुक्त होती हैं । ये विभक्तियाँ नमः स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम् आदि अव्ययों के योग से भी व्यवहृत होती हैं। इन्हें 'उपपद विभक्तियाँ' कहते हैं ।

कर्त्ता और क्रिया में 'वचन' का साम्य होता है, अर्थात् दोनों में समान वचन होना चाहिए । जिस वचन में कर्त्ता हो, क्रिया भी उसी वचन की होनी चाहिए । यथा =

1) अश्वः चरति । (एकवचन)

2) चौरौ चोरयतः । (द्विवचन)

3) बुधाः पठन्ति । (बहुवचन)

कर्त्ता और क्रिया में पुरुष का भी साम्य होता है, अर्थात् कर्त्ता जिस पुरुष में हो क्रिया भी उसी पुरुष की होनी चाहिए । यथा –

1. रामः गच्छति । (अन्य पुरुष)

2. त्वं पठसि । (मध्यम पुरुष)

3. अहं धावामि । (उत्तम पुरुष)

लिंग भेद का क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात् कर्त्ता किसी भी लिंग का हो, किन्तु क्रिया के रूप में कोई प्रभाव नहीं होगा । यथा –

1. राम घर जाता है = रामः गृहं गच्छति ।

2. सीता घर जाती है = सीता गृहं गच्छति ।

3. मेरा दोस्त घर जाता है = मे मित्रं गृहं गच्छति ।

विशेषण पद में विशेष्य के अनुसार ही लिंग, वचन और विभक्तियाँ होती हैं अर्थात् जिस लिंग में विशेष्य होगा, विशेषण भी उसी लिंग में होना चाहिये । जिस वचन में विशेष्य हो, उसके विशेषण को भी उसी वचन में होना चाहिये । इसी प्रकार विशेष्य जिस विभक्ति में हो, उसके विशेषण को भी उसी विभक्ति से युक्त होना चाहिये । यथा –

	ज्येष्ठो भ्राता – सबसे बड़ा भाई ।
लिंग	ज्येष्ठा भगिनी – सबसे बड़ी बहन ।
	ज्येष्ठं कलत्रम् – सबसे बड़ी स्त्री ।
	हरितं पत्रम – हरा पत्ता ।
वचन	हरितानि पत्राणि – हरे पत्ते ।
	हरिते फले – दो हरे फल ।
	तस्मिन् वृक्षे एको वानरो निवसति ।
विभक्ति	तस्मात् वृक्षात् इदं फलं अपतत् ।
	तस्मै बालकाय तत् क्रीडनकं देहि ।
	धीमता कृष्णेन दुष्टः कंसो हतः ।
विभक्ति	वनं गत्वा स च सुन्दरीम् एकां युवतीं अपश्यत् ।

गृध्रकूट नाम्नि पर्वते महान् पिप्पलवृक्षः अस्ति ।

कुछ संख्यावाची विशेषणों के लिङ्ग और वचन निश्चित होते हैं, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता । विशेष्य किसी भी लिङ्ग और किसी भी वचन का हो, उस विशेषण शब्द विशेष का रूप वैसा ही रहैगा । यथा =

1. शतं बालकाः –– सौ लड़के
2. शतं स्त्रियः –– सौ औरतें
3. शतं फलानि –– सौ फल
4. विंशतिः पुरुषाः –– बीस आदमी

सुबन्त शब्द – शब्द के उत्तर लगायी जाने वाली विभक्तियाँ सात हैं। जैस=

प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी । विभक्तियुक्त होने पर शब्द को सुबन्त और पद कहते हैं । हर एक विभक्ति में तीन–तीन वचन हैं –– एकवचन, द्विवचन और बहुवचन । एक संख्या समझाने के लिए एकवचन, दो संख्या के लिए द्विवचन तथा तीन से परार्ध पर्यन्त संख्या के लिए बहुवचन का प्रयोग होता है । नाम या सुबन्त शब्दों के साथ सात विभक्तियों के तीन वचनों में 21 प्रत्यय लगते हैं ।

सुबन्त के 21प्रत्यय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र0	स् (सु)	औ	अस् (जस्)
द्वि0	अम्	औ (औट्)	अस् (शस्)
तृ0	आ (टा)	भ्याम्	भिस्
च0	ए (ङे)	भ्याम्	भ्यस्
पं0	अस् (ङसि)	भ्याम्	भ्यस्
ष0	अस् (ङस)	ओस्	आम्
स0	इ (ङि)	ओस्	सु (सुप्)

शब्दों में कुछ ऐसे शब्द हैं जिनके रूप हमेशा एक से रहते हैं और कुछ शब्द ऐसे हैं जिनके रूपों में परिवर्तन हो जाता है ।

1. **अव्यय** –– अव्यय शब्द वे हैं जो तीनों लिंगों में, सब विभक्तियों में तथा सब वचनों में एक समान रहते हैं और कभी नहीं बदलते । ये अव्यय शब्द क्रियाविशेषण आदि के रूप में प्रयुक्त होते हैं । संस्कृत में अव्यय बहुत हैं । नित्य के प्रयोग में आने वाले कुछ अव्यय इस प्रकार हैं ––

तत्र, अत्र, कुत्र, यत्र, सर्वत्र, यदा, तदा, कदा, एव, एवम्, यदि, यतः, अतः, ततः, यावत, तावत्, यथा, तथा, सर्वथा, अद्य, सम्यक् आदि ।

इन अव्यय शब्दों के अतिरिक्त संस्कृत में कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग अव्यय की भाँति ही होता है । यथा –– अन्यत्, अस्ति, नास्ति, ओम्, अस्तम्, नमः, भू, भवः, स्वः, स्वस्ति, शम्, संवत्, वदि, सुदि, स्वाहा, स्वधा, चाटु ।

2. जिन शब्दों के रूपों में परिवर्तन हो जाता हैं, वे विकारी शब्द कहलाते हैं –

विकारी शब्द

संज्ञा	सर्वनाम	विशेषण	क्रिया
(रामः नदी, अश्वः आदि)	(त्वम्,तू,अहम्, मैं, सः, वह आदि)	(सुन्दर, रक्त,दुष्ट आदि)	(पठति, गच्छति, वदति आदि)

हिन्दी में अंग्रेजी के समान क्रिया का निश्चित स्थान रहता है। हिन्दी में क्रिया वाक्य के अन्त में आती है, किन्तु अंग्रेजी में कर्त्ता ओर कर्म के बीच । संस्कृत में अधिकाशं शब्दों के विकारी हाने के कारण कर्त्ता, कर्म, क्रिया आदि आगे पीछे भी आ सकते हैं । संस्कृत में शब्दगत विभक्तियों के रूप निश्चित होते हैं । आगे या पीछे कहीं भी किसी शब्द को रखने से उसके अर्थ में अन्तर नहीं पड़ता और यह संस्कृत की अपनी विशेषता है । यथा –

1. अहं गृहं गच्छामि । 2. गच्छाम्यहं गृहम् ।

3. गृहमहं गच्छामि । 4. गृहं गच्छाम्यहम् ।

संस्कृत में लिङ्ग–निर्धारण एक समस्या है इसका ज्ञान शब्द कोष की सहायता से हो सकता है । संस्कृत में निर्जीव वस्तुओं के लिये भी पुल्लिग ओर स्त्रीलिंग का प्रयोग होता है । यथा –

समिध् (हवन सामग्री), अप् (पानी), वाच् (वाणी) – ये शब्द नपुंसक लिंग के न होकर स्त्रीलिंग के हैं । इसी प्रकार क्षुरः (छुरा), वृक्ष (पेड़) आदि शब्द नपुंसकलिंग में न होकर पुल्लिग में होते हैं ।

संस्कृत में एक ही अर्थ वाले कुछ शब्द विभिन्न लिंगों में पाये जाते हैं । यथा – पत्नीवाची, 'भार्या' शब्द स्त्रीलिंग में , 'दार' शब्द पुल्लिग में और 'कलत्र' शब्द नपुंसकलिंग में प्रयुक्त होते हैं ।

संस्कृत में कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके कई अर्थ होते हैं । एक ही शब्द एक अर्थ में किसी लिंग में और दूसरे अर्थ में किसी दूसरे लिंग में पाया जाता है । यथा –

'मित्र' शब्द 'सूर्य' के अर्थ में 'पुल्लिग' किन्तु दोस्त के अर्थ में 'नपुंसकलिंग' में प्रयुक्त होता है ।

संस्कृत में एकवचन, द्विवचन और बहुवचन का प्रयोग होता है । संस्कृत में कुछ शब्द ऐसे हैं जिनका प्रयोग सदा ही बहुवचन में होता है । यथा – दाराः (पत्नी), अक्षताः (बिना कुटे चावल), लाजाः (भुने हुये चावल, खीलें), असवः (प्राणपोषक वायु), आपः (जल), सुमनसः (फूल), समाः (वर्ष), सिकताः (बालू), वर्षाः (बरसात), अप्सरसः (अप्सरा), प्राणाः (प्राण) शब्द बहुवचन में ही प्रयुक्त होते हैं । इनके अतिरिक्त तीन और उसके बाद की संख्यायें सदा बहुवचन में ही प्रयुक्त होती हैं ।

एक शब्द 'एक' (1) के अर्थ में एकवचन में प्रयुक्त होता है और 'कई' के अर्थ में बहुवचन में प्रयुक्त होता है । यथा – एके वदन्ति ।

संस्कृत में कुछ शब्द प्रायः द्विवचन में ही प्रयुक्त होते हैं । यथा

श्रोत्र, चक्षुस्, कर, बाहु, स्तन, चरण आदि ।

दम्पति (दम्पती) – पत्नी और पति ।

अश्विन् (अश्विनौ) – अश्विनी कुमारों का जोड़ा ।

मातृ, पितृ (पितरौ) – माता और पिता ।

द्वि (द्वौ, द्वे) – दो ।

सर्वनाम शब्द – बातचीत करने में एक व्यक्ति वह होता है जो बातचीत करता है, दूसरा वह होता है जिससे बातचीत की जाती है और तीसरा वह होता है जिसके विषय में बातचीत की जाती है । बोलने वाला उत्तम पुरुष, जिससे बातचीत की जाती है वह मध्यम पुरुष और जिसके विषय में बातचीत की जाती है वह प्रथम पुरुष अर्थात् अन्य पुरुष कहलाता है ।

एकवचन	अहम् (मैं)	त्वम् (तू)	सः(वह) सा (वह) तत् (वह)
द्विवचन	आवाम् (हम दो)	युवाम् (तुम दो)	तौ (वे दो) ते (वे दो) ते (वे)
बहुवचन	वयम् (हम सब)	यूयम् (तुम)	ते (वे) ताः (वे) तानि (वे)

युष्मद् और अस्मद् को छोड़कर सर्वनाम शब्द तीन लिंगों में विशेष्य के अनुसार होते हैं ।

जिस संज्ञा के लिए वह विशेषण और सर्वनाम है, उसमें भी उस संज्ञा वाला लिंग, विभक्ति तथा वचन लगेगा । यथा –

उस चतुर राम ने इस सुन्दर वन में एक बहुत बड़ी राक्षसी देखी ।

सः चतुरः रामः अस्मिन् सुन्दरे वने एका महती राक्षसी पश्यति स्म ।

शतृ और शानच् नाम के कृदन्त प्रत्यय भी विशेषण के रूप में प्रयुक्त होते हैं । क्तवतु प्रत्यय–युक्त कृदन्त भी कभी–कभी विशेषण के रूप में प्रयुक्त होता है ।

विशेषण पद को संज्ञा से पहले ही रखना चाहिए । परन्तु जब विशेषण विधेय रूप में प्रयुक्त होता है तो वह संज्ञा के पश्चात् भी आ सकता है । जैसे – रामः बुद्धिमान् अस्ति ।

संस्कृत में 'और' शब्द के लिए 'च' शब्द का प्रयोग होता है । हिन्दी में 'और' दो शब्दों के बीच में होता है । यथा – 'राम और कृष्ण' पर संस्कृत में 'और' शब्द का वाचक 'च' अन्त में होता है । यथा – रामः कृष्णश्च ।

पूर्ण संख्याओं के लिंग, वचन, विभक्ति आदि अपने विशेष्य के अनुसार ही होंगे ।

कर्मवाच्य में अनुवाद करते समय लकारों वाली क्रिया कर्म के अनुसार पुरुष (अन्य पु0, मध्यम पु0, उत्तम पु0) और वचन में बदलेगी । यहाँ क्रियापद पर लिंग का प्रभाव नहीं पड़ता । पर क्त, तव्यत्, यत् आदि प्रत्ययों से युक्त क्रिया–पदों पर कर्म के लिंग, वचन का प्रभाव पड़ता है । यहाँ क्रियायुक्त पद पर पुरुष का प्रभाव नहीं पड़ता ।

भाववाच्य में अनुवाद करते समय क्रिया–पद सदैव एकवचन प्र0पु0 में होता है । क्त, तव्यत् आदि प्रत्यय भी सदैव नपुंसकलिंग एकवचन में ही प्रयुक्त होते हैं ।

जब एक ही वाक्य में तीन पुरुष कर्त्ता में हों, यथा – 'मैं तू और देव दिल्ली जाएंगे' ऐसे वाक्य में क्रिया उत्तम पुरुष में होगी । यथा – अहं त्वं देवश्च दिल्ली नगरम् गमिष्यामः ।

अनुवाद के लिए अवधारणीय महत्वपूर्ण तथ्य –

शब्दकोष – 1. प्रातिपदिक, 2. आख्यात

संस्कृत भाषा में शब्द दो प्रकार के होते हैं – विकारी तथा अविकारी शब्द । अविकारी शब्द ऐसे शब्द हैं जिनका रूप सदा एक–सा रहता है । न बदलने वाले शब्दों में यदा, कदा, सदा आदि अव्यय तथा 'पठितुम्', 'कृत्वा' आदि क्रियाओं के रूप हैं । दूसरे ऐसे शब्द हैं जिनका रूप वाक्य के और शब्दों के कारण बदलता रहता है । बदलने वाले शब्दों में संज्ञा, सर्वनाम,विशेषण तथा क्रिया (आख्यात) हैं ।

1. **प्रातिपदिक** – भिन्न–भिन्न कारकों को बतलाने के लिए प्रातिपदिकों (संज्ञा शब्दों) में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हें 'सुप्' कहते हैं । इसी प्रकार भिन्न–भिन्न काल की क्रियाओं का अर्थ बतलाने के लिए धातुओं में जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं, उन्हें 'तिङ्' कहते हैं । सुप् और तिङ् को ही विभक्ति कहते हैं और सुबन्त और तिङन्त शब्दों को ही पद कहते हैं ।

प्रातिपदिकों (संज्ञा शब्दों) के भेद

संस्कृत में प्रयुक्त होने वाले नाम शब्दों या संज्ञा शब्दों के निम्नलिखित दो भेद हैं –

1. अजन्त – जिनके अन्त में कोई स्वर हो, जैसे = देव ।
2. हलन्त – जिन के अन्त में कोई व्यञ्जन हो, जैसे = सुहृद् ।

ये दोनों प्रकार के शब्द पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग में प्रयुक्त किए जाते हैं । इस प्रकार संज्ञा शब्दों के छः भेद हो जाते हैं –

1. अजन्त पुल्लिग
2. अजन्त स्त्रीलिंग
3. अजन्त नपुंसकलिंग
4. हलन्त पुल्लिग
5. हलन्त स्त्रीलिंग
6. हलन्त नपुंसकलिंग

भिन्न–भिन्न विभक्तियों और वचनों में इनके रूप–परिवर्तन होते समय निम्नलिखित

विभक्ति–प्रत्यय इनके साथ लगते हैं ।

विभक्ति	अर्थ	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	ने	सु	औ	जस्
द्वितीया	को	अम्	औट्	शस्
तृतीया	से, के द्वारा	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	के लिए	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	से(पृथक् अर्थ में)	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	का, के, की	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	में, पर, पे	ङि	ओस	सुप्

1. **अजन्त या स्वरान्त संज्ञा शब्द**

– अकारान्त शब्द प्रायः सभी पुल्लिग अथवा नपुंसकलिंग में होते हैं ।

– अकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिंग में होते हैं । थोड़े से ही पुल्लिग में होते हैं ।

– इकारान्त शब्द कोई पुल्लिग में कोई स्त्रीलिंग में और कोई नपुंसकलिंग में होते हैं ।

– ईकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिंग में, कुछ–कुछ पुल्लिग में भी होते हैं ।

– उकारान्त शब्द प्रायः तीनों चिह्नों में होते हैं ।

– ऊकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिंग, पुल्लिग दोनों में होते हैं ।

– ऋकारान्त शब्द प्रायः सब पुल्लिग में होते हैं ।

– ऐकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त शब्द बहुत कम ।

– शेष स्वरों में अन्त होने वाले प्रातिपदिक शब्द प्रायः नहीं के बराबर हैं ।

1. **अकारान्त** – यथा = राम, वृक्ष, अश्व, सूर्य, चन्द्र, नर, पुत्र, देव, सुर, गज, मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, दन्त, भवादृश, यादृश, तादृश आदि। इन सभी के रूप बालक की तरह चलते हैं ।

2. **आकारान्त** – विश्वा, गोपा, सोमपा, धूम्रपा, बलदा आदि के रूप समान चलते हैं ।

3. **इकारान्त** – हरि, मुनि, ऋषि, कपि, यति, विधि, जलधि, रवि, वह्नि, अग्नि आदि के रूप कवि की तरह चलते हैं ।

4. **ईकारान्त** – सुधी, शुष्की, सुश्री, शुद्धधी आदि के रूप चलते हैं ।

5. **उकारान्त** – शत्रु, रिपु, विष्णु, गुरु, उरु, शिशु, विधु, पशु, शम्भु, वेणु आदि के रूप भानु की तरह चलते हैं ।

6. **ऊकारान्त** – सुभ्रू, स्वभू, प्रतिभू के रूप स्वयम्भू शब्द के समान चलते हैं ।

7. **ऋकारान्त** – भ्रातृ, देवृ, जामातृ आदि रूप पितृ शब्द की तरह चलते हैं । किन्तु दातृ शब्द के रूप भिन्न होते हैं और कर्तृ, धार्तृ, नेर्तृ के रूप भी उसी तरह चलते हैं ।

8. **ऐकारान्त** – रै (धन)

9. **ओकारान्त** – गो (बैल)

10. **औकारान्त** – ग्लो (चन्द्रमा)

स्वरान्त नपुंसकलिंग संज्ञा शब्द

1. **अकारान्त** – मित्र, वन, मुख, कमल, कुसुम, पर्ण, नक्षत्र, पत्र, बीज, जल, शरीर, पुस्तक, ज्ञान, पुष्प आदि के रूप फल शब्द की तरह चलेंगे ।

2. **इकारान्त** – अस्थि, दधि, अक्षि, को छोड़कर शेष सभी इकारान्त नपुंसकलिंग शब्दों के रूप वारि (जल) के समान चलते हैं ।

3. **उकारान्त** – दारु (काठ), जानु (घुटना), जतु (लाख), तालु, मधु, सानु(पर्वत की चोटी) आदि के रूप वस्तु शब्द के समान होते हैं ।

4. **ऊकारान्त** – ऊकारान्त विशेषण शब्दों के रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी विभक्तियों के एकवचन में तथा षष्ठी व सप्तमी के द्विवचन में उकारान्त पुल्लिंग शब्द के समान विकल्प करके होते हैं ।

5. **ऋकारान्त** – कर्तृ, नेतृ, धातृ, रक्षितृ आदि शब्द विशेषण हैं इसलिए इनका प्रयोग तीनों लिंगों में होता है । इसलिए नपुंसकलिंग में भी इसके रूप कर्तृ, कर्तृणी आदि की तरह चलते हैं ।

स्वरान्त स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द

1. **आकारान्त** – रमा, बाला, निशा,कन्या, ललना, भार्या, बडवा (घोड़ी), राधा, तारा, सुमित्रा, कौसल्या, कला आदि के रूप विद्या शब्द के समान चलेंगें ।

2. **इकारान्त** – रुचि, धूलि, बुद्धि, गति, शुद्धि, भक्ति, शक्ति, श्रुति, शान्ति, रीति, गीति, जाति, पंक्ति आदि के रूप मति शब्द की तरह चलेंगे ।

3. **ईकारान्त** – राज्ञी, जानकी, देवी, नटी, त्रिलोकी, कौमुदी, गायत्री, सावित्री, गौरी, नलिनी, कमलिनी, कुन्ती, देवकी, पृथ्वी आदि के रूप नदी शब्द की तरह चलते हैं ।

   लक्ष्मी, स्त्री, श्री आदि के रूप नदी से कुछ भिन्न होते हैं ।

4. **उकारान्त** – तनु, रेणु, हनु आदि के रूप धेनु शब्द की तरह चलते हैं ।

5. **ऊकारान्त** – चमू (सेना), कर्कन्धू (बेर), श्वश्रू, रज्जू आदि के रूप वधू शब्द की तरह चलते हैं ।

   भू (पृथ्वी) और भ्रू के रूप वधू से कुछ भिन्न हैं ।

6. **ऋकारान्त** – मातृ, यातृ (देवरानी) दहितृ (लड़की) के रूप मातृ शब्द की तरह ही चलते हैं ।

7. **ऐकारान्त, ओकारान्त (गो आदि) और औकारान्त** (नौ–नाव, द्यो, आकाश आदि) शब्दों के रूप क्रमशः ऐकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त पुल्लिग शब्दों की तरह ही चलते हैं ।

2. **हलन्त या व्यञ्जनान्त संज्ञा शब्द**

व्यञ्जनान्त संज्ञायें सभी लिंगों में प्रायः एक सी चलती हैं, इसलिये यहां पर वर्णक्रम से दी जा रही हैं ।

चकारान्त शब्द

1) **पुल्लिग** – सत्यवाच्, पयोमुच् आदि सभी चकारान्त पुल्लिग शब्दों के रूप जलमुच् (बादल) की तरह चलते हैं । प्राञ्च् (पूर्वी), प्रयञ्च (पश्चिमी), उदञ्च् (उत्तरी) और तिर्य्यञ्च (तिरछा जाने वाला) आदि अञ्च (जाना) धातुओं से बने शब्दों के रूपों में कुछ भेद होता है ।

2) **स्त्रीलिंग** – रुच्, त्वच् (चमड़ा, पेड़ की छाल), शुच् (सोच, शोक), ऋच् (ऋग्वेद के मन्त्र) आदि सभी चकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप वाच् (वाणी) की तरह होते हैं ।

जकारान्त शब्द

1) **पुल्लिग** – भूभुज् (राजा), हुतभुज् (अग्नि), भिजग् (वेद्य), वणिज् (बनिया) आदि जकारान्त पुल्लिग शब्दों के रूप ऋत्विज् (पुजारी) की तरह चलते हैं । केवल, परिव्राज् (संन्यासी) के रूपों में थोड़ा भेद होता है । सम्राज् (महाराज), विश्वसृज् (संसार का रचने वाला), विराज् (बड़ा) के रूप भी परिव्राज् के समान ही चलते हैं ।

2) **स्त्रीलिंग** – रुज् (रोग) आदि जकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप सुज् (माला) के समान होते हैं ।

3) **नपुंसकलिंग** – सभी जकारान्त नपुंसकलिंग शब्दों के रूप असृज् (खून) के समान होते हैं ।

तकारान्त शब्द

1) **पुल्लिग** – महीभृत् (राजा,पहाड़), दिनकृत (सूर्य), शशभृत् (चन्द्रमा), परभृत् (कोयल), मरुत् (वायु), विश्वजित् (विश्व को जीतने वाला, एक प्रकार का यज्ञ) आदि के रूप भूभृत् (राजा, पहाड़) के समान चलते हैं ।

– धीमत् (बुद्धिमान), बुद्धिमत्, भानुमत्(चमकने वाला), सानुमत् (पहाड़), धनुष्मत् (धनुर्धारी), अंशुमत् (सूर्य), विद्यावत् (विद्वान्), बलवत् (बलवान्), भगवत् (पूज्य), भाग्यवत्, गतवत् (गया हुआ), उक्तवत् (बोल चुका हुआ), श्रुतवत् (सुनचुका हुआ) आदि के रूप श्रीमत् शब्द की तरह चलते हैं ।

– पठत् (पढ़ता हुआ), धावत्, गच्छत्, वदत्, पश्यत्, गृह्णत्, पतत्,शोचत् (सोचता हुआ), पिबत्, भवत् आदि शतृ प्रत्ययान्त पुल्लिग शब्दों के रूप तथा महत् (बड़ा) के रूप भवत् (आप) के समान होते हैं ।

2) **स्त्रीलिंग** – विद्युत् (बिजली, योषित् (स्त्री) आदि तकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप सरित् (नदी) की तरह चलते हैं ।

3) **नपुंसकलिंग** – प्रायः सभी तकारान्त नपुंसकलिंग शब्दों के रूप जगत् (संसार) के समान होते हैं । केवल महत् (बड़ा) का रूप प्रथमा और द्वितीया विभक्ति के बहुवचन में 'महन्ति' न होकर 'महान्ति' होता है ।

दकारान्त शब्द

1) **पुल्लिग** – हृदयच्छिद् (हृदय को छेदने वाला), मर्मभिद् (मर्मस्थल को पीड़ा पहुँचाने वाला), सभासद् (सभा में बैठने वाला), तमोतुद् (सूर्य), धर्मविद् (धर्म को जानने वाला), हृदयन्तुद् (हृदय को पीड़ित करने वाला) आदि दकारान्त पुल्लिग शब्दों के रूप सुहृद् (मित्र) के समान होते हैं ।

2) **स्त्रीलिंग** – शरद्, आपद्, सम्पद्, संसद् (सभा), दृषद् (चट्टान, पत्थर) आदि दकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप 'विपद्' के समान होते हैं ।

धकारान्त शब्द

धकारान्त शब्द प्रायः स्त्रीलिंग के ही होते हैं । वीरुध् (लता), क्षुध् (भूख), क्रुध् (क्रोध), युध (युद्ध) आदि के रूप समिध् (यज्ञ की लकड़ी) के समान होते हैं ।

नकारान्त शब्द

1) **पुल्लिग** – अध्वन् (मार्ग), अश्मन् (पत्थर), यज्वन् (यज्ञ करने वाला), ब्रह्मन् (ब्रह्मा) आदि के रूप आत्मन् (आत्मा) के समान होते हैं । राजन् (राजा), युवन् (जवान), श्वन् (कुत्ता), मधवन् (इन्द्र) और पूषन् (सूर्य के रूप कुछ भिन्न होते हैं ।

– मूर्धन् (शिर), गरिमन् (बड़प्पन, लधिमन् (छोटापन्) अणिमन् (छोटापन) शब्दों के रूप महिमन् (महिमा,बड़प्पन) के समान चलते हैं ।

– स्वामिन्, करिन (हाथी), गुणिन् (गुणी), मन्त्रिन् (मंत्री), शशिन्, पक्षिण् (चिड़िया), धानिन्, वाजिन (घोड़ा), तपस्विन्, एकाकिन् (अकेला), बलिन् (ताकतवर), सुखिन् (सुखी), सत्यवादिन् (सत्य बोलने वाला) आदि इन्नन्त शब्दों के रूप हस्तिन् (हाथी) की तरह चलेंगे । केवल पथिन् (मार्ग) शब्द के रूपों में थोड़ा भेद होता है ।

2) **स्त्रीलिंग** – सीमन् (सीमा, चौहद्दी) शब्द के रूप पुल्लिग शब्द महिमन् के समान ही होते हैं ।

3) **नपुंसकलिंग** – धामन् (घर, चमक), व्योमन् (आकाश) सामन् (सामवेद का मंत्र), प्रेमन् (प्यार), दामन् (रस्सी) के रूप नामन् (नाम) के समान चलते हैं ।

– पवन् (पूर्णमासी, त्योहार), ब्रह्मन् (ब्रह्मा), वर्मन् (कवच), जन्मन् (जन्म), वर्त्मन् (रास्ता), शर्मन् (सुख) शब्दों के रूप चर्मन् (चमड़ा) की तरह होते हैं किन्तु अहन् (दिन) के रूप इससे कुछ भिन्न होते हैं ।

पकारान्त शब्द

1) **स्त्रीलिंग** – अप् (पानी) शब्द के रूप केवल बहुवचन में चलते हैं ।

भकारान्त शब्द

1) **स्त्रीलिंग** – ककुभ् (दिशा) के समान ही अन्य भकारान्त शब्दों के रूप भी चलते हैं ।

रेफान्त शब्द

1) **स्त्रीलिंग** – इरन्त शब्दों के रूप गिर् (वाणी) और उरन्त शब्दों के रूप 'पुर' (नगर) के समान चलते हैं ।

वकारान्त शब्द

1) **स्त्रीलिंग** – वकारान्त शब्दों के रूप दिव् (आकाश, स्वर्ग) शब्द के समान चलते हैं ।

शकारान्त शब्द

1) **पुल्लिग** – शकारान्त पुल्लिग शब्दों के रूप विश् (बनिया) के समान होते हैं ।

2) **स्त्रीलिंग** – शकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप दिश् (दिशा) की तरह चलते हैं। निश् (शत) शब्द के रूप भिन्न होते हैं । उसके पहले पाँच रूप नहीं हुआ करते ।

षकारान्त शब्द

1) **पुल्लिग** – षकारान्त पुल्लिग शब्दों के रूप द्विष् (शत्रु) की तरह चलते हैं।

2) **स्त्रीलिंग** – षकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप प्रावृष् (वर्षाऋतु) की तरह होते हैं ।

सकारान्त शब्द

1) **पुल्लिग** – दिवौकस् (देवता), महौजस् (बड़ा तेजस्वी, वेधस् (ब्रह्मा), सुमनस् (अच्छे चित्त वाला) महायशस् (बड़ा यशस्वी), महातेजस् (बड़ी कान्ति वाला), विशालवक्षस् (बड़ी छाती वाला), दुर्वासस् (दुर्वासा, बुरे कपड़ों वाला), प्रचेतस् आदि सकारान्त पुल्लिग शब्दों के रूप चन्द्रमस् (चन्द्रमा) के समान चलाये जाते हैं।

– वस् में अन्त होने वाले शब्दों के रूप विद्वस् (विद्वान्) की तरह चलते हैं।

–	श्रेयस् (अधिक अच्छा), गरीयस् (अधिक बड़ा), द्रढीयस् (अधिक मजबूत), द्रंघ ीयस् (अधिक लम्बा), प्रथीयस् (अधिक मोटा) आदि ईस् प्रत्यय से बने पुल्लिग शब्दों के रूप लघीयस् (उससे छोटा) के समान चलते हैं। = दास् (भुजा) शब्द के रूप सर्वथा भिन्न हैं ।

2)	**स्त्रीलिंग** – सकारान्त अप्सरस् (अप्सरा) और आशिस् (आशीर्वाद) आदि शब्दों के रूप लगभग समान होते हैं ।

3)	**नपुंसकलिंग** – इसन्त नपुंसकलिंग शब्दों के रूप हविस् (हवन सामग्री) की भाँति चलते हैं ।

4)	**नपुंसकलिंग** – उसन्त नपुंसकलिंग शब्दों के रूप चक्षुस् (आँख) की तरह चलेंगे । जेसै कि = धनुस् (धनुष), वपुस् (शरीर), आयुस् (उम्र), यजुस् (यजर्वेद) आदि ।

हकारान्त शब्द

1)	**पुल्लिग** – इहन्त पुल्लिग शब्दों के रूप मधुलिह् (शहद की मक्खी, भौंरा) की तरह चलते हैं ।

उहन्त पुल्लिग शब्दों के रूप अनहुह (बैल) की तरह होते हैं ।

2)	**स्त्रीलिंग** – अहन्त स्त्रीलिंग शब्दों के रूप उपानह (जूता) के समान चलाये जाते हैं ।

2.	**आख्यात** – आख्यात अर्थात् क्रिया वह शब्द है जो किसी वस्तु के सम्बन्ध में कुछ बतलावे अर्थात् जिससे किसी काम का करना या होना पाया जाए, उसे क्रिया कहते हैं । यथा – गच्छति, पश्यति, पठति, रोदिति, भुङ्क्ते इत्यादि । संस्कृत में क्रिया शब्दों को धातु कहते हैं । धातु – भू, स्था, गम्, दृश, पठ्, वद् आदि को धातु कहते हैं । प्रत्येक धातु से एक–एक क्रिया व्यक्त होती है ।

धातु के उत्तर दस विभक्तियाँ होती हैं । यथा – लट्, लङ्, लिट्, लुङ्, लुट्, लृट्, लोट्, विधिलिङ्, आशीर्लिङ् ओर लृङ्। इन्हें दस लकार कहते हैं । इन समस्त विभक्तियों को तिङ् कहते हैं । ति, तस्, अन्ति आदि विभक्तियों के जोड़ने से जो क्रियापद बनते हैं उनहें तिङन्त कहते हैं । संस्कृत में दस लकार हैं –

1.	लट्	वर्तमान	Present Tense
2.	लृट्	भविष्यत्	Simple Future

3.	लोट्	आज्ञा	Imperative Mood
4.	लङ्	भूतकाल	Past Imperfect
5.	विधिलिङ्	विधि	Potential Mood
6.	लुङ्	भूव	Aorist
7.	लिट्	भूत	
8.	लुट्	भविष्यत्	Perfect Future
9.	लृङ्		Conditional
10.	लेट्		(Subjunctive)

धातु के तीन भेद हैं = परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी ।

1) **परस्मैपद** – का अर्थ है वह जो दूसरे के लिए हो । अर्थात् जिस क्रिया का फल दूसरे के लिए हो वह परस्मेपद है । जैसे = भू (भव्) भवति, भवतः, भवन्ति आदि ।

2) **आत्मनेपद** – का अर्थ है वह पद जो अपने लिए हो । अर्थात् जिसका फल अपने लिए हो वह आत्मनेपद है । जैसे = वर्तते, वर्तेते, वर्तन्ते आदि ।

3) **उभयपदी** – कृ = (प0) करोति, कुरुतः, कुर्वन्ति आदि ।

(आ0) कुरुते, कुर्वाते, कुर्वते आदि ।

प्रत्येक लकार के तीन पुरुष होते हैं – प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष और उत्तम पुरुष । प्रत्येक पुरुष के तीन वचन होते हैं – एकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन ।

1. **लट् लकार** = वर्तमान काल में हो रही घटना के लिए लट् लकार का प्रयोग किया जाता है । यथा = स गच्छति, अहं पश्यामि आदि।

– संस्कृत में लट् लकार अपूर्ण वर्तमान के लिए प्रयुक्त किया जाता है। इसका अभिप्राय ऐसी घटना से होता है जो कभी हो रही हो । यथा = एतास्तपस्विकन्यका इत एवाभिवर्तन्ते। ये तपस्विनी बालाएँ इधर ही आ रही हैं ।

– शाश्वत तथ्य बताने के लिए भी लट् लकार का प्रयोग होता है । यथा = सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम ?

– यावत्–तावत् कदा आदि शब्दों के साथ लट् पूर्ण भविष्यत् में प्रयुक्त होता है

। यथा = यावदहं आगच्छामि तावदपेक्षस्व । (जब तक मैं वापस न आऊँ, तुम प्रतीक्षा करो ।)

– यथा तथा घटना सुनाते समय भी लट् का प्रयोग ऐसे होता है जैसे कहने वाला उसे देख रहा है यथा = हस्ती ब्रूते–कस्त्वम् ? (हाथी बोला = तुम कौन हो ?)

– जिसे करने की आदत पड़ गई हो उसके लिए भी लट् लकार प्रयुक्त होता है यथा = पातुं प्रथमं व्यवस्यति जलम् । (उसे पहले जल पीने की आदत पड़ गई है ।)

– जहां शर्त हो वहां भी कई बार लट् का प्रयोग होता है । यथा = योऽन्नं ददाति स स्वर्ग याति । (जो अन्न देता है वह स्वर्ग जाता है।)

– स्म के साथ प्रयुक्त होने पर यह भूत का निर्देश करता है । यथा = कस्मिश्चिद् वने कश्चित् सिहः वसतिस्म। (किसी वन में एक सिंह रहता था ।)

– जो क्रिया जल्द ही समाप्त होगी या अभी समाप्त हो गयी है, उसके लिए लट् का प्रयोग होता है । यथा =

कदा गमिष्यसि ? एष गच्छामि । (कब जाओगे? अभी जाता हूँ ।)

कदा आगन्तोऽसि ? अयमागच्छामि । (कब आये हो?अभी आ रहा हूँ ।)

– जब प्रश्न का उत्तर दिया जावे तो भूतकाल के अर्थ में लट् का प्रयोग होता है । यथा = कटमकार्षीः किम् ? ननु करोमि भोः (क्या तुमने चटाई बनाई? हाँ, बनाई है ।)

– कदा व कर्हि शब्दों के योग में भविष्यत् के अर्थ में विकल्प से लट् लकार होता है । यथा – स कदा (कर्हि) भोजनमत्ति । (वह कब खाना खाएगा ?)

2) **लङ्** – भूतकाल की क्रियाओं को प्रकट करने के लिए संस्कृत में लङ्, लिट् और लुङ् लकारों का प्रयोग होता है । इसके अतिरिक्त लङ् का प्रयोग कभी–कभी अभी–अभी की घटनाओं के विषय में प्रश्न पूछने के लिए भी होता है । यथा – अगच्छत्किं स ग्रामम् ?

3) **लिट्** – लिट् का प्रयोग परोक्ष अर्थ में होता है अर्थात् जिस क्रिया को वक्ता ने स्वयं न देखा हो । यथा – जघान कंसं किल वासुदेवः । (भगवान कृष्ण ने कंस को मारा ।)

4) **लुङ्** – अपने साधारण प्रयोग के अतिरिक्त चालू क्रिया के अर्थ में भी प्रयुक्त

होता है । 'मास्म' के योग में लङ् और लुङ् का प्रयोग होता है तथा लुङ् के 'अ' का 'मास्म' के बाद लोप हो जाता है । यथा =

मास्म करोत् (नहीं करना चाहिए ।)

मासम भवः (मत होओ ।)

5) **लुट्** – लुट् उस भविष्यत् का निर्देश करता है जो उसी दिन न होना हो। यथा अहं परश्वः स्वग्रामं गन्ता ।

6) **लृट्** – आसन्न या समीपवर्ती भविष्यत् के लिए लृट् का प्रयोग होता है।

– 'क्षिप्र' शब्द होने पर लृट् का प्रयोग होता है । यथा –

वृष्टिश्चेत्क्षिप्रं (आशु, त्वरितं) वा आयास्यति शीघ्र वप्स्यामः ।

(यदि शीघ्र वर्षा होगी तो हम अनाज बोयेंगे)

– स्म् (याद करना) अर्थ वाले धातुओं के साथ जब यत् का प्रयोग नहीं होता तो लृट् का प्रयोग लङ् के स्थान पर होता है । यथा –

स्मरसि कृष्ण गोकुले वत्स्यामः? (याद है कृष्ण ! हम गोकुल में रहते थे।)

– आश्चर्य अर्थ में धातु से लृट् लकार होता है । यथा –

आश्चर्यमन्धो नाम कृष्ण द्रक्ष्यति। (आश्चर्य है कि अन्धा कृष्ण को देखेगा।)

– जब अवश्य अथवा योग्य अर्थवाला 'अलम्' प्रयुक्त हो तो लृट् का प्रयोग होता है । यथा – अलं कृष्णो हस्तिन हनिष्यति ।

7. लोट् – अनुमति, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अनुरोध, जिज्ञासा और सामर्थ्य अर्थ में – लोट् लकार का प्रयोग होता है । यथा –

अनुमति अर्थ में – अद्य भवान् अत्र आगच्छतु । (आज आप यहाँ आइए।)

निमन्त्रण अर्थ में – अद्य भवान् इह भुङ्क्ताम् (आज आप यहाँ भोजन कीजिए।)

आमन्त्रण अर्थ में – वनेऽस्मिन् यथेच्छं वस । (इस वन में इच्छानुसार रह सकते हो।)

सामर्थ्य अर्थ में – सिन्धुमपि शोषयाणि । (मैं समुद्र भी सुखा सकता हूँ ।)

8) **विधिलिङ्** – अनुमति को छोड़कर, विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण तथा प्रार्थना के

लिए विधिलिङ् का प्रयोग होता है । यथा

विधि – अहरहः सन्ध्यामुपासीत ।

आमन्त्रण – मोहन, यावन्नाहं यायां त्वमत्रैव तिष्ठ ।

संप्रश्न (सादर पूछना) किं करवाणि ते प्रियं देवि ! (देवि, तेरे लिए मैं क्या करूँ ?)

प्रार्थना – अप्यन्तराऽऽ गच्छानि आर्य। (श्रीमान् क्या मैं भीतर आ सकता हूँ ?)

9) **आशीर्लिङ्** – आशीर्वाद के अर्थ में ही प्रयुक्त होता है । यथा –

चिरञ्जीव्यात् भवान् ।

क्रियाओं के प्रकार – क्रियायें तीन प्रकार की होती हैं –

1) **सकर्मक** – जिन क्रियाओं को कर्म की आवश्यकता होती है । यथा –

क) रमेशः पाठं पठति ।

ख) गुरु शिष्यं उपदिशति ।

2) **अकर्मक** – जिन क्रियाओं को कर्म की आवश्यकता नहीं होती । यथा –

क) रामः क्रीडति ।

ख) बालिका शेते ।

3) **द्विकर्मक** – जिन क्रियाओं को दो कर्मों की आवश्यकता होती है । यथा –

याचकः राजानं अन्नं याचते ।

द्विकर्मक क्रियायें केवल 16 हैं – 1) दुह्, 2) याच्, 3) पच्, 4) दण्ड्, 5) रुध्, 6) पृच्छ, 7) चि, 8) ब्रू, 9) शास्, 10) जि, 11) मन्थ्, 12) मृष्, 13) नी, 14) हृ, 15) कृष्, 16) वह्

सकर्मक धातुओं के पुनः दो भेद होते हैं –

1) कर्तृवाच्य की सकर्मक क्रिया यथा – रामः पुस्तकं पठति, सः विद्यां पठति ।

2) कर्मवाच्य की सकर्मक क्रिया यथा – रामेण पुस्तकं पठ्यते, तेन विद्यां पठ्यते।

धातुओं के दस विभाग –

1) भ्वादि, 2) अदादि, 3) जुहोत्यादि, 4) दिवादि, 5) स्वादि, 6) तुदादि, 7) रुधादि,

8) तनादि, 9) क्रयादि, 10) चुरादि ।

धातुओं के तीन भेद –

1) **सेट् धातुयें** – जिनके बीच में इट् (इ) लगता है । यथा –

भू (भव)+इ+स्यति – भविस्यति – भविष्यति, (गम्) गमिष्यति, आदि

2) **अनिट् धातुयें** – जिनमें (इ) नहीं लगता यथा

(दा) दास्यति, (जि) जेष्यति आदि ।

प्रत्ययान्त धातुयें = संस्कृत धातुओं में कुछ प्रत्यय जोड़कर अन्य अर्थों का बोध हो जाता है । प्रत्ययान्त धातुयें चार प्रकार की हैं –

1) णिजन्त – णिच् प्रत्यय में अन्त होने वाली ।

2) सन्नन्त – सन् प्रत्यय में अन्त होने वाली ।

3) यङन्त – यङ् प्रत्यय में अन्त होने वाली ।

4) नामधातु – किसी संज्ञा को धातु का रूप देकर बनाई हुई धातु ।

1) **णिजन्त धातुयें** – प्रेरणा के अर्थ में धातुओं के बाद णिच् प्रत्यय लगाया जाता है । इसका ण्, च् इत् होने से इ शेष रहता है । णिजन्त धातुओं के रूप चुरादि गण की धातुओं के समान चलते हैं । धातु और तिङ् प्रत्ययों के बीच में 'अय्' जोड़ दिया जाता है ।

धातु	**प्रेरणार्थक**
चुर् (चोरयति)	चोरयति
सु (सुनोति)	सावयति
बुध् (बोधति)	बोधयति
अद् (अति)	आदयति
तुद् (तुदति)	तोदयति
अश् (अश्नाति)	आशयति

रुध् (रुणद्धि) रोधयति

2) **सन्नन्त धातुयें** – इच्छा अर्थ में धातु के उत्तर सन् प्रत्यय लगता है ।

यथा –

गम्+सन् = जिगमिषति

पठ्+सन् = पिपठिष्यति

पृच्छ्+सन् = पिपृच्छिषति

पा+सन् = पिपासते

दृश्+सन् = दिदृक्षते

श्रु+सन् = शुश्रूषते

3. **यङ्न्त धातुयें** – क्रिया के बार–बार करने अथवा अतिशय दिखाने के लिए धातु के बाद यङ् प्रत्यय लगा देते हैं । जिससे धातु को द्वित्व हो जाता है और धातु के रूप में कुछ परिवर्तन हो जाता है । यङ् का ङ् इत् होने से य शेष रहता है । यथा –

देदीयते = खूब देता है ।

रोरुद्यते = बार–बार रोता है ।

चञ्चलयते = बार–बार चलता है ।

जेजीयते = बार–बार जीता है ।

पापच्यते = बार–बार पकाता है ।

4) **नाम धातुयें** – जब किसी सुबन्त (संज्ञा आदि) के बाद कोई प्रत्यय जोड़ कर धातु बना लेते हैं वह नाम धातु कहलाती है । नाम धातुओं के विशेष अर्थ होते हैं –

क) **क्यच्** – जिस चीज की इच्छा करे उस चीज के सूचक शब्द के बाद क्यच् प्रत्यय जाड़ा जाता है । यथा =

गङ्गा+क्यच् = गङ्गीयति – अपने लिए गंगा की इच्छा करता है ।

वधू+क्यच् = वधूयति – अपने लिए वधू (बहू) की इच्छा करता है ।

ख) **क्यङ्** – जैसा वह करता है ऐसा ही यह करता है, इस अर्थ को प्रकट करने के लिए क्यङ् (य) जोड़ दिया जाता है । यथा

कृष्ण+क्यङ = कृष्णायते – कृष्ण के समान आचरण करता है ।

अप्सरस्+ क्यङ् = अप्सरायते – अप्सरा के समान आचरण करती है ।

ग) **क्विप्** – क्यङ् की तरह ही होता है ।

कृष्ण+ क्विप् = कृष्णति – कृष्ण के समान आचरण करता है ।

घ) मुण्ड+णिच् = मुण्डयति – मूंडता है ।

ङ) लोहित+ क्यष् = लोहितायते – लाल हो जाता है ।

ꝗ ꝗ ꝗ ꝗ ꝗ ꝗ

कारक का संस्कृत वाक्य रचना में महत्त्व

1. कर्तृ कारक 2. कर्म कारक

क्रिया की सिद्धि के लिए जो निमित्त बनते हैं उन्हें कारक कहते हैं, अथवा 'कारक' के द्वारा वाक्यों में आए हुए शब्दों का क्रिया के साथ सम्बन्ध बताया जाता है और जिन चिन्हों अथवा प्रत्ययों के द्वारा यह सम्बन्ध स्पष्ट होता है वे कारकों की विभक्तियाँ कहलाती हैं । यथा – "राम घर जाता है ।" – इस वाक्य में जाने का काम 'राम' करता है, इसलिए वह कारक है, जहाँ जाया जाता है, वह घर है, इसलिए 'घर' भी कारक है ।

'क्रियान्वयित्वं कारकत्वम्' । "क्रिया के साथ अन्वय अर्थात् साक्षात् सम्बन्ध का जो सूचक हो वह कारक कहलाता है ।" छोटे से छोटे वाक्यों में दो पद अवश्य होते हैं सुबन्त और तिङ्न्त । 1) सुप् प्रत्ययों के योग से सुबन्त पद बनते हैं और 2) तिङ् प्रत्ययों के योग से तिङनत पद बनते हैं । सुबन्त (कर्तृपद) तथा तिङ्न्त (क्रियापद) । लघुतम वाक्य में क्रिया अकर्मक होगी । जब क्रिया सकर्मक होगी तब वाक्य में न्यूनातिन्यून तीन पद होंगे । एक तिङ्न्त (क्रियापद) और दो सुबन्त पद (कर्ता और कर्म) । वाक्ययोजना के अनुसार करण, सम्प्रदान आदि कारकों के द्वारा वाक्य का विस्तार और भी अधिक हो जाता है।

कारक के प्रकार – कारक आठ प्रकार के होते हैं –

1. कर्ता – ने
2. कर्म – को
3. करण – से, के द्वारा

4. सम्प्रदान – को, के लिये

5. अपादान – से (वियुक्तार्थ में)

6. सम्बन्ध – का, के, की

7. अधिकरण – में, पर

8. सम्बोधन – है, अरे, रे, भो !

किन्तु कुछ लोग 'सम्बन्ध' और सम्बोधन को कारक नहीं मानते ।

कर्त्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च ।

अपादानाधिकरणे इत्याहुः कारकाणि षट् ।।

1. कत्ता – क्रिया का जो सम्पादन करे ।

2. कम – जो क्रिया का कर्म हो ।

3. करण – क्रिया का सम्पादन जिसके द्वारा हो ।

4. सम्प्रदान – क्रिया जिसके लिए हो ।

5. अपादान – क्रिया जिससे दूर हो ।

6. अधिकरण – क्रिया जिस स्थान पर हो ।

इस प्रकार कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये छः कारक हैं ।

'कारक' वही कहलाता है जिसका क्रिया के साथ सीधा सम्बन्ध हो । 'राम के पुत्र लव ने अश्वमेध के घोड़े को पकड़ा ।' इस वाक्य में 'पकड़ने' की क्रिया लव और घोड़े से है, क्योंकि पकड़ने वाला 'लव' और पकड़ा जाने वाला 'घोड़ा' है; राम और अश्वमेध का 'पकड़ने' की क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं, अतः राम को और अश्वमेध को कारक नहीं कहेंगे । राम का सम्बन्ध लव से है ओर अश्वमेध का घोड़े से, किन्तु क्रिया के सम्पादन में इनका (राम का तथा अश्वमेध का) कोई उपयोग नहीं होता ।

'राम की कलम श्याम ने चुरा ली' – इस वाक्य में 'चुरा ली' क्रिया है । चोरी 'श्याम' ने की और 'कलम' चुराई गई । इसलिये दोनों ही क्रिया से सम्बन्ध रखने के कारण 'कारक' हैं किन्तु 'राम की' का सम्बन्ध 'कलम' से भले ही हो, क्रिया से उसका सम्बन्ध नहीं है । इसलिये वह कारक नहीं है ।

किन्तु ध्यान रहै कि 'राम की' का सम्बन्ध 'कलम' से है और कलम का 'चुरा ली' से सीधा सम्बन्ध है । इसलिये 'राम की' का सम्बन्ध क्रिया से यदि प्रत्यक्ष रूप से नहीं है, तो भी अप्रत्यक्ष रूप से तो उसका सम्बन्ध है ही । इसलिये उसे भी कारक की ही कोटि में रख लेते हैं ।

प्रत्येक कारक की कोई न कोई विभक्ति होती है । किन्तु सम्बोधन की कोई विभक्ति नहीं होती । इसलिये वह कारक नहीं है । वह तो कर्त्ता कारक का ही एक रूप है यथा

है बालक ! अत्रागच्छ ।

है बालकौ ! अत्रागच्छतम् ।

है बालकः ! अत्रागच्छत ।

फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिये इसे कारकों के समकक्ष रख लेते हैं।

इस प्रकार कारक आठ हुए ।

1) **कर्तृ कारक** – जो काम (क्रिया) करता है, उसे 'कर्त्ता' (Subject) कहते हैं । कर्तृकारक बनाने के लिए प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है । कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति का अर्थ 'ने' या किसी चिह्न के बिना बताया जाता है । क्रिया के करने वाले को कर्त्ता कहा जाता है । कर्त्ता में प्रथमा विभक्ति होती है । यथा –

1) रामः गच्छति । (राम जाता है)

2) मृगाः धावन्ति । (हरिण दौड़ते हैं)

3) बालः रोदिति । (बालक रोता है)

– कर्मवाच्य और भाववाच्य वाक्य में कर्त्ता में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। यथा – कर्मवाच्य में – राज्ञा धनं दीयते । भाववाच्य में – शिशुना रुद्यते।

जिस व्यक्ति या वस्तु के विषय में कुछ कहा जाता है उसे वाक्य का कर्त्ता कहते हैं और वह प्रथमा विभक्ति में रखा जाता है । कर्तृवाच्य प्रयोग में कर्तृकारक में प्रथमा ओर कर्मकारक में द्वितीया विभक्ति रहती है । कर्तृवाच्य में धातु तीन प्रकार का होता है – परस्मैपदी, आत्मनेपदी और उभयपदी । परस्मैपदी धातु के उत्तर परस्मैपद की विभक्ति, आत्मनेपदी धातु के उत्तर आत्मनेपद की विभक्ति और उभयपदी धातु के उत्तर दोनों पदों की विभक्ति आती है । यथा – कुम्भकारः घटं करोति; शिशुः पुस्तकं पठति इत्यादि ।

– कर्तृवाच्य में कर्त्ता की विभक्ति का जो वचन होता है, क्रियापद में भी वही वचन रहता है, अर्थात् कर्त्ता में एकवचन हो तो क्रिया में भी एकवचन, कर्त्ता में द्विवचन होने पर क्रिया में भी द्विवचन और कर्त्ता में यदि बहुवचन हो तो क्रिया में भी बहुवचन रहैगा । यथा – शिशुः पुस्तकं पठति, शिशू पुस्तकं पठतः, शिशवः पुस्तकं पठन्ति ।

– इसमें कर्त्ता के अनुसार क्रिया होती है । इसमें कर्त्ता प्रथमा विभक्ति में, कर्म द्वितीय में तथा क्रिया प्रायः लकारों में होती है । क्रिया के पुरुष और वचन कर्त्ता के अनुसार होते हैं । यथा –

रामः अश्वं पश्यति – राम घोड़े को देखता है ।

सीता अश्वं पश्यति – सीता घोड़े को देखती है ।

रामः बालकान् पश्यति – राम लड़कों को देखता है ।

बालकौ गृहं गच्छतः – दो लड़के घर को जाते हैं ।

बालिकाः गृहं गच्छन्ति – बहुत सी लड़कियाँ घर को जाती हैं ।

अहं गृहं गच्छामि – मैं घर को जाता हूँ ।

यूयं गृहं गच्छथ – तम सब घर को जाते हो ।

ऊपर दिये उदाहरणों से स्पष्ट है कि कर्त्ता के पुरुष और वचन के अनुसार क्रिया के पुरुष और वचन होते हैं । कर्त्ता के लिंग का या कर्म के पुरुष वचन या लिंग का क्रिया पर कोई प्रभाव नहीं होता ।

– जब क्रिया लकारों में न होकर क्तवतु प्रत्ययान्त होगी तो वह कर्त्ता के लिंग और वचन के अनुसार होगी, कर्त्ता के पुरुष का प्रभाव तब क्रिया पर न होगा । यथा –

सः पुस्तकं पठितवान् । सा पुस्तकं पठितवती । तौ पुस्तकं पठितवन्तौ ।

ते पुस्तकं पठितवत्यौ । अहं पुस्तकं पठितवान् । वयं पुस्तकं पठितवन्तः ।

– सम्बोधन में भी प्रथमा विभक्ति का उपयोग होता है । यथा – हे पिताः, हे भ्रातरो, बालिकाः, छात्राः आदि ।

जहाँ कर्मपद ओर क्रियापद आदि कुछ न हो केवल किसी वस्तु वा व्यक्ति के अभिज्ञान के निमित्त ही शब्द–प्रयोग किया गया हो वहाँ उस शब्द के उत्तर प्रथमा विभक्ति होती है । यथा –

वृक्षः, नदी, पुष्पम्, फलम्, सीता, लक्ष्मणः इत्यादि ।

– अव्यय शब्द के योग में प्रथमा विभक्ति होती है । यथा –

1. अयोध्यानगरे दशरथ इति ख्यातो नृपतिरासीत् ।

2) **कर्मकारक** – कर्त्ता से की हुई क्रिया का जो विषय होता है, वह कर्म है । अर्थात् जो कुछ किया जाता है, देखा जाता है, खाया जाता है, कहा जाता है, दिया जाता है, उसे कर्म कहते हैं । कर्मकारक में (कर्तृवाच्य में) द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है । कर्म में द्वितीया का अर्थ 'को' या किसी चिन्ह के बिना ही बताया जाता है । यथा –

पुस्तकं पठति – पुस्तक (को) पढ़ता है ।

पत्रं लिखति – पत्र (को) लिखता है ।

चन्द्रं पश्यति – चन्द्रमा को देखता है ।

घटं करोति – घड़े को बनाता है ।

दुग्धं पिबति – दूध पीता है ।

नृपो मृगं पश्यति – राजा हिरण को देखता है ।

सिंहः पशून् दारयति – शेर पशुओं को चीरता है ।

मोहनः पुस्तकं पठति – मोहन पुस्तक पढ़ता है ।

– इसमें कर्त्ता तृतीया विभक्ति में, कर्म प्रथमा में तथा क्रिया कर्म के पुरुष और वचन के अनुसार होती है । जैसे –

रामेण सीता दृश्यते – राम से सीता देखी जाती है ।

सीतया त्वं दृश्यसे – सीता से तू देखा जाता है ।

रामेण अश्वः दृश्यते – राम से घोड़ा देखा जाता है ।

रामेण बालकाः दृश्यन्ते – राम से लड़के देखे जाते हैं ।

बालकाभ्यां गृहं गम्यते – दो लड़कों से घर को जाया जाता है ।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि कर्मवाच्य में क्रिया कर्म के पुरुष और वचन के

अनुसार बदलती है । कर्मवाच्य में कर्त्ता मुख्य होता है और कर्म के अनुसार ही क्रिया का पुरुष, वचन और लिङ्ग होते हैं ।

– याच्, नी, प्रच्छ् आदि कुछ धातुओं के दो कर्म होते हैं । क्रिया के साथ जिसका मुख्य सम्बन्ध हो उन्हें मुख्य वा प्रधान कर्म और जिनका गौण सम्बन्ध हो उन्हें गौण सम्बन्ध हो उन्हें गौण वा अप्रधान कर्म कहते हैं । जैसे –

शिष्यो गुरुं धर्म पृच्छति ।

दरिद्रो राजानं धनं याचते ।

पिता पुत्रं गृहं नयति ।

इनमें धर्म, धन और पुत्र मुख्य वा प्रधान कर्म एवं गुरु, राजा और गृह गौण वा अप्रधान कर्म हैं ।

– जो क्रिया द्वारा कर्त्ता को अति अभीष्ट हो वह कर्मकारक होता है । कर्तृवाच्य में कर्म में द्वितीय, विभक्ति प्रयुक्त होती है और कर्मवाच्य में कर्म में प्रथमा विभक्ति का प्रयोग होता है । (द्वितीया विभक्ति का प्रयोग कुछ अव्ययों के योग में भी होता है) सन्तोषं बिना सुखं न । पन्थानमभितो वृक्षाः सन्ति ।

– कर्मवाच्य में क्रियाओं के रूप दिवादिगण की आत्मनेपदी धातुओं की तरह होते हैं यथा – पठ्यते, गम्यते, दृश्यते, पीयते, स्थीयते, क्रियते, नीयते । अन्य लकारों के रूप भी इसी तरह दिवादिगण की आत्मनेपदी धातुओं के समान बनाये जा सकते हैं।

– लङ् लकार के स्थान पर कर्मवाच्य में 'क्त' प्रत्यय का भी प्रयोग किया जाता है । लोट् लकार के स्थान में 'तव्य' और अनीय का प्रयोग होता है । ये दोनों प्रत्यय कर्मवाच्य तथा भाववाच्य की क्रियाओं में प्रयुक्त होते हैं । यथा –

क) तेन अश्वौ द्रष्टव्यौ दर्शनीयौ वा ।

ख) तेन पुस्तकं पठितव्यम् पठनीयं वा ।

कर्म के अनुसार यहाँ भी क्रिया के लिंग और वचन में परिवर्तन होता है ।

– अनु, निकषा, अन्तरा, अन्तरेण ओर यावत् शब्दों के योग में द्वितीय विभक्ति होती है। यथा –

1. रामम् अनुजातो लक्ष्मणः ।

2. ग्रामं निकषा नदी ।

3. अन्तरा त्वां मां हरिः ।

4. अन्तरेण हरिं न सुखम् । (हरि के बिना सुख नहीं है)

5. वनं यावत् अनुसरति ।

– धिक् प्रति आदि कुछ अव्यय शब्दों के योग में द्वितीया विभक्ति होती है । यथा –

1. पापिनं धिक् ।

2. कृपणं धिक् ।

3. गुरो ! मां प्रति सदयो भव ।

– क्रिया–विशेषण में द्वितीया का एकवचन होता है तथा नपुंसकलिंग के समान रूप होते हैं । यथा शीघ्रं गच्छति, मधुरं हसति ।

3. करण कारक, 4. सम्प्रदान कारक

करण कारक – कर्त्ता का क्रिया की सिद्धि में जो सहायक होता है, उसे 'करण' कहते हैं अर्थात् क्रिया–सम्प्रदान में जो प्रबल सहायक होता है उसे करण कारक कहते हैं । करण कारक में तृतीया विभक्ति होती है । करण में तृतीया का अर्थ 'के द्वारा' या 'से' से प्रकट होता है । यथा –

1. चक्षुषा पश्यति – आँख से देखता है ।

2. हस्तेन गृह्णाति – हाथ से पकड़ता है ।

3. दण्डेन ताडयति – डंडे से मारता है ।

4. मनुष्यः चरणाभ्याम् चलति – मनुष्य पैरों से चलता है ।

5. कृष्णः दन्तैः चर्वति – कृष्ण दाँतों से चबाता है ।

6. छात्रः हस्तेन लेखनीं धारयति – छात्र हाथ से कलम पकड़ता है ।

ऊपर लिखित वाक्यों में आँख, हाथ, डंडा, पैर, दाँत और कलम करण कारक हैं क्योंकि क्रिया की सिद्धि में जो कारक सबसे उत्कृष्ट उपकारक होता है उसे ही 'करण' कहते हैं। करण में तृतीया विभक्ति होती है और कर्मवाच्य या भाववाच्य के कर्त्ता

में भी तृतीया होती है। जैसे – गोपालः जलेन मुखं प्रक्षालयति – गोपाल पानी से मुँह धोता है। इस उदाहरण में धोने में 'जल' अत्यन्त सहायक है, अतः उसमें तृतीया विभक्ति है। साधारण रूप से देखें तो मुँह धोने में गोपाल अपने हाथ तथा जलपात्र दोनों की सहायता लेता है, हाथ की सहायता के बिना मुँह किस प्रकार धो सकेगा तथा जलपात्र के अभाव में जल किसमें रखेगा? अतः गोपाल मुँह धोने के लिए हाथ और जलपात्र की सहायता लेता है लेकिन मुँह धोने में अधिक आवश्यकता तो पानी की है, अतः पानी यहाँ अधिक सहायक है ।

– सह, साधर्म, साकम, अलम् इत्यादि के साथ तृतीया विभक्ति होती है।

यथा –

1. शिष्यः गुरुणा सह विद्यालयं गच्छति ।
2. रामो लक्ष्मणेन सह वनं जगाम ।
3. विवादेन अलम् ।
4. अलं हस्तिेन ।
5. केनापि सार्धं विरोधो न कर्त्तव्यः ।

– ऊन अर्थ में तृतीया विभक्ति होती है । यथा –

एकेन ऊनः, विद्ययाहीनः, अहङ्कारेण शून्यः ।

किम्, कार्यम्, अर्थः, प्रयोजनम् के साथ तृतीया विभक्ति होती है । यथा –

1. कल्हैन किम् ।
2. धनेन किम् ।
3. तृणेन अपि कार्यं भवति ।
4. कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न धार्मिकः ?
5. मूर्खाणां किं पुस्तकैः प्रयोजनम् ?

– जिस अङ्ग के विकृत होने से अङ्गी का विकार लक्षित हो उस स्थल पर तृतीया विभक्ति होती है । यथा –

1. नेत्रेण काणः

2. कर्णेन बधिरः

3. पृष्ठेन कुब्जः

4. पादेन खञ्जः

– क्रिया समाप्ति और फल प्राप्ति अर्थ में कालवाचक शब्द में भी तृतीया विभक्ति होती है । यथा –

1. तृभिः अहोभिः कृतम् ।

2. दशभिः वर्षैः अध्ययनं समाप्तम् ।

3. मासेन व्याकरणमधीतम् ।

4. क्रोशेन पुस्तकं पठितवान् ।

5. द्वादशवर्षैः व्याकरणं श्रूयते ।

– हैतु (कारण) वाची शब्द से तृतीया विभक्ति होती है

1. दण्डेन घटः – डंडे से बना घड़ा ।

2. पुण्येन दृष्टो हरिः – पुण्य के कारण भगवान् हरि के दर्शन हुए ।

3. विद्यया यशः भवति – विद्या से यश होता है ।

4. सः अध्ययनेन वसति – वह पढ़ने के लिए रहता है ।

– जो जिस प्रकार जाना जाये अर्थात् किसी विशेष अवस्था की प्राप्ति का ज्ञान कराने वाले चिन्ह में तृतीया विभक्ति होती है । यथा =

1. जटाभिः तापसः – जटाओं से तपस्वी है ।

2. स्वरेण रामभद्रमनुहरति – स्वर में राम के समान है ।

– पृथक्, बिना और नाना के योग में विकल्प से तृतीया, द्वितीया अथवा पञ्चमी होती है । यथा –

1. कौरवाः पाण्डवेभ्यः पृथगवसन् । (कौरव पाण्डवों से अलग रहते थे ।)

2. ज्ञानेन (ज्ञानं ज्ञानात् वा) विना न मुक्तिः । (ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं है ।)

3. नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा । (स्त्री के बिना लोकयात्रा या जीवन निष्फल है ।)

4. जलं जलेन, जलात् बिना नरो न जीवति । (जल के बिना मनुष्य जीता नहीं रहता है ।)

5. दशरथो रामेण, रामात्, रामं विना नाजीवत् । (राम के बिना दशरथ न जिये ।)

– दिव् धातु के साधकतम कारक की कर्मसंज्ञा होती है और (चकार से) करण संज्ञा भी होती है । यथा –

1. अक्षैः अक्षान् वा दीव्यति ।

2. पित्रा पितरं वा सञ्जानीते ।

– 'तुला' तथा 'उपमा' इन दो शब्दों को छोड़कर शेष सब तुल्य (समान बराबर) का अर्थ बताने वाले शब्दों के साथ तृतीया अथवा षष्ठी होती है । यथा

1. स देवेन देवस्य वा समानः । (वह देव के समान है ।)

2. न त्वं मया मम वा समं पराक्रमं विभर्षि । (तु मेरे समान पराक्रम नहीं रखता है ।)

3. धर्मेण धर्मस्य वा सदृशः । (धर्म के समान)

– प्रकृति आदि शब्दों में तृतीया विभक्ति होती है । यथा –

1. प्रकृत्या चारुः (स्वभाव से सुन्दर)

2. गोत्रेण गार्ग्यः (गोत्र से गार्ग्य)

3. आकृत्या सुन्दरः (आकृति से सुन्दर)

4. जात्या ब्राह्मणः (जाति से ब्राह्मण)

5. सः स्वभावेन कोमलः (वह स्वभाव से प्रिय है ।)

6. मोहनः सुखेन जीवति (मोहन सुख से रहता है ।)

7. प्रकृत्या गवां पयः मधुरम् (स्वभावतः गौओं का दूध मीठा होता है ।)

सम्प्रदान कारक – जिसे कोई वस्तु दान की जाय उसे सम्प्रदान कार कहते हैं। अर्थात् जिसे कुछ दिया जाय या जिसके लिए कुछ किया जाय उसे सम्प्रदान कहते हैं । सम्प्रदान कारक में चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है । यथा –

1. दरिद्राय धनं ददाति । (दरिद्र के लिए धन देता है ।)

2. पुत्राय भोजनं पचति । (पुत्र के लिए भोजन पकाती है ।)

3. रामाय फलं ददाति । (राम को फल देता है ।)

4. कमलायै पुस्तकं यच्छति । (कमला को पुस्तक देता है ।)

5. ब्राह्मणाय धनं ददाति । (बाह्मण को धन देता है ।)

6. मह्यं फलं देहि । (मुझे फल दो)

7. दीनेभ्यः अन्नं देहि । (दीनों के लिए अन्न दो ।)

ऊपर लिखित वाक्यों में दरिद्र, पुत्र, राम, कमला, ब्राह्मण, मुझे तथा दीन इन शब्दों में सम्प्रदान कारक है । अतः दान के कर्म के द्वारा कर्त्ता जिसे सन्तुष्ट करना चाहता है, वह पदार्थ सम्प्रदान कहलाता है । सम्प्रदान का अर्थ है 'अच्छा दान' अर्थात् जिसमें दी हुई वस्तु सर्वथा दी जाती है और दान–कर्त्ता के पास वापस नहीं आती ।

– किसी क्रिया के द्वारा कर्त्ता जिसकी ओर विशेष रूप से उन्मुख होता है उसकी भी सम्प्रदान संज्ञा होती है । यथा –

1. पत्ये शेते (पति के लिए सोती है ।)

यहाँ शयन क्रिया पति के लिए अभिप्रेत है । पति को अनुकूल करने की क्रिया द्वारा कर्त्ता का उद्देश्य पति है, अतः 'पति' सम्प्रदान हुआ ।

– निमित्त अर्थ में एवं नमस् शब्द के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा –

1. सुखाय धनोपार्जनम् । (सुख के निमित्त धनोपार्जन)

2. ज्ञानाय अध्ययनम् । (ज्ञान के निमित्त अध्ययन)

3. गुरवे नमः ।

4. पित्रे नमः ।

– रुचि, स्पृहा और प्रीति अर्थ में भी सम्प्रदान होता है । यथा –

1. हरये रोचते भक्तिः । (हरि को भक्ति अच्छी लगती है ।)

2. मोदकः शिशवे रोचते । (बच्चों को लड्डू अच्छे लगते हैं ।)

3. धनाय स्पृहयति । (धन की चाह करता है ।)

4. पुष्पेभ्यः स्पृहयति । (पुष्पों की चाह करता है ।)

5. पुत्राय चन्द्रं दर्शयति ।

– स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा और वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है। यथा –

1. नृपाय स्वस्ति । (राजा का कल्याण हो ।)

2. स्वस्ति प्रजाभ्यः । (प्रजा का कल्याण हो)

3. अग्नये स्वाहा । (अग्नि को यह आहुति है ।)

4. पितृभ्यः स्वधा । (पितरों के लिए अन्नदान, पित्रुद्देश्यक द्रव्यदान)

5. इन्द्राय वषट् । (इन्द्र के लिए हविः दान)

– हित और सुख शब्दों के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है । यथा –

1. पुत्राय हितम् । (पुत्र के लिए हित)

2. ब्राह्मणाय हितम् । (ब्राह्मण के लिए हित)

3. सुखं शिष्याय । (शिष्य के सुख के लिए)

4. ब्राह्मणाय हितं सुखं वा भवेत् ।

– जिस प्रयोजन के लिए कोई क्रिया की जाती है उसमें चतुर्थी होती है।

यथा –

1. काव्यं यशसे ।

2. भूपाय दारुः ।

3. धनाय प्रयतते । (वह धन के लिए प्रयत्न करता है ।)

4. बालः दुग्धाय क्रन्दति । (बालक दूध के लिए रोता है ।)

5. भक्तः मुक्तये हरिं भजति। (भक्त मुक्ति के लिए हरि का भजन करता है।)

– क्लृप् धातु के योग में तथा उसके संपद्, भू, जन आदि के योग में भी चतुर्थी होती है ।

1. भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते, संपद्यते, जायते । (भक्ति से ज्ञान उत्पन्न होता है अथवा भक्ति ज्ञान के लिए होती है ।)

2. धर्मः स्वर्गाय भवति ।

– प्राणियों के शुभ या अशुभ सूचक आकस्मिक भूत विकार रूप उत्पात के द्वारा ज्ञापित अर्थात् सूचित विषय के बोधक शब्द से चतुर्थी विभक्ति होती है –

1. वाताय कपिला विद्युत् । (भूरे रंग की बिजली तूफान का सूचक अर्थात् ज्ञापक है ।)

– क्रोध, द्रोह, ईर्ष्या तथा असूय अर्थ वाली धातुओं के साथ जिस पर क्रोध किया जाता है, उसमें चतुर्थी विभक्ति होती है । यथा =

1. गुरुः शिष्याय क्रुध्यति । (गुरु शिष्य पर क्रोध करता है ।)

2. शिक्षकः छात्राय कुप्यति । (अध्यापक छात्र पर क्रोध करता है ।)

3. मूर्खः पण्डिताय दुह्यति । (मूर्ख पण्डित से द्रोह करता है ।)

– निवृत्ति अर्थ में चतुर्थी विभक्ति होती है । यथा –

1. रोगाय औषधम् । (रोगनिवृत्ति कारक)

2. मशकाय धूमः । (मशक–निवृत्ति कारक)

3. आतपाय छत्रम् । (आतप–निवृत्ति कारक)

– गति अर्थ वाली धातुओं के कर्मवाचक शब्द से द्वितीया ओर चतुर्थी विभक्ति होती है, यदि वह कर्ममार्गवाची न हो और शारीरिक परिस्पन्दन (गति) रूप चेष्टा कही गई हो । यथा –

1. ग्रामं ग्रामाय वा गच्छति । (गाँव को जाता है ।)

– जब किसी वाक्य में तुमुन्नान्त धातु का अर्थ छिपा रहता है, तब उस तुमुन्नार्थक धातु का कर्म चतुर्थी में होता है । यथा –

1. फलेभ्यो याति । (फल लेने के लिए जाता है, फलानि आहर्त्तुं याति)
2. नमस्कुर्मो नृसिंहाय । (नृसिंह को अनुकूल बनाने के लिए नमस्कार करते हैं, नृसिंहमनुकूलयितुं नमस्कुर्मः)
3. वनाय गां मुमोच । (वनं गन्तुं गां मुमोच)
4. गणपतये नमस्कृत्य । (गणेश जी को प्रसन्न करने के लिए नमस्कार करके / गणपतिं प्रीणयितुं नमस्कृत्य)

– किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय जोड़ने पर जो अर्थ निकलता है, उसी को प्रकट करने के लिये उसी धातु से निष्पन्न भाववाचक संज्ञा का प्रयोग करने पर चतुर्थी विभक्ति होती है । यथा –

1. यागाय याति । (यष्टुं याति अर्थात् यज्ञ करने जाता है ।)
2. दानाय (दातुम) धनमर्जयति (दान के लिए धन कमाता है ।)
3. स्नानाय (स्नातुं) गङ्गातटं याति (स्नान के लिए गंगा तट पर जाता है ।)

5. अपादान कारक, 6. अधिकरण कारक, सम्बन्धे षष्ठी

अपादान कारक – जिससे कोई वस्तु वा व्यक्ति अलग, भीत, गृहीत अथवा उत्पन्न हो उसे अपादान कारक कहते हैं। अर्थात् जिससे किसी की पृथकता (जुदाई) का बोध हो उसे अपादान कहते हैं। जिससे डरा जाय, घृणा या लज्जा की जाय, जिससे कुछ उत्पन्न हो या जिससे कुछ लिया जाय वहाँ भी अपादान कारक होता है । अपादान कारक में पंचमी विभक्ति होती है । यथा –

1. वृक्षात् फलं पतति । (वृक्ष से फल गिरता है ।)

2. ग्रामात् आगच्छति । (गाँव से आता है ।)

3. आकाशात् पतति । (आकाश से गिरता है ।)

इन वाक्यों में वृक्ष, ग्राम और आकाश इन शब्दों में अपादान कारक है और अपादान कारक में पंचमी विभक्ति का प्रयोग होता है । यथा –

1. वृक्षातं पत्रं पतति । (वृक्ष से पत्ता गिरता है ।)

2. पापात् जुगुप्सते । (पाप से घृणा करता है ।)

3. सरोवरात् जलं गृह्णाति । (सरोवर से जल ग्रहण करता है)

4. सिंहात बिभेति । (शेर से डरता है ।)

5. गुरोः विद्यां पठति । (गुरु से विद्या ग्रहण करता है या पढ़ता है ।)

6. दुग्धात् घृतमुत्पद्यते । (दूध से घी बनता है ।)

7. श्वशुरात् लज्जते । (श्वशुर से लज्जा करती है ।)

– भय और रक्षा के अर्थ वाली धातुओं के साथ भय के कारण में पंचमी विभक्ति होती है । यथा –

1. असज्जनात् कस्य भयं न जायते ? (दुष्ट से किसको डर नहीं लगता?)

2. चौराद् बिभेति । (चोर से डरता है ।)

3. अरुणेशः बिडालान्न बिभेति । (अरुणेश बिल्ली से नहीं डरता है ।)

4. स्थूला नारी धेनोः न बिभेति । (मोटी स्त्री गौ से नहीं डरती है ।)

– परा उपसर्ग पर्वूक 'जि' धातु का प्रयोग होने पर जिस वस्तु को सहन नहीं किया जा सकता, उसमें पंचमी विभक्ति लगती है । यथा –

1. अध्ययनात् पराजयते । (पढ़ने से जी चुराता है ।)

– जन् धातु के योग में मूलकारण में पंचमी विभक्ति होती है । अर्थात् 'जन' (उत्पन्न होना) क्रिया के कर्त्ता का जो प्रधान और आदिकारण होता है । उसकी

अपादान संज्ञा होती है । यथा –

1. ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते । (ब्रह्मा जी से प्रजाएँ उत्पन्न होती हैं ।)

2. गोमयात् वृश्चिको जायते । (गोबर से बिच्छू पैदा होते हैं ।)

3. प्रजापतेः लोकः प्रजायते । (प्रजापति से संसार पैदा होता है ।)

– प्रभवति, उद्गच्छति, उद्भवति, निलीयते, प्रतियच्छति के साथ पंचमी होती है। यथा –

1. हिमालयात् गंगा प्रभवति । (हिमालय से गंगा निकलती है ।)

2. लोभात् क्रोधो प्रभवति । (लोभ से क्रोध उत्पन्न होता है ।)

3. तिलेभ्यः माषान् प्रतियच्छति । (तिलों से उड़द बदलता है ।)

4. राजपुरुषात् चौरः निलीयते । (सिपाही से चोर छिपता है ।)

5. मातुः निलीयते कृष्णः । (कृष्ण माता से छिपता है ।)

6. प्रद्युम्नः कृष्णात् प्रति । (प्रद्युम्न कृष्ण का प्रतिनिधि है ।)

– पृथक्, बिना और नाना शब्द के योग में विकल्प से पंचमी (द्वितीय या तृतीया) विभक्ति होती है । यथा –

1. रामेण, रामात् रामं वा बिनाऽयोध्या न शोभते ।

2. नाना नारीं निष्फला लोकयात्रा ।

3. विद्यां विद्यया विद्यायाः वा विना वृथा जीवनम् ।

4. पापं पापेन पापाद् वा विना दुःखं न भवति ।

5. यत्नं यत्नेन यत्नाद् वा विना किमपि न सिध्यति ।

– जिस वस्तु से किसी को हटाया जाय अर्थात् जिससे किसी को मना किया जाय या दूर किया जाय, उसमें पंचमी विभक्ति होती है । यथा –

1. गुरुः शिष्यं पापात् वारयति गुरु शिष्य को पाप से हटाता है । (पाप करने से रोकता है)

2. यवेभ्यो गां वारयति क्षेत्रे खेत में जौ से गाय को हटाता है ।

– काल और पथ का परिमाण बोध होने पर पंचमी विभक्ति होती है अर्थात् जिस स्थान या समय से किसी दूसरे स्थान की दूरी या किसी दूसरे समय का अन्तर बताया जाये, उसमें पंचमी होती है । यथा –

1. माघात् तृतीते मासि ।

2. प्रयागात् त्रिंशत् क्रोशाः ।

3. वनाद् ग्रामो योजनं योजने वा । (वन से ग्राम एक योजन है।)

4. कार्तिक्या आग्रहायणी मासे भवति । (कार्तिक पूर्णिमा से अगहण की पूर्णिमा एक मास बाद होती है ।)

– जिस गुरु या अध्यापक से नियमपूर्वक विद्या सीखी जाय, उसमें पंचमी होती है। यथा –

1. उपाध्यायात् व्याकरणं अधीते । (उपाध्याय से व्याकरण पढ़ता है।)

– प्रभृति, आरभ्य, बहिः अनन्तरं, परं और ऊर्ध्व के योग में पंचमी विभक्ति होती है । यथा –

1. शैशवात् प्रभृति पोषितां ।

2. शैशवात्प्रभृतिमया मांसन्नभुक्तम् । (बाल्यकाल से लेकर मांस नहीं खाया ।)

3. प्रथमावलोकन दिवसात् आरभ्य ।

4. विद्यालयाद्वहिः आपणः । (स्कूल के बाहर बाजार है ।)

5. ग्रामात् बहिः निक्सन् ।

6. विवाहविधेः अनन्तरं

7. असमात् परं । (इसके बाद)

8. मुहूर्तात् ऊर्ध्वं म्रिये । (क्षण भर के बाद मर जाऊँगा ।)

– अन्य, इतर, ऋते शब्द के योग में, दिशा वाचक प्राक् (पूर्व), प्रत्यक् (पश्चिम), उदीच् (उत्तर) आदि शब्दों तथा उत्तरा, दक्षिणा अथवा उत्तराहि, दक्षिणाहि आदि शब्दों के योग में

पंचमी विभक्ति होती है । यथा –

1. अरुणेशादन्यः कोऽस्ति वीरः । (अरुणेश से दूसरा कौन वीर है ।)
2. ऋते कृष्णात् (कृष्ण को छोड़कर या कृष्ण के बिना)
3. धनादृते सुखं न भवति । (धन के बिना सुख नहीं)
4. ग्रामात् पूर्वः उत्तरः वा ।
5. प्राक् प्रत्यक् वा ग्रमात् ।
6. दक्षिणा दक्षिणाहि उत्तरा उत्तराहि वा ग्रामात् ।

– दूर और समीपवाचक शब्दों में पंचमी, द्वितीया और तृतीया होती है ।

यथा –

1. वनात् आरात् । (वन के समीप)
2. नगरात् दूरात् दूरं दूरेण वा । (नगर से दूर)

– कर्म प्रवचनीय संज्ञक अप, परि और आङ् के योग में पंचमी लगती है।

यथा –

1. (अप हरेः संसारः ।) हरि को छोड़कर अन्यत्र संसार है ।
2. परि संसारात् मुक्तिः । (सांसारिकता को छोड़कर मुक्ति है ।)
3. आमुक्तेः संसारः (मुक्ति पर्यन्त यह संसार है ।)

सम्बन्धे षष्ठी = संस्कृत में सम्बन्ध को कारक नहीं माना जाता है क्योंकि इसका सम्बन्ध ा क्रिया से नहीं होता । जहां वस्तु, व्यक्ति आदि दो संज्ञायौं का सम्बन्ध पाया जाये उसे सम्बन्ध कारक कहते हैं । अर्थात् दो नाम शब्दों का परस्पर सम्बन्ध प्रकट करने के लिए षष्ठी विभक्ति का प्रयोग होता है। षष्ठी विभक्ति प्रायः संज्ञा तथा सर्वनामों के परस्पर सम्बन्ध को प्रकट करती है । स्वामी तथा भृत्य, जन्य तथा जनक,कार्य तथा कारण आदि सम्बन्ध दिखाने के लिए षष्ठी का प्रयोग होता है । यथा –

1. गंगायः जलम् – गंगा का जल ।

2. मम पुस्तकम् – मेरी पुस्तक ।

3. मोहनस्य भ्राता – मोहन का भाई ।

4. रामस्य पुत्रः – राम का पुत्र ।

5. राज्ञः पुरुषः – राजा का पुरुष ।

6. मम् हस्तः – मेरा हाथ ।

7. वृक्षस्य शाखा – वृक्ष की शाखा ।

8. नद्यः जलम् – नदी का जल ।

9. रामस्य गृहम – राम का घर ।

10. कूपस्य जलम् – कुएँ का पानी ।

– जहाँ कर्म आदि कारकों का साधारण सम्बन्ध प्रकट करना होता है अर्थात् कर्म आदि कारक की सम्बन्धमात्र विवक्षा में भी षष्ठी ही लगती है । अभिप्राय यह है कि सम्बन्धमात्र ही दिखाना हो तो कर्म आदि कारकों में भी षष्ठी विभक्ति होती है । यथा –

1. मातुः स्मरति – माता सम्बन्धि स्मरण करता है ।

2. सतां गतम् – सज्जन सम्बन्धि गमन ।

3. सर्पिषो जानीते – घी के बारे में जानकर प्रवृत्त होता है ।

4. फलानां तृप्तः – फल सम्बन्धि तृप्ति का आश्रय ।

5. भजे शम्भोः चरणयोः – शम्भु के चरणों को भजता हूँ ।

– हैतु शब्द के साथ षष्ठी विभक्ति लगती है । यथा =

1. अन्नस्य हेतोर्वसति – अन्न के कारण निवास करता है ।

2. अध्ययनस्य हेतोर्वसति – अध्ययन के कारण निवास करता है ।

किन्तु जब 'हेतु' शब्द के साथ किसी सर्वनाम का प्रयोग हो तो सर्वनाम शब्द और 'हेतु' शब्द दोनों में तृतीया, पंचमी और षष्ठी में से कोई भी विभक्ति लग सकती है । यथा –

1. केन हेतुना वसति या कस्य हैतोः वसति किसी कारण से निवास करता है या किस लिए रहता है ।

– आशीर्वाद अर्थ में कुशल आदि शब्दों में षष्ठी और चतुर्थी दोनों ही हाती हैं। यथा –

1. नृपस्य नृपाय वा भद्रं, कुशलं वा भूयात् ।
2. कुशलं देवदत्तस्य भूयात् ।
3. सुखं देवदत्तस्य भूयात् ।

– सम, तुल्य, समान, सदृश आदि शब्दों के योग में तृतीया एवं षष्ठी विभक्तियाँ होती हैं । यथा –

1. विद्यया विद्यायाः वा सम धनं नास्ति ।
2. विनयेन विनस्य वा तुल्यो गुणो नास्ति ।

– निमित्त अर्थ वाले शब्दों (निमित्त, कारण, प्रयोजन, हेतु) के साथ प्रायः सभी विभक्तियों का प्रयोग किया जा सकता है । यथा –

1. किं निमित्तं वसति
2. केन निमित्तेन
3. कस्मै निमित्ताय
4. कस्मात् प्रयोजनात्
5. केन कारणेन ?
6. कस्य हेतोः ।

– कृत् प्रत्यय के प्रयोग में कर्त्ता ओर कर्म में षष्ठी विभक्ति होती है। यथा –

1. शिशोः शयनम्
2. अश्वस्य गतिः
3. अन्नस्य पाकः

– 'वि' तथा 'अव' उपसर्गपूर्वक एक ही अर्थ वाली 'हृ' तथा 'पण' धातुओं के कर्म

में षष्ठी होती है । यथा –

1. शतस्य व्यवहरणं पणनं वा । (सौ की बिक्री या जुआ)

2. प्राणानां अपनिष्ट असौ । (उसने तो प्राणों की बाजी लगा दी।)

– अधिपूर्वक 'इ' (स्मरण करना), दय् (दया करना), ईश् (समर्थ होना तथा अर्थों वाली अन्य धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है । यथा –

1. सः मातुः स्मरति वा ।

2. रामस्य दयमानः सः ।

3. स दरिद्रस्य दयते ।

अधिकरण कारक – क्रिया के आधार को अधिकरण कहते हैं । जहाँ पर या जिसमें वह कार्य किया जाता है वह अधिकरण है । अधिकरण कारक में सप्तमी विभक्ति होती है । यथा =

1. वृक्षेषु खगाः वसन्ति – वृक्षों पर पक्षी रहते हैं ।

2. वने सिंहः गर्जति । – वन में शेर गर्जता है ।

3. वने मृगः धावन्ति – जंगल में हरिण दौड़ते हैं ।

4. गुहायां वसति मुनिः – मुनि गुफा में रहता है ।

5. पात्रे जलम् अस्ति – बर्तन में पानी है ।

6. आसने शोभते गुरुः– गुरु आसन पर शोभा देता है ।

क्रिया के आधार को अधिकरण कहते हैं और अधिकरण के चार भेद हैं एकदेश, विषय, व्यापकता और नैकट्य । यथा –

1. वने वसति – वन के एकदेश में

2. शय्यायां शेते – शय्या के एकदेश में

3. जले इच्छा – जल के विषय में

4. मोक्षे इच्छा अस्ति – मोक्ष के विषय में

5. विद्यायामनुरागः – विद्या के विषय में

6. दुग्धे माधुर्यमस्ति – दुग्ध के समस्त अवयव में (माधुर्य की) व्यापकता

7. तिलेषु तैलं अस्ति – तिलों में व्यापकता

8. गङ्गायां निवसति – गङ्गा के समीप (निकट) में

– जिस फल की प्राप्ति के लिए कोई क्रिया की जाती है, वह फल यदि उस क्रिया के कर्म से युक्त होतो उसमें सप्तमी विभक्ति होती है । यथा –

1. दन्तयोः हन्ति कुञ्जरम् – दाँतों के लिए हाथी को मारता है ।

2. सीम्नि पुष्कलको हतः – कस्तूरी के लिये गन्धमृग को मारा जाता है ।

3. चर्मणि द्वीपिनं हन्ति – चमड़े के लिये गैंडे को मारता है।

4. केशेषु चमरीं हन्ति – केशों के लिए चमरी मृग को मारता है ।

– जिसकी क्रिया से कोई दूसरी क्रिया लक्षित होती है उसमें सप्तमी विभक्ति होती है या किसी क्रिया के काल द्वारा अन्य क्रिया का काल निरूपित होने पर सप्तमी विभक्ति होती है अर्थात् जब किसी काम के होने पर किसी दूसरे काम का होना या किया जाना प्राप्त हो, तो जो कार्य हो चुकता है उसमें सप्तमी विभक्ति लगती है । यथा –

1. गोषु दुह्यमानासु सः गृहं गतः – गायों के दुहे जाने पर वह घर गया।

2. रामे वनं गते दशरथः प्राणाान् तत्याज – राम के वन जाने पर दशरथ ने प्राण त्याग दिए ।

3. रजन्यां प्रभातायां स प्रस्थितः ।

4. रवौ अस्तं गते आगतः ।

5. सूर्ये उदिते कमलं प्रकाशते – सूर्य के उदित होने पर कमल खिलता है।

6. सर्वेषु शयानेषु विमला रोदिति – सबके सो जाने पर विमला रोती है ।

– प्रशंसार्थक साधु और असाधु शब्दों के योग में सप्तमी होती है। यथा –

1. व्याकरणे साधुः

2. मातरि साधुर्निपुणो वा – माता के प्रति हितकारी

3. असाधुः मातुले ।

– जिसका अनादर करके कोई कार्य किया जाता है उसमें सप्तमी होती है । यथा –

1. रुदतः पुत्रस्य रुदति पुत्रे वा सः प्राव्राजात् – रोते हुए पुत्र की परवाह न करके वह संन्यासी बन गया ।

– स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षिन्, प्रतिभू और प्रसूत इन सात शब्दों के योग में षष्ठी और सप्तमी विभक्ति होती है । यथा =

1. गवां गोषु वा स्वामी – (गायों के स्वामी)

2. गवां गोषु वा प्रसूताः – गायों के लिए उत्पन्न

3. गवां गोषु वा ईश्वरः ।

4. गवां गोषु वा अधिपतिः ।

5. गवां गोषु वा दायादः ।

– जाति, गुण, क्रिया, संज्ञा आदि की दृष्टि से यदि किसी समुदाय में से किसी एक का वैशिष्ट्य बतलाना हो तो षष्ठी और सप्तमी दोनों का प्रयोग हो सकता है। यथा –

1. पर्वतानां पर्वतेषु वा हिमालयः श्रेष्ठः ।

2. कवीनां कविषु वा कालिदासः श्रेष्ठः ।

3. नदीनां नदीषु वा गंगा पूज्या ।

– नक्षत्रवाची शब्दों के योग में विकल्प से तृतीया या सप्तमी विभक्तियाँ लगती हैं । यथा –

1. पुष्येण पुष्ये वा कार्यभारमेत ।

2. मूलेन मूले वा देवीं आवाहयेत् ।

3. श्रवणेन श्रवणे वा विसर्जयेत् ।

– अधिक शब्द के योग में भी विकल्प से पंचमी या सप्तमी विभक्ति होती है। यथा –

1. लोके लोकाद्वा अधिको हरिः ।

– विश्वास अर्थबोधक शब्दों के योग में जिस पर विश्वास किया जाए उसमें सप्तमी विभक्ति लगती है । यथा –

1. सः मयि विश्वसति ।

– 'विषय में', 'बारे में', 'अर्थ में' तथा समय–बोधक शब्दों में सप्तमी विभक्ति होती है। यथा –

1. मोक्षे इच्छास्ति ।
2. दिने प्रातःकाले मध्याह्ने, सायंकाले कार्य करोति ।
3. शैशवे
4. यौवने
5. वार्धके (समय में)

g g g g g g

B.A. - 1st Semester	Paper - SANSKRIT
Unit - IV (भाग–क)	**Lesson No. 15**

पुल्लिग, नपुंसकलिंग, स्त्रीलिंग
शब्दों की रूपावली (भाग–क)

रूपरेखा

15.1 उद्देश्य

15.2 पाठ परिचय

15.3 मूल पाठः संस्कृत शब्दों की रूपावली

12.3.1 आधार पाठ

12.3.2 लक्ष्य पाठ

15.4 राम, हरि, गुरु, पितृ संस्कृत के पुल्लिग शब्दों की रूपावली

12.4.1 ''राम'' शब्द की रूपावली – (पु0 लिं0, अकारान्त)

12.4.2 ''हरि'' शब्द की रूपावली – (पु0 लि0, इकारान्त)

12.4.3 ''गुरु'' शब्द की रूपावली – (पु0 लिं0, उकारान्त)

12.4.4 ''पितृ'' शब्द की रूपावली – (पु0 लिं0, ऋकारान्त)

15.5 फल, वारि, मधु संस्कृत के नपुंसक लिङ्ग शब्दों की रूपावली

15.5.1 ''फल'' शब्द की रूपावली (अकारान्त) नपु0 लिं0

15.5.2 ''वारि'' शब्द की रूपावली (इकारान्त) नपु0 लिं0

15.5.3 ''मधु'' शब्द की रूपावली – (उकारान्त) नपु0 लिं0

15.6 लता, मति, नदी, धेनु, मातृ संस्कृत के

स्त्रीलिङ्ग शब्दों की रूपावली

15.6.1 ''लता'' शब्द की रूपावली (आकारान्त) स्त्री0 लिं0

15.6.2 ''मति'' शब्द की रूपावली – (इकारान्त) स्त्री0 लिं0

15.6.3 ''नदी'' शब्द की रूपावली (ईकारान्त) स्त्री0 लिं0

15.6.4 ''धेनु'' शब्द की रूपावली (उकारान्त) स्त्री0 लिं0

15.6.5 ''मातृ'' शब्द की रूपावली – (ऋकारान्त) स्त्री0 लिं0

15.7 सारांश

15.8 परीक्षार्थ प्रश्नों के नमूने

15.9 प्रश्नों के उत्तर

15.10 उपयोगी पुस्तकें

15.11 अभ्यास कार्य

15.1 उद्देश्य

इस पाठ को हृदयंगम करने के पश्चात् इस प्रकार की क्षमता प्राप्त हो सकेगी –

संस्कृत भाषा को समझने, पढ़ने और लिखने में क्षमता।

संस्कृत पद्य अथवा गद्य में प्रयुक्त शब्दों का अर्थ समझने की योग्यता।

संस्कृत भाषा में दूसरी ाषाओं का अनुवाद करने के लिये शब्द प्रयोग की कुशलता।

संस्कृत भाषा की त्रिलिङ्गता, त्रिवचनता और कर्त्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, सम्बन्ध, अधिकरण एवं सम्बोधन में प्रयुक्त होने वाले शब्दों के विविध रूप जानने की दक्षता।

विविध प्रकार के शब्दों की पहचान और उनके रूप बनाने की विधि व प्रक्रिया का नियम ज्ञान।

पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग शब्दों का ज्ञान और उनके विविध रूपों की

बनावट जानने की क्षमता आदि।

15.2 पाठ परिचय

संस्कृत भाषा में प्रमुख रूप से चार प्रकार के शब्द हैं नाम, धातु, उपसर्ग और निपात। संस्कृत भाषा को समझने, बोलने और लिखने के लिये इनका ज्ञान अत्यावश्यक होता है। प्रस्तुत पाठ में केवल नाम (शब्द) विषयक जानकारी दी गई है, जो तीन प्रकार के होते हैं पुल्लिग, स्त्रीलिंग, और नपुंसकलिंग। हिन्दी ाषादि की अपेक्षा इसमें तीन वचनएकवचन, द्विवचन तथा बहुवचन होते हैं। प्रस्तुत पाठ में केवल कुछ शब्दों (नामों) के सामान्य रूप दिखाये जायेंगे, जो बी. ए. प्रथम सत्र के पाठ्यक्रम (Syllabus) में परीक्षार्थ निर्धारित हैं। विशेष रूप रचना की जानकारी के लिये ''लघुसिद्धान्त कौमुदी'' आदि व्याकरण शास्त्र पठनीय हैं।

15.3 मूल पाठ : संस्कृत शब्दों की रूपावली

संस्कृत भाषा में शब्दों का अनन्त ण्डार है। इनकी रूप रचना ी िन्न–िन्न प्रकार की होती है। सुविधा के लिये इनको तीन लिङ्गों एवं वचनों में वि ाजित किया गया है। पाठ्य–क्रम में निर्धारित **पुल्लिंग** शब्द **''राम''** अपने जैसे ''अकारान्त'' शब्दों का प्रतिनिधि ात्व करता है, जिसका रूप स्मरण कर लेने से उस जैसे अन्य ''अकारान्त'' (अकार जिसके अन्त में हो, जैसे शाम = श् + आ + म् + अ) शब्दों के रूप समझने, लिखने अथवा बनाने में सुविधा हो जाती है। कुछ अकारान्त पुल्लिग शब्द इस प्रकार हैं नर, बाल, पुत्र, जनक, नृप, प्राज्ञ, सान, दुर्जन, खल, शिष्य, सूर्य, चन्द्र, खग, कर, पिक, वानर, गज, मयूर, अनल, अनिल, नक्र, उपहार, वंश, प्रश्न, लोक, धर्मादि। इसी प्रकार पुल्लिग **''हरि''** शब्द अपने जैसे पुल्लिग ''इकारान्त'' शब्दों का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे कवि, मुनि, विधि, निधि, गिरि, अरि, यति, नृपति, अग्नि, असि, अतिथि, कपि, व्याधि ा, रश्मि, सेनापति आदि। इसी प्रकार **''गुरु''** शब्द अपने जैसे पुल्लिग ''उकारान्त'' शब्दों का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे ानु, शम्ु, विषु, विधु, मृत्यु, मृदु, साधु, वायु, पषु, तरु, शत्रु, प्रु, बाहु, पांषु, कृषानु, बिन्दु, इशु, परषु आदि। **''पितृ''** शब्द पुल्लिग ''ऋकारान्त'' शब्दों का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे ्ातृ, देवृ, जामातृ, मातृ, नृ आदि।

नपुंसकलिंग ''फल'' शब्द अपने जैसे ''अकारान्त'' नपुंसकलिंग शब्दों के रूप बनाने का आधार प्रस्तुत करता है, जैसे रत्न, विश, तत्त्व, जलज, नेत्र, मित्र, कुसुम, उद्यान, नयन, ोजन, पुष्प, वचन, आकाश, दुःख, सुख आदि। **''वारि''** अपने जैसे ''इकारान्त'' नपुंसकलिंग शब्दों के रूप बनाने में सहायक है, जैसे अक्षि, अस्थि, सक्थि आदि। इसी प्रकार **''मधु''** शब्द अपने जैसे ''उकारान्त'' नपुंसकलिंग शब्दों की रचना में सहकारी है, जैसे वस्तु, अश्रु, जानु, तालु, दारु, वसु, अम्बु, सानु, जतु आदि।

स्त्रीलिंग ''लता'' अपने जैसे अन्य ''आकारान्त'' स्त्रीलिंग शब्दों का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे – रमा, बाला, छात्रा, कमला, कथा, पाठशाला, कन्या, वसुधा, सुधा, अजा, प्र ा, कान्ता, श्रद्धा, निष्ठा, व्यथा आदि। **''मति''** शब्द अपने जैसे अन्य ''इकारान्त'' स्त्रीलिंग शब्दों के रूप बनाने में सहायक है, जैसे गति, श्रुति, स्मृति, ूमि, ओषधि, पंक्ति, धूलि, प्रीति, श्रेणि, अङ्गुलि, शान्ति, प्रकृति, नियति आदि।

''नदी'' शब्द अपने जैसे अन्य ''ईकारान्त'' स्त्रीलिंग शब्दों का प्रतिनिधित्व करता है, जैसे गौरी, कुमारी, नारी, सखी, पुत्री, रजनी, महिषी, प्राची, प्रतीची, कौमुदी, मृगी, सिंही, नगरी, वापी, श्रीमती, दासी, काशी आदि।

''धेनु'' शब्द अपने जैसे ''उकारान्त'' स्त्रीलिंग शब्दों की रूप रचना में आधार प्रस्तुत करता है, जैसे रेणु, चञ्चु, तनु, उडु, रज्जु, हनु आदि। इसी प्रकार **''मातृ''** शब्द अपने जैसे अन्य ''ऋकारान्त'' स्त्रीलिंग शब्दों की रूप रचना में सहायक है ।

15.3.1 आधार पाठ

संस्कृत ाषा के कोटि–कोटि शब्दों और उनके त्रिविध लिङ्गों एवं त्रिविध वचनों को स्मरण रखना असम्‍ व लगता है। परन्तु प्रस्तुत पाठ्यक्रम के माध्यम से उनको यथासम्‍ व सरलरूप से समझने, लिखने अथवा बोलने का आधार प्रदान किया गया है। यहाँ पर राम, हरि, गुरु, पितृ शब्द संस्कृत भाषा में प्रयुक्त होने वाले क्रमशः अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त और ऋकारान्त पुल्लिग शब्दों का आधार प्रस्तुत करते हैं, वहीं फल, वारि, मधु शब्द क्रमशः अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त नपुंसकलिंग शब्दों का आधार बनते हैं। इसी प्रकार लता, मति, नदी, धेनु और मातृ शब्द क्रमशः आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त स्त्रीलिंग शब्दों का आधार बनते हैं, जिनसे उन जैसे अन्य शब्दों के रूप निर्माण में मदद मिलती है।

15.3.2 लक्ष्य पाठ

निर्धारित पाठ्यक्रम के अन्तर्गत इस पाठ का लक्ष्य विद्यार्थियों को संस्कृत ाषा के शब्द समूह में से विशेष शब्द चयन करके उनके तीनों लिङ्गों एवं तीनों वचनों में बनने वाले कारक वि क्तियों के रूपों से परिचित करवाना है, ताकि वे इन जैसे मिलते जुलते लिङ्ग एवं वचन रूपों को स्वयं बनाने, समझने, बोलने अथवा लिखने में समर्थ हो सकें। फलतः संस्कृत ाषा को सरल रूप से जानने में सक्षम एवं सिद्धहस्त हो सकें।

15.4 संस्कृत ाषा के पुल्लिग – राम, हरि, गुरु, पितृ शब्दों की रूपावली

जैसा कि बहुशः कहा गया है कि संस्कृत ाषा के सम्यक् ज्ञान एवं प्रयोग के लिये

प्रयुक्त होने वाले पुल्लिंग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसकलिङ्ग शब्दों के विविध रूपों तथा तीनों वचनों में होने वाले परिवर्तनों, जोकि कारक वि क्तियों के कारण होते हैं, समझना आवश्यक है, अतः प्रस्तुत प्रसङ्ग में उनके अकारान्त, इकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त पुल्लिंग शब्दों की रूपावली का ज्ञान करवाया जा रहा है –

15.4.1 पुल्लिंग ''राम'' शब्द की रूपावली (अकारान्त)

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	रामः	रामौः	रामाः
कर्म	द्वितीया	रामम्	रामौ	रामान्
करण	तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः
सम्प्रदान	चतुर्थी	रामाय	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
अपादान	पञ्चमी	रामात्	रामाभ्याम्	रामेभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	रामस्य	रामयोः	रामाणाम्
अधिकरण	सप्तमी	रामे	रामयोः	रामेषु
सम्बोधन	अष्टमी	हे राम!	हे रामौ!	हे रामाः!

15.4.2 पुल्लिंग ''हरि'' शब्द की रूपावली (इकारान्त)

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
कर्म	द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
करण	तृतीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरि ः
सम्प्रदान	चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
अपादान	पञ्चमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
अधिकरण	सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु
सम्बोधन	अष्टमी	हे हरे!	हे हरी!	हे हरयः!

15.4.3 पुल्लिग ''गुरु'' शब्द की रूपावली (उकारान्त)

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	गुरुः	गुरू	गुरवः
कर्म	द्वितीया	गुरुम्	गुरू	गुरून्
करण	तृतीया	गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुि :
सम्प्रदान	चतुर्थी	गुरवे	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
अपादान	पञ्चमी	गुरोः	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	गुरोः	गुर्वोः	गुरूणाम्
अधिकरण	सप्तमी	गुरौ	गुर्वोः	गुरुषु
सम्बोधन	अष्टमी	हे गुरो!	हे गुरू!	हे गुरवः!

15.4.4 पुल्लिग ''पितृ'' शब्द की रूपावली (ऋकारान्त)

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	पिता	पितरौ	पितरः
कर्म	द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितर्नि
करण	तृतीया	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृि :
सम्प्रदान	चतुर्थी	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
अपादान	पञ्चमी	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	पितुः	पित्रोः	पितर्णाम्
अधिकरण	सप्तमी	पितरि	पित्रोः	पितृषु
सम्बोधन	अश्टमी	हे पितः!	हे पितरौ!	हे पितरः!

15.5 संस्कृत ाषा के नपुंसकलिंग फल वारि और मधुशब्दों की रूपावली

संस्कृत ाषा के तीन लिङ्गों में नपुंसकलिंग शब्द देखने में पुल्लिग जैसे लगते हैं और इससे विद्यार्थियों को ान्ति हो सकती है कि इनके रूप ी पुल्लिग शब्दों की तरह चलते होंगे। परन्तु ऐसी बात नहीं है। संस्कृत भाषा में जैसे तीनों लिंग निश्चित् हैं, उसी प्रकार उनकी रूपावली में ी अन्तर होता है। इसीलिये बी. ए. प्रथम सत्र के पाठ्यक्रम में अकारान्त, इकारान्त और उकारान्त शब्दों के प्रतिनिधित्व के रूप में क्रमशः

फल, वारि और मधु नपुंसकलिङ्ग शब्दों का चयन किया गया है, जिनकी रूपावली इस प्रकार है

15.5.1 नपुंसकलिंग ''फल'' शब्द की रूपावली (अकारान्त)

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	फलम्	फले	फलानि
कर्म	द्वितीया	फलम्	फले	फलानि
करण	तृतीया	फलेन	फलाभ्याम्	फलैः
सम्प्रदान	चतुर्थी	फलाय	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
अपादान	पञ्चमी	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	फलस्य	फलयोः	फलानाम्
अधिकरण	सप्तमी	फले	फलयोः	फलेषु
सम्बोधन	अष्टमी	हे फल!	हे फले!	हे फलानि!

15.5.2 नपुंसकलिंग ''वारि'' शब्द की रूपावली (इकारान्त)

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	वारि	वारिणी	वारीणि
कर्म	द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि
करण	तृतीया	वारिणा	वारिभ्याम्	वारि ः
सम्प्रदान	चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
अपादान	पञ्चमी	वारिणः	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्
अधिकरण	सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु
सम्बोधन	अष्टमी	हे वारि(वारे)!	हे वारिणी!	हे वारीणि!

15.5.3 नपुंसकलिंग ''मधु'' शब्द की रूपावली (उकारान्त)

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	मधु	मधुनी	मधूनि
कर्म	द्वितीया	मधु	मधुनी	मधूनि
करण	तृतीया	मधुना	मधुभ्याम्	मधु ि:
सम्प्रदान	चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
अपादान	पञ्चमी	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	मधुनः	मधुनोः	मधूनाम्
अधिकरण	सप्तमी	मधुनि	मधुनोः	मधुषु
सम्बोधन	अश्टमी	हे मधो!	हे मधु!	हे मधुनी!

15.6 संस्कृत ाषा के स्त्रीलिङ्ग – लता, मति, नदी, धेनु, मातृ–शब्दों की रूपावली

संस्कृत भाषा में स्त्रीलिङ्ग शब्दों की अपनी पहचान है और लघुसिद्धान्त कौमुदी आदि व्याकरण के ग्रन्थों में इनकी पहचान के नियम ी बतलाये गये हैं। ाषा अनुवाद अथवा गद्य–पद्यादि में लिखित रचनाओं में पुल्लिग, नपुंसकलिंग शब्द के प्रयोग मिलने की तरह स्त्रीलिंग शब्दों का ी बराबर प्रयोग मिलता है। इसलिये, संस्कृत ाषा की किसी ी प्रकार की रचना को पढ़ने अथवा कुछ ी संस्कृत में लिखने अथवा बोलने के लिये स्त्रीलिंग शब्दों की पहचान के साथ–साथ उनके रूप जानने की ी अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसीलिये पाठ्यक्रम में कुछ आकारान्त, इकारान्त, ईकारान्त, उकारान्त, ऋकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों क्रमशः, लता, मति, नदी, धेनु, मातृके रूप निर्धारित किये गये हैं। इनकी रूपावली इस प्रकार है –

15.6.1 स्त्रीलिङ्ग ''लता'' शब्द की रूपावली (आकारान्त)

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	लता	लते	लताः
कर्म	द्वितीया	लताम्	लते	लताः
करण	तृतीया	लतया	लताभ्याम्	लताभिः

सम्प्रदान	चतुर्थी	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः
अपादान	पञ्चमी	लतायाः	लताभ्याम्	लताभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	लतायाः	लतयोः	लतानाम्
अधिकरण	सप्तमी	लतायाम्	लतयोः	लतासु
सम्बोधन	अष्टमी	हे लते!	हे लते!	हे लताः!

15.6.2 स्त्रीलिङ्ग ''मति'' शब्द की रूपावली (इकारान्त)

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	मतिः	मती	मतयः
कर्म	द्वितीया	मतिम्	मती	मतीः
करण	तृतीया	मत्या	मतिभ्याम्	मति :
सम्प्रदान	चतुर्थी	मत्यै, मतये	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
अपादान	पञ्चमी	मत्याः, मतेः	मतिभ्याम्	मतिभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	मत्याः, मतेः	मत्योः	मतीनाम्
अधिकरण	सप्तमी	मत्याम्, मतौ	मत्योः	मतिषु
सम्बोधन	अष्टमी	हे मते!	हे मती!	हे मतयः!

15.6.3 स्त्रीलिङ्ग ''नदी'' शब्द की रूपावली (ईकारान्त)

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	नदी	नद्यौ	नद्यः
कर्म	द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
करण	तृतीया	नद्या	नदीभ्याम्	नदी :
सम्प्रदान	चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
अपादान	पञ्चमी	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
अधिकरण	सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु
सम्बोधन	अष्टमी	हे नदि!	हे नद्यौ!	हे नद्यः!

15.6.4 स्त्रीलिङ्ग ''धेनु'' शब्द की रूपावली

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	धेनुः	धेनू	धेनवः
कर्म	द्वितीया	धेनुम्	धेनू	धेनूः
करण	तृतीया	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनु ि:
सम्प्रदान	चतुर्थी	धेन्वै, धेनवे	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
अपादान	पञ्चमी	धेन्वाः, धेनोः	धेनुभ्याम्	धेनुभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	धेन्वाः, धेनोः	धेन्वोः	धेनूनाम्
अधिकरण	सप्तमी	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु
सम्बोधन	अष्टमी	हे धेनो!	हे धेनू!	हे धेनवः!

15.6.5 स्त्रीलिङ्ग ''मातृ'' शब्द की रूपावली

कारक	वि क्ति	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
कर्ता	प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
कर्म	द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातः
करण	तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृ ि:
सम्प्रदान	चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
अपादान	पञ्चमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातणाम्
अधिकरण	सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
सम्बोधन	अष्टमी	हे मातः!	हे मातरौ!	हे मातरः!

सारांश

यद्यपि संस्कृत भाषा एक समुद्र की तरह है अपने विशाल साहित्य और अनन्त शब्द

ण्डार के कारण। परन्तु यदि हमें इसके शब्द (नाम), धातु, उपसर्ग और निपातों के विशेष रूपों एवं संरचना विषयक सामान्य नियमों का सम्यक् बोध हो, तो इसके सागर को गागर में बाँधा जा सकता है। पुल्लिग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग संस्कृत–शब्दों के कुछ विशेष चुने हुये एवं पाठ्यक्रम में निर्धारित जो रूप दिये गये हैं और साथ ही उनके बनने के रूपों को स्मरण करने से उन जैसे अन्य समान लिङ्ग एवं शब्दान्तों के जो उदाहरण ी दिये हैं, वे उस–उस लिङ्ग के अनन्त रूपों को बनाने, लिखने अथवा भाषा में लिखितों को समझने में अत्यन्त सहायक हैं। अतएव इनको स्मरण करना और सम्यक् समझ लेना, संस्कृत शब्दों के विपुल ण्डार को सहजतया बोधगम्य करने में कौशल्य प्रदान करता है। जैसे–पुल्लिग अकारान्त ''राम'' शब्द का रूप अपने जैसे पुल्लिग और अकारान्त शब्दोंनर, बाल, पुत्र, नृप, जनकादि के रूपों को बनाने, समझने आदि में सर्वथा सक्षम है। इसी प्रकार, अन्य लिङ्गों के शब्दों के रूप बनाने का ी समान ही नियम है अर्थात् उन जैसे अन्य शब्दों को उनके समान ही बनाया जा सकता है।

15.8 परीक्षार्थ प्रश्नों के नमूने

परीक्षा में किसी ी लिङ्ग अथवा लिङ्गों का एक अथवा अनेक रूप, किसी एक वि क्ति विशेष के वचन विशेष अथवा स ी वि क्तियों एवं वचनों में पूछा जा सकता है। इसलिये पाठ्यक्रम में निर्धारित स ी शब्दों के रूप, स ी वि क्तियों व वचनों में स्मरण कर लेने चाहिये। कुछ इने–गिने रूप अथवा चयनित अध्ययन (Selective Study) नहीं करना चाहिये। क्योंकि, स ी शब्दों का स्मरण न केवल परीक्षार्थ ही ला दायक रहेगा, अपितु संस्कृत भाषा के ज्ञान के लिये ी अत्यन्त सहायक रहेगा। कुछ नमूने परीक्षा हेतु इस प्रकार हैं

(क) निम्नलिखित शब्दों के यथानिर्देश लिङ्ग एवं वचन अनुसार वि क्तिरूप लिखिये?

राम (पु. लिं, सम्बोधन), गुरु (पु. लिं, तृतीया), वारि (नपुं. लिं., षष्ठी), लता (स्त्री लिं. , चतुर्थी), मति (स्त्री. लिं., सप्तमी), मधु (नपुं. लिं., पञ्चमी), मातश (स्त्री. लिं., द्वितीया), फल (नपुं. लिं., प्रथमा)?

(ख) निम्नलिखित शब्दों के यथानिर्दिष्ट रूप लिखिये :

हरि (प्रथमा), पितृ (द्वितीया), राम (तृतीया), मधु (चतुर्थी), फल (पञ्चमी), नदी (षष्ठी), धेनु (सप्तमी), मातृ (अष्टमी)?

(ग) निम्नलिखित शब्दों की द्वितीया, चतुर्थी और सप्तमी वि क्ति स ी वचनों में लिखिये?

नदी, गुरु, वारि

(घ) निम्नलिखित शब्दों के रूप लिखिये ?

मातृ, गुरु

(ङ) किसी एक इकारान्त पुल्लिग शब्द के स ी रूप लिखिये ?

अथवा

आकारान्त स्त्रीलिंग शब्द के प्रथमा वि क्ति के द्विवचन, चतुर्थी के बहुवचन और षष्ठी के एकवचन को लिखिये ?

15.9 प्रश्नों के उत्तर

(क) **''राम''**

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
सम्बोधन	हे राम!	हे रामौ!	हे रामाः!

''गुरु''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
तृतीया	गुरुणा	गुरु भ्याम्	गुरुि ः

''वारि''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
षष्ठी	वारिणः	वारिणोः	वारीणाम्

''लता''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
चतुर्थी	लतायै	लताभ्याम्	लताभ्यः

''मति''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
सप्तमी	मत्याम्, मतौ!	मत्योः	मतिषु

''मधु''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
पञ्चमी	मधुनः	मधुभ्याम्	मधुभ्यः

''मातृ''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातृ

''फल''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
प्रथमा	फलम्	फले	फलानि

(ख) ''हरि''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः

''पितृ''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
द्वितीया	पितरम्	पितरौ	पितृन्

''राम''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
तृतीया	रामेण	रामाभ्याम्	रामैः

''मधु''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
चतुर्थी	मधुने	मधुभ्याम्	मधुभ्यः

''फल''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन

पञ्चमी	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्यः

''नदी''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
षष्ठी	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्

''धेनु''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
सप्तमी	धेन्वाम्, धेनौ	धेन्वोः	धेनुषु

''मातृ''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
अष्टमी	हे मातः!	हे मातरौ!	हे मातरः!

(ग) ''नदी''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
द्वितीया	नदीम्	नद्यौ	नदीः
चतुर्थी	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
सप्तमी	नद्याम्	नद्योः	नदीषु

''गुरु''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
द्वितीया	गुरुम्	गुरू	गुरून्
चतुर्थी	गुरवे	गुरुभ्याम्	गुरु भ्यः
सप्तमी	गुरौ	गुर्वोः	गुरुषु

''वारि''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
द्वितीया	वारि	वारिणी	वारीणि

चतुर्थी	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्यः
सप्तमी	वारिणि	वारिणोः	वारिषु

(घ) ''मातृ''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
प्रथमा	माता	मातरौ	मातरः
द्वितीया	मातरम्	मातरौ	मातः
तृतीया	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः
चतुर्थी	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
पञ्चमी	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
षष्ठी	मातुः	मात्रोः	मातणाम्
सप्तमी	मातरि	मात्रोः	मातृषु
सम्बोधन	हे मातः!	हे मातरौ!	हे मातरः!

''गुरु''

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
प्रथमा	गुरुः	गुरू	गुरवः
द्वितीया	गुरुम्	गुरू	गुरून्
तृतीया	गुरुणा	गुरुभ्याम्	गुरुभिः
चतुर्थी	गुरवे	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
पञ्चमी	गुरोः	गुरुभ्याम्	गुरुभ्यः
षष्ठी	गुरोः	गुर्वोः	गुरूणाम्
सप्तमी	गुरौः	गुर्वोः	गुरुषु
सम्बोधन	हे गुरो!	हे गुरू!	हे गुरवः!

(ङ) कोई पुल्लिंग इकारान्त शब्द ''हरि'' आदि

	एकवचन	द्वि0वचन	बहु0वचन
प्रथमा	हरिः	हरी	हरयः
द्वितीया	हरिम्	हरी	हरीन्
तश्तीया	हरिणा	हरिभ्याम्	हरि ः
चतुर्थी	हरये	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
पञ्चमी	हरेः	हरिभ्याम्	हरिभ्यः
षष्ठी	हरेः	हर्योः	हरीणाम्
सप्तमी	हरौ	हर्योः	हरिषु
सम्बोधन	हे हरे!	हे हरी!	हे हरयः!

आकारान्त स्त्रीलिंग''लता'' आदि

प्र0	ए0 व0✓	द्वि0 व0 लते	ब0 व0
च0			लताभ्यः
ष0	लतायाः✓		

अथवा इसको ऐसे ी लिख सकते हैं

प्र0 द्वि0 व0

लते

च0 ब0 व0

लताभ्यः

	श0	ए0 व0
		लतायाः

15.10 उपयोगी पुस्तकें

लघुसिद्धान्त कौमुदी, बृहद् अनुवाद चन्द्रिका, व्याकरण प्रदीप आदि

15.11 अभ्यास कार्य

यथानिर्दिष्ट शब्दरूप लिखिये

(क) हरि (द्वि0), राम (प्र0), गुरु (च0), नदी (श0), मति (स0), मधु (पं0)?

(ख) वारि (द्वि0 , श0, स0), पितृ (द्वि0, च0, सं0), लता (तृ0, पं0, स0)

(ग) ऋकारान्त स्त्रीलिंग एवं पुल्लिंग उकारान्त शब्द की रूपावली

(घ) वारि (द्वि0, ब0 व0), धेनु (पं0, ए0 व0), राम (स0, ब0 व0) ?

✠✠✠✠✠✠✠

B.A. - Ist Semester **Paper - SANSKRIT**

Unit - IV (भाग–क) **Lesson No. 16**

हलन्त और सर्वनाम शब्दों की रूपावली (भाग–क)

रूपरेखा

16.1 उद्देश्य

16.2 पाठ परिचय

16.3 मूलपाठः संस्कृत शब्दों की रूपावली

16.3.1 आधार पाठ

16.3.2. लक्ष्य पाठ

16.4 संस्कृत भाषा के राजन्, वत्, विद्वस्, सरित्, मनस् हलन्त शब्दों की रूपावली

16.4.1 ''राजन्'' शब्द की रूपावली

16.4.2 '' वत्'' शब्द की रूपावली ((क) पुल्लिंग (ख) स्त्रीलिंग, (ग) नपुंसकलिंग)

16.4.3 ''विद्वस्'' शब्द की रूपावली

16.4.4 ''सरित्'' शब्द की रूपावली

16.4.5 ''मनस्'' शब्द की रूपावली

16.5 संस्कृत भाषा के''अस्मद्'', ''युष्मद्'' और ''सर्व'', ''तद्''सर्वनाम शब्दों की तीनों लिङ्गों में रूपावली

16.5.1 पुल्लिग ''अस्मद्'' शब्द की रूपावली

16.5.2 स्त्रीलिंग ''अस्मद्'' शब्द की रूपावली

16.5.3 नपुंसकलिंग ''अस्मद्'' शब्द की रूपावली

16.5.4 पुल्लिग ''युसमद्'' शब्द की रूपावली

16.5.5 स्त्रीलिंग ''युष्मद्'' शब्द की रूपावली

16.5.6 नपुंसकलिंग ''युष्मद्'' शब्द की रूपावली

16.5.7 पुल्लिग ''सर्व'' शब्द की रूपावली

16.5.8 स्त्रीलिंग ''सर्व'' शब्द की रूपावली

16.5.9 नपुंसकलिंग ''सर्व'' शब्द की रूपावली

16.5.10 पुल्लिग ''तद्'' शब्द की रूपावली

16.5.11 स्त्रीलिंग ''तद्'' शब्द की रूपावली

16.5.12 नपुंसकलिंग ''तद्'' शब्द की रूपावली

16.6 सारांश

16.7 परीक्षार्थ प्रश्नों के नमूने

16.8 प्रश्नों के उत्तर

16.9 उपयोगी पुस्तकें

16.10 अभ्यास कार्य

16.1 उद्देश्य

इस पाठ को स्मरण करने के पश्चात् शब्द शक्ति समझने में और विकास होगा।

संस्कृत भाषा में प्रयुक्त होने वाले पुल्लिंग, स्त्रीलिंग अथवा नपुंसकलिंग हलन्त शब्दों के रूप बनाने, अर्थ समझने, पढ़ने–लिखने अथवा ाषानुवाद करने की क्षमता बढ़ेगी।

संस्कृत भाषा में प्रयुक्त सर्वनाम शब्दों के तीनों लिङ्गों में रूप बनाने, अर्थ समझने एवं ाषानुवाद करने की योग्यता से आशातीत ला होगा, क्योंकि इनका प्रयोग ही अधिकतर बोलचाल, शब्द (वाक्य) रचना आदि में होता है। इनके ज्ञान एवं प्रयोग के बिना भाषा में पारंगतता हो ही नहीं सकती।

हलन्त एवं सर्वनाम शब्दों की पहचान उनके रूप बनाने की प्रक्रिया व विधि का ज्ञान होता है।

पाठ्यक्रम में निर्धारित हलन्त व सर्वनाम शब्दों जैसे अन्य रूपों के निर्माण की

क्षमता बढ़ती है।

16.2 पाठ परिचय

संस्कृत भाषा में नाम (शब्द) और धातु (Root) बहुत महत्त्वपूर्ण घटक (Component) माने जाते हैं, जिनके सम्यक् ज्ञान के बिना भाषा का समझना, बोलना, लिखना अथवा संवाद करना अत्यन्त कठिन है। पाठ–13 में शब्दों के अजन्त अर्थात् अच् (स्वर, यथाअ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ इत्यादि) जिनके अन्त में हों, उनकी पुल्लिंग, स्त्रीलिंग एवं नपुंसकलिंग में रूपावली दिखाई गई है। प्रस्तुत पाठ–14 में शब्दों (नामों) के पाठ्यक्रम में निर्धारित हलन्त शब्दों की रूपावली व सर्वनाम शब्दों का तीनों लिङ्गों में परिचय कराया जायेगा, ताकि उन जैसे अन्य शब्दों को समझना भी बोधगम्य हो सके।

16.3 मूलपाठ : संस्कृत शब्दों की रूपावली

संस्कृत भाषा एक समृद्ध, सुसंस्कृत, वैज्ञानिक और अतिप्राचीन है। सांस्कृतिक, साहित्यिक, धार्मिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक व आर्थिक–राजनैतिक एवं सभी प्रकार के विशयों का विश्वकोश है। अतएव, इसमें प्रत्येक शब्द अपनी विशिष्ट महत्ता रखता है और ऐसे शब्द अनन्त है। इसीलिये संस्कृत साहित्य के ज्ञान के लियेमुखं व्याकरणं स्मृतम्–अर्थात् व्याकरण इसका मुख है। सिद्धान्तकौमुदी, मध्यकौमुदी एवं काशिका व लघुसिद्धान्त कौमुदी आदि में संस्कृत भाषा के मूल शब्दों का ज्ञान कराने का अत्यन्त सफल प्रयास किया गया है। वे शब्द नाना प्रकार के हैं। उनमें से गत पाठ (13) में सुबन्त अजन्त शब्दों की प्रमुख जानकारी प्रदान की गई है। प्रस्तुत पाठ (14) में उनके हलन्त और सर्वनाम विशयक प्रमुख शब्दों को मूलरूप से लिया गया है।

16.3.1 आधार पाठ

संस्कत भाषा के सुबन्त शब्दों के हलन्त रूप मेंराजन्, वत्, विद्वान्, सरित् और मनस्शब्द पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं। और इसी प्रकार, सर्वनाम शब्दअस्मद्, युष्मद्, सर्व, तद्के तीनों लिङ्गों के रूपों को पाठ्यक्रम का आधार बनाया गया है।

16.3.2 लक्ष्य पाठ

संस्कृत भाषा के अथाह शब्द समूह का ज्ञान अथवा स्मरण कोई सहजकार्य नहीं है। इस के सम्यक् ज्ञान और प्रयोग के लिये वर्षों भर का परिश्रम भी नगण्य प्रतीत होता है। परन्तु इन सभी कठिनाईयों की अपेक्षा वैयाकरण शास्त्रियों ने कुछ ऐसे नियम और सिद्धान्त बनाये हैं, जिनसे संस्कृत भाषारूपी समुद्र को सहजतया पार किया जा सकता है। प्रस्तुत पाठ (14) का भी इस सोपान क्रम में लघु आयास है, जिससे अजन्त हलन्त और सर्वनाम शब्दों के निर्धारित पाठ्यक्रमानुसार ज्ञान से इन जैसे अन्य शब्दों का भी

ज्ञानसुल हो सके।

फलतः संस्कृत भाषा के अवबोध, प्रयोग, संवाद, ाषानुवाद आदि में कुशलता प्राप्त हो सके। सबसे प्रमुख बात यह है कि संस्कृत भाषा का ज्ञान सहज हो सके यही इस पाठ का लक्ष्य है।

16.4 संस्कृत भाषा केराजन्, वत्, विद्वस्, सरित्, मनस्हलन्त शब्दों की रूपावली

संस्कृत भाषा के सुबन्त (सुप् वि क्तियाँ जिनके अन्त में लगती हैं और इस प्रकार उनके रूप बनते है) अजन्त रामादि शब्दों के तीनों लिङ्गों में ज्ञान के पश्चात् उसके हलन्त राजन् आदि शब्दों की बनावट तथा रूपावली का ी ज्ञान आवश्यक है, जो क्रमशः दिया जा रहा है

16.4.1 हलन्त ''राजन्'' की रूपावली (पुल्लिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	राजा	राजानौ	राजानः
कर्म	द्वितीया	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
करण	तृतीया	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
सम्प्रदान	चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
अपादान	पञ्चमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
अधिकरण	सप्तमी	राज्ञि, राजनि	राज्ञोः	राजसु
सम्बोधन	अष्टमी	हे राजन्!	हे राजानौ!	हे राजानः!

16.4.2 (क) हलन्त '' वत्'' शब्द की रूपावली (पुल्लिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	वान्	वन्तौ	वन्तः
कर्म	द्वितीया	वन्तम्	वन्तौ	वतः
करण	तृतीया	वता	वद्भ्याम्	वद्भिः
सम्प्रदान	चतुर्थी	वते	वद्भ्याम्	वद्भ्यः
अपादान	पञ्चमी	वतः	वद्भ्याम्	वद्भ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	वतः	वतोः	वताम्
अधिकरण	सप्तमी	वति	वतोः	वत्सु

16.4.2 (ख) हलन्त '' वत्'' शब्द की रूपावली (स्त्रीलिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	वती	वत्यौ	वत्यः
कर्म	द्वितीया	वतीम्	वत्यौ	वतीः
करण	तृतीया	वत्या	वतीभ्याम्	वतीि ः
सम्प्रदान	चतुर्थी	वत्यै	वतीभ्याम्	वतीभ्यः
अपादान	पञ्चमी	वत्याः	वतीभ्याम्	वतीभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	वत्या	वत्योः	वतीनाम्
अधिकरण	सप्तमी	वत्याम्	वत्योः	वतीषु

16.4.2 (ग) हलन्त '' वत्'' शब्द की रूपावली (नपुंसकलिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्त्ता	प्रथमा	वत्	वती	वन्ति
कर्म	द्वितीया	वत्	वती	वन्ति
करण	तृतीया	वता	वद्भ्याम्	वद्भिः
सम्प्रदान	चतुर्थी	वते	वद्भ्याम्	वद्भ्यः
अपादान	पञ्चमी	वतः	वद्भ्याम्	वद्भ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	वतः	वतोः	वताम्
अधिकरण	सप्तमी	वति	वतोः	वत्सु

स्मरण रहे कि '' वत्'' के पुल्लिग और नपुंसकलिंग के रूपों में केवल प्रथमा और द्वितीया वि क्तियों में अन्तर है, शेष में समान रूप चलते हैं।

16.4.3 हलन्त "विद्वस्" शब्द की रूपावली (पुल्लिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः
कर्म	द्वितीया	विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः
करण	तृतीया	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः
सम्प्रदान	चतुर्थी	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
अपादान	पञ्चमी	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
सम्बन्ध	शश्ठी	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
अधिकरण	सप्तमी	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु
सम्बोधन	अश्टमी	हे विद्वन्!	हे विद्वांसौ!	हे विद्वांसः!

16.4.4 हलन्त "सरित्" शब्द की रूपावली (स्त्रीलिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	सरित्	सरितौ	सरितः
कर्म	द्वितीया	सरितम्	सरितौ	सरितः
करण	तृतीया	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्ि
सम्प्रदान	चतुर्थी	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
अपादान	पञ्चमी	सरितः	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	सरितः	सरितोः	सरिताम्
अधिकरण	सप्तमी	सरिति	सरितोः	सरित्सु
सम्बोधन	अश्टमी	हे सरित्!	हे सरितौ!	हे सरितः!

16.4.5 हलन्त ''मनस्'' शब्द की रूपावली (नपुंसकलिङ्ग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	मनः	मनसी	मनांसि
कर्म	द्वितीया	मनः	मनसी	मनांसि
करण	तृतीया	मनसा	मनोभ्याम्	मनोि :
सम्प्रदान	चतुर्थी	मनसे	मनोभ्याम्	मनोभ्यः
अपादान	पञ्चमी	मनसः	मनोभ्याम्	मनोभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	मनसः	मनसोः	मनसाम्
अधिकरण	सप्तमी	मनसि	मनसोः	मनस्सु
सम्बोधन	अष्टमी	हे मनः!	हे मनसी!	हे मनांसि!

16.5 संस्कृत भाषा के''अस्मद्'', युष्मद् और ''सर्व'', ''तद्''सर्वनाम शब्दों की तीनों लिङ्गों में रूपावली

किसी भाषा में संज्ञा शब्दों का बार–बार एक ही वाक्य अथवा पद्य–गद्य में प्रयोग एक दोष बन जाता है और वाक्य अथवा गद्यांश की सुन्दरता को नष्ट कर देता है। इसलिये स ी ाषाओं में एक बार संज्ञा शब्द प्रयुक्त करने पुनः उसकी अपेक्षा से उसके सर्वनाम शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे''**राम** वन गये। **राम** अपने साथ सीता तथा लक्ष्मण को ी ले गये'' इसकी अपेक्षा''**राम** वन गये। "वह अपने साथ सीता तथा लक्ष्मण को ी ले गये'' यह दूसरा वाक्य अधिक सुन्दर है। इसमें एक बार ''राम'' संज्ञा शब्द का प्रयोग करके पुनः उसकी अपेक्षा से उनके सर्वनाम शब्द ''वह'' का प्रयोग किया गया है। इसी प्रकार अन्य ाषाओं के ी उदाहरण दिये जा सकते हैं। संस्कृत भाषा में तो इनका प्रयोग बहुत ही सुसंस्कृत ढंग से किया जाता है। इसमें तीन लिङ्ग माने गये हैं पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिङ्ग। प्रत्येक लिङ्ग के संज्ञा शब्दों के अपने–अपने पृथक्–पृथक् सर्वनाम शब्द माने गये हैं। अपने–अपने लिङ्ग और वचन अनुसार ही उनका उसी प्रकार प्रयोग होता है तथा वैसे ही रूप ी बनते हैं। अब पाठ्यक्रमनुसार उनके रूप दिये जा रहे हैं ।

16.5.1 सर्वनाम ''अस्मद्'' शब्द की रूपावली (पुल्लिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
कर्म	द्वितीया	माम्	आवाम्	अस्मान्
करण	तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्मा ि:
सम्प्रदान	चतुर्थी	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
अपादान	पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
सम्बन्ध	षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्
अधिकरण	सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

16.5.2 सर्वनाम ''अस्मद्'' शब्द की रूपावली (स्त्रीलिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
कर्म	द्वितीया	माम्	आवाम्	अस्मान्
अधिकरण	तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्मा ि:
सम्प्रदान	चतुर्थी	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
अपादान	पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
सम्बन्ध	षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्
अधिकरण	सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

16.5.3 हलन्त ''अस्मद्'' शब्द की रूपावली (नपुंसकलिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
कर्म	द्वितीया	माम्	आवाम्	अस्मान्
करण	तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्मा ि:
सम्प्रदान	चतुर्थी	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
अपादान	पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
सम्बन्ध	षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्
अधिकरण	सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

16.5.4 हलन्त ''युष्मद्'' शब्द की रूपावली (पुल्लिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
कर्म	द्वितीया	त्वाम्	युवाम्	यष्मान्
करण	तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्मा ि:
सम्प्रदान	चतुर्थी	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्
अपादान	पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
सम्बन्ध	षष्ठी	तव	युवयोः	युष्माकम्
अधिकरण	सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

16.5.5 हलन्त ''युष्मद्'' शब्द की रूपावली (स्त्रीलिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
कर्म	द्वितीया	त्वाम्	युवाम्	युष्मान्
करण	तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्मा ि:
सम्प्रदान	चतुर्थी	तुम्यम्	युवाम्याम्	युष्मभ्यम्
अपादान	पञ्चमी	त्वत्	युवाम्याम्	युष्मत्
सम्बन्ध	षष्ठी	तव	युवयोः	युष्माकम्
अधिकरण	सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

16.5.6 हलन्त ''युष्मद्'' शब्द की रूपावली (नपुंसकलिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
कर्म	द्वितीया	त्वाम्	युवाम्	युष्मान्
करण	तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	यष्मा ि:
सम्प्रदान	चतुर्थी	तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्
अपादान	पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
सम्बन्ध	षष्ठी	तव	युवयोः	युष्माकम्
अधिकरण	सप्तमी	त्वयि	युवयोः	युष्मासु

16.5.7 सर्वनाम ''सर्व'' शब्द की रूपावली (पुल्लिग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	सर्वः	सर्वौ	सर्वे
कर्म	द्वितीया	सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्
करण	तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
सम्प्रदान	चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
अपादान	पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
अधिकरण	सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

16.5.8 सर्वनाम ''सर्वा'' शब्द की रूपावली, सर्व=सर्वा (स्त्रीलिंङ्ग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	सर्वा	सर्वे	सर्वाः
कर्म	द्वितीया	सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः
करण	तृतीया	सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाि ः
सम्प्रदान	चतुर्थी	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
अपादान	पञ्चमी	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्याः
सम्बन्ध	षष्ठी	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
अधिकरण	सप्तमी	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

16.5.9 सर्वनाम ''सर्वम्'' शब्द की रूपावली, सर्व=सर्वम् (नपुंसकलिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
कर्म	द्वितीया	सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि
करण	तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः
सम्प्रदान	चतुर्थी	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
अपादान	पञ्चमी	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
अधिकरण	सप्तमी	सर्वस्मिन्	सर्वयो	सर्वेषु

16.5.10 सर्वनाम 'तद ्' शब्द की रूपावली (पुल्लिंग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	सः	तौ	ते
कर्म	द्वितीया	तम्	तौ	तान्
करण	तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
सम्प्रदान	चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
अपादान	पञ्चमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	तस्य	तयोः	तषाम्
अधिकरण	सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

16.5.11 सर्वनाम "तद ्" शब्द की रूपावली (स्त्रीलिंङ्ग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	सा	ते	ताः
कर्म	द्वितीया	ताम्	ते	ताः
करण	तृतीया	तया	ताम्याम्	ता ि:
सम्प्रदान	चतुर्थी	तस्यै	ताम्याम्	ताभ्यः
अपादान	पञ्चमी	तस्याः	ताभ्याम्	ताम्यः
सम्बन्ध अधिकरण	षष्ठी सप्तमी	तस्याः तस्याम्	तयोः तयोः	तासाम् तासु

16.5.12 सर्वनाम "तद ्" शब्द की रूपावली (नपुंसकलिङ्ग)

कारक	वि क्ति	ए. व.	द्वि. व.	ब. व.
कर्ता	प्रथमा	तत्, तद्	ते	तानि
कर्म	द्वितीया	तत्, तद्	ते	तानि
करण	तृतीया	तेन	ताभ्याम्	तैः
सम्प्रदान	चतुर्थी	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
अपादान	पञ्चमी	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
सम्बन्ध	षष्ठी	तस्य	तयोः	तेषाम्
अधिकरण	सप्तमी	तस्मिन्	तयोः	तेषु

16.6 सारांश

पाठ–14 में हलन्त और सर्वनाम शब्दों की रूपावली दी गई है, जो स्मरण करने से उन जैसे अन्य शब्दों के रूप बनाने, समझने, लिखने अथवा ाशानुवाद के लिये अत्यन्त उपयोगी है। जैसें ' वत्' का शब्दरूप रचना का नियम समझ लेने से उसी प्रकार के 'महत्', धीमत्, श्रीमत्, बुद्धिमत्, बलवत्, विद्यावत्, धनुष्मत्, सानुमत्, ास्वत्, मघवत्, सरस्वत्, ज्ञानवत्, गतवत् आदि के रूप बनाने में सुविधा हो जाती है। 'विद्वस्' के रूप को समझ लेने से श्रेयस्, कनीयस् ज्यायस् और प्रेयस् आदि के रूपों का नियम अवबोधित हो जाता है। 'सरित्' शब्द की ाँति हरित्, योषित्, तडित् आदि के रूप अवगम हो सकते हैं। मनस् की ाँति तमस्, तेजस् चक्षुष्, तपस्, रजस्, वचस्, वयस्, शिरस्, वासस्, सरस्, न स्, यशस् और रक्षस् आदि के रूपों को जानने का पता चलता है।

16.7 परीक्षार्थ प्रश्नों के नमूने

परीक्षा में परीक्षक की इच्छा पर नि र करता है कि वह पाठ्यक्रम में निर्धारित शब्दों को किस प्रकार पूछता है। तथापि कुछ नमूने और फिर उनका समाधान दिया जा रहा है। विद्यार्थी इसका स्वयं बार–बार अभ्यास करें। इन प्रश्नों के नमूनों को ही परीक्षा के प्रश्न समझकर ान्ति में न रहें, ये तो केवल सम ावित नमूने (Models) हैं। सब से उत्तम उपाय यही है कि पाठ्यक्रम में निर्धारित स ी रूपों को अच्छी प्रकार समझ लेना चाहिये और तदुपरान्त स्मरण कर बार–बार लिखित अभ्यास करना चाहिये। इससे न केवल परीक्षा में सुविधा रहेगी, अपितु संस्कृत भाषा को पढ़ने और समझने की ी सुविधा रहेगी

निम्नलिखित शब्दों के यथानिर्दिष्ट लिङ्ग वि क्ति एवं वचन में रूप लिखिये

क) राजन् (पु0, द्वि0, ए0 व0) वत् (स्त्री0, तृ0, ब0 व0), विद्वस् (पु0, श0, ए0 व0), सरित् (स्त्री0, च0, ब0 व0), मनस् (नपुं0, स0, द्वि0, व0)?

ख) अस्मद् (प्र0). युष्मद् (द्वि0), सर्व (पु0, तृ0), तद् (स्त्री च0), राजन, (पु0, पं0), वत् (पु0, श0), विद्वस् (स0)?

ग) सरित् एवं अस्मद् के रूप?

घ) मनस् (प्र0, द्वि0, तृ0), राजन् (च0, पं0, श0)?

ङ) सर्व (नपुं0, प्र0, ब0 व0), तद् (स्त्री0, तृ0, द्वि0 व0), मनस् (नपुं0, च0, ए0व0), राजन् (पु0, पं0, ब0 व0), सरित् (स्त्री0, स0, ए0 व0), युष्मद् (प्र0, श0, द्वि0 व0) तद् (पु0, स0, ए0 व0)?

16.8 प्रश्नों के उत्तर

उपर्युक्त (14.7) प्रश्नों (क से ङ तक) के समाधान क्रमशः इस प्रकार हैं

(क) राजन् (पुल्लिग)

वि क्ति	ए0व0	द्वि0व0	ब0 व0
द्वितीया	राजानम्	–	–

वत् (स्त्रीलिंग)

वि क्ति	ए0व0	द्वि0व0	ब0 व0
तृतीया	–	–	वतीि :

विद्वस् (पुल्लिग)

षष्ठी	विदषः	–	–

सरित् (स्त्रीलिङ्ग)

वि क्ति	ए0व0	द्वि0व0	ब0 व0
चतुर्थी	–	–	सरिद्भ्यः

मनस् (नपुंसकलिङ्ग)

सप्तमी	–	मनसोः	–

(ख) अस्मद्

प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्

युष्मद्

द्वितीया	त्वाम्	युवाम्	यष्मान्

सर्व (पुल्लिग)

तृतीया	सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः

तद् (स्त्रीलिंङ्ग)

चतुर्थी	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः

राजन् (पुल्लिग)

पञ्चमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः

वत् (पुल्लिग)

षष्ठी	वतः	वतोः	वताम्

विद्वस्

सप्तमी	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु

(ग) (पप) सरित्

प्रथमा	सरित्	सरितौ	सरितः
द्वितीया	सरितम्	सरितौ	सरितः
तृतीया	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भिः
चतुर्थी	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिदभ्यः
पञ्चमी	सरितः	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्यः
षष्ठी	सरितः	सरितोः	सरिताम्
सप्तमी	सरिति	सरितोः	सरित्सु
सम्बोधन	हे सरित्!	हे सरितौ!	हे सरितः!

(द्बद्ब) अस्मद्

प्रथमा	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वितीया	माम्	आवाम्	अस्मान्
तृतीया	मया	आवाभ्याम्	अस्मा ि:
चतुर्थी	मह्यम्	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्
पञ्चमी	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
षष्ठी	मम	आवयोः	अस्माकम्
सप्तमी	मयि	आवयोः	अस्मासु

		(घ) मनस्	
प्रथमा	मनः	मनसी	मनांसि
द्वितीया	मनः	मनसी	मनांसि
तृतीया	मनसा	मनोभ्याम्	मनोि:
		राजन्	
चतुर्थी	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पञ्चमी	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
षष्ठी	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
		(ङ) सर्व (नपुं0 लिं0)	
प्रथमा	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
	–	–	सर्वाणि
		तद् (स्त्री लि0)	
तृतीया		ताभ्याम्	
		मनस् (नपुं0 लिं0)	
चतुर्थी	मनसे		
		राजन् (पु0)	
पञ्चमी			राजभ्यः
		सरित् (स्त्री0 लिं0)	
सप्तमी	सरिति		
		युष्मद् (प्र0)	
षष्ठी		युवयोः	

16.9 उपयोगी पुस्तकें

बृहद अनुवाद चन्द्रिका, व्याकरण प्रदीप, संस्कृत व्याकरण आदि

16.10 अभ्यास कार्य

छात्रों से अपेक्षित है –

(क) राजन्, वत्, विद्वस्, सरित् और मनस् के रूप स्मरण कर उनकी रूपावली लिखें?

(ख) अस्मद्, युष्मद्, सर्व और तद् की रूपावली तीनों लिङ्गों में लिखकर अभ्यास करें?

(ग) सरित् (स्त्री0 लिं0, सप्तमी), राजन् (पु0 लिं0, चतुर्थी), मनस् (नपुं0, लिं0), षष्ठी, तद् (स्त्री लिं0, द्वितीया), वत् (नपुं0 लिं0, प्रथमा) ?

(घ) विद्वस् (प्र0, तृ0, स0) सरित् (द्वि0, पं0, स0) सर्व (पु0, तृ0 श0, स0) ?

g g g g g g

B.A. - Ist Semester **Paper - SANSKRIT**

Unit - IV (भाग–ख) **Lesson No. 17**

धातुओं के रूप

रूपरेखा

17.1 उद्देश्य

17.2 पाठ परिचय

17.3 मूलपाठः संस्कृत ाषा में धातुओं के रूप

17.3.1 आधार पाठ : भ्वादिगण और अदादिगण

17.3.2 लक्ष्य पाठः ू पठ्, गम्, स्था, दृश् तथा हन्, अद् धातुओं के पञ्च लकारों में रूप

17.4 भ्वादि गण और ू पठ्, गम्, स्था, दृश्, धातुओं के रूप

17.4.1 भ्वादिगण का ‘ ू’ धातु

17.4.2 लट् लकार में ‘ ू’ धातु का रूप

17.4.3 लोट् लकार में ‘ ू’ धातु का रूप

17.4.4 लृट् लकार में ‘ ू’ धातु का रूप

17.4.5 लङ् लकार में ‘ ू’ धातु का रूप

17.4.6 विधिलिङ् लकार में ‘ ू’ धातु का रूप

17.4.7 भ्वादिगण का ‘पठ्’ धातु

17.4.8 लट् लकार में ‘पठ्’ धातु का रूप

17.4.9 लोट् लकार में ‘पठ्’ धातु का रूप

17.4.10 लृट लकार में 'पठ्' धातु का रूप
17.4.11 लङ् लकार में 'पठ्' धातु का रूप
17.4.12 विधिलिङ् लकार में 'पठ्' धातु का रूप
17.4.13 भ्वादिगण का 'गम्' धातु
17.4.14 लट् लकार में 'गम्' धातु का रूप
17.4.15 लोट् लकार में 'गम्' धातु का रूप
17.4.16 लृट् लकार में 'गम्' धातु का रूप
17.4.17 लङ् लकार में 'गम्' धातु का रूप
17.4.18 विधिलिङ् लकार में 'गम्' धातु का रूप
17.4.19 भ्वादिगण का 'स्था' धातु
17.4.20 लट् लकार में 'स्था' धातु का रूप
17.4.21 लोट लकार में 'स्था' धातु का रूप
17.4.22 लृट् लकार में 'स्था' धातु का रूप
17.4.23 लङ् लकार में 'स्था' धातु का रूप
17.4.24 विधिलिङ् लकार में 'स्था' धातु का रूप
17.4.25 भ्वादिगण का 'दृश्' धातु
17.4.26 लट् लकार में 'दृश्' धातु का रूप
17.4.27 लोट लकार में 'दृश्' धातु का रूप
17.4.28 लृट् लकार में 'दृश्' धातु का रूप
17.4.29 लङ् लकार में 'दृश्' धातु का रूप
17.4.30 विधिलिङ् लकार में 'दृश्' धातु का रूप
17.5 अदादिगण और 'हन्' तथा 'अद्' धातुओं के रूप
17.5.1 अदादिगण और 'हन्' धातु
17.5.2 लट् लकार में 'हन्' धातु का रूप

17.5.3 लोट लकार में 'हन्' धातु का रूप

17.5.4 लृट् लकार में 'हन्' धातु का रूप

17.5.5 लङ् लकार में 'हन्' धातु का रूप

17.5.6 विधिलिङ् लकार में 'हन्' धातु का रूप

17.5.7 अदादिगण और 'अद्' धातु

17.5.8 लट् लकार में 'अद्' धातु का रूप

17.5.9 लोट् लकार में 'अद्' धातु का रूप

17.5.10 लृट् लकार में 'अद्' धातु का रूप

17.5.11 लङ् लकार में 'अद्' धातु का रूप

17.5.12 विधिलिङ् लकार में 'अद्' धातु का रूप

17.6 सारांश

17.7 परीक्षार्थ प्रश्नों के नमूने

17.8 प्रश्नों के समाधान

17.9 अभ्यास कार्य

17.10 उपयोगी पुस्तकें

17.1 उद्देश्य

संस्कृत ाषा एक समृद्ध और वैज्ञानिक ाषा है। इसीलिये इसका शब्द ण्डार ी अथाह है। इसकी जानकारी के लिये वर्षों का परिश्रम अपेक्षित है। तथापि इसका पार पाना असम्‍ व है। लग ग 2200 धातुयें इंगित की गई हैं और फिर उनके दश लकारों में रूप स्मरण करना कोई सहज कार्य नहीं है। मनीषियों ने पाँच लकारों में दश गणों के रूपों को समझाने का प्रयास किया है। उनमें से प्रस्तुत पाठ में –

भ्वादिगण और उसके अन्तर्गत आने वाले धातुओं में से ॣ पठ्, गम्, स्था तथा दृश्, धातुओं के रूप लटादि पाँच लकारों में अवगत कराये जायेंगे।

अदादिगण के अन्तर्गत आने वाली धातुओं में से 'हन्' और 'अद्' धातुओं के रूप परिज्ञात करवाये जायेंगे।

इन प्रमुख धातुओं के रूप स्मरण करने से संस्कृत ाषा के विशाल धातुरूपों को समझने का माध्यम मिलेगा।

संस्कृत ाषा को समझने, ाषानुवाद करने, शब्द एवं उनके मूलरूपों का ज्ञान करने में सुविधा होगी।

शब्द (नाम) और धातु ज्ञान में संवर्धन होगा।

17.2 पाठ परिचय

प्रस्तुत पाठ–15 पाठ्यक्रम में निर्धारित भ्वादिगण के ॢ पठ, गम, स् ा, दृश्, तथा अदादिगण के हन्, अद् धातुओं के रूपों को लट्, लोट्, लृट, लङ्, और विधिलिङ् लकारों में परिचित करवायेगा। संस्कृत ाषा के अनन्त शब्दों के ण्डार को दश गणों में बाँटा गया है और उनके दश लकारों में पृथक्–पृथक् रूप बनते हैं। परन्तु प्रचलित रूप पाँच लकारों में ही प्रायः चलते हैं। इसलिये मुख्य गण भ्वादिगण तथा अदादिगण के प्रमुख धातुओं के रूप यहाँ पाँच लकारों में दिये गये हैं। इनके स्मरण और रूप रचना के नियम ज्ञान से संस्कृत ाषा को समझने में बोधवृद्धि होती है।

17.3 मूलपाठ : संस्कृत ाषा में धातुओं के रूप

संस्कृत ाषा में ''धातु'' अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। प्रत्येक शब्द, जिसका ाषा अथवा संवाद में प्रयोग होता है, मूलरूप से किसी धातु से प्रत्ययादि जोड़कर बना होता है। जैसेपठति, गच्छति, तिष्ठति आदि पठन, गमन, ठहराव की क्रिया के द्योतक हैं। इनके मूल रूप 'पठ्', 'गम्', 'स्था' धातु हैं। कोई ी वाक्य किसी न किसी क्रिया व्यापार को दर्शाता है और क्रिया व्यापार धातु के मूलरूप से प्रत्ययादि लगाकर बनता है। संस्कृत ाषा के ऐसे धातु 2000 अथवा 2200 के लग ग हैं। इतने अधिक रूपों को नियमानुसार बनाने आदि के विचार से इनको दश गणों में वि ाजित किया गया है। पुनः दश लकारों में इनके अनेक रूप बनते हैं, जिनको पाँच में समाहित करके सरलता लाने की कोशिश की गई है।

17.3.1 आधार पाठ : भ्वादिगण और अदादिगण

संस्कृत के अनन्त शब्द ण्डार को दश गणों में वि ाजित किया गया है, ताकि उनकी रचना अथवा रूप निर्माण में एक प्रक्रिया निर्धारित की जा सके। गण इस प्रकार हैं – भ्वादिगण, अदादिगण, जुहोत्यादि गण, दिवादिगण, स्वादिगण, तुदादिगण, रुधादिगम, तनादिगण, क्रयादिगण, चुरादिगण। जो धातु जिस गण की होती है, उस धातु के रूप उस गण की धातुओं के समान चलेंगे। पाठ्यक्रम में केवल प्रथम दो प्रमुख गण एवं उनके

धातु रूप पाँच लकारों में निर्धारित हैं। भ्वादिगण के धातुरूप और अदादिगण के धातु रूप बनाने का पृथक्–पृथक् नियम है, उसके सम्यक् ज्ञान से दोनों प्रकार के गणों की धातुओं के रूप बनाने की सुविधा हो जाती है। इसीलिये सरल और प्रायः प्रचलित धातुरूप, जोकि भ्वादिगण और अदादिगण में उपलब्ध हैं, निश्चित् किया गया है ताकि इनको आधार बनाकर अन्य रूपों को बनाने का नियम ज्ञात हो सके। अतः छात्रों को चाहिये के इन स ी धातुरूपों की प्रक्रिया को समझ कर अन्य धातुरूप बनाने का प्रयत्न किया जाये।

17.3.2 लक्ष्य पाठः ू पठ्, गम्, स्था, दृश्

तथा

हन्, अद् धातुओं के पञ्च लकारों में रूप

पाठ–15 का लक्ष्य भ्वादिगण की ू पठ्, गम्, स्था, दृश्, तथा अदादिगण की हन्, अद् धातुओं का रूप लट्, लोट, लृट्, लङ् और विधिलिङ् लकारों में परिज्ञात कराया जाये। यद्यपि संस्कृत ाषा में 2000 के लग ग धातु हैं और उन सबके रूप ि न्न–ि न्न लकारों में विशिष्ट तरह के बनते हैं। परन्तु उन स ी धातुओं को दश गणों में बाँटकर उनके आम प्रचलित पाँच लकारों में रूप बनाने की सरल प्रक्रिया निर्धारित की गई है। अतः भ्वादिगण और अदादिगण की प्रमुख धातुओं के रूप जहाँ परीक्षा के लिये ला कर हैं, वहीं दूसरे गणों के धातुओं को समझने की आवश्यकता पर ी बल देते हैं। त ी संस्कृत ाषा के स ी प्रकार के साहित्य को अच्छी तरह समझा जा सकता है एवं पठन–पाठन ी सम् व हो सकता है।

17.4 भ्वादिगण और ू पठ्, गम्, स्था, दृश्, धातुओं के रूप।

गणों में भ्वादिगण प्रथम स्थान पर आता है और इसके नामकरण का कारण 'ू' धातु है अर्थात् इस गण के अन्तर्गत आने वाली धातुओं की गणना 'ू' धातु से आरम् की गई है। दूसरे, धातु किसी सत्ता व्यापार को बतलाने वाले होते हैं, 'ू' धातु सत्ता की ी द्योतक है। ू पठ्, गम्, स्था, दृश् अत्यन्त प्रचलित और सरलरूप हैं। इनके रूप बनाने का नियम ी अन्य गणों से सरल है। उस दृष्टि से ी भ्वादिगण का प्रथम निर्धारण करना सर्वथा उचित है और प्रारम्ि क पाठकों की सुविधा के लिये 'ू' आदि धातु रूपों का देना ी युक्तिसंगत है।

17.4.1 भ्वादिगण का 'ू' धातु

भ्वादिगण का 'ू' धातु अस्तित्व के अर्थ को व्यक्त करने वाला है। इसके रूप बनाते

समय ू को व रूप हो जाता है, जिसमें प्रत्यय जोड़ने से विविध लकारों के पृथक्–पृथक् रूप सम्पन्न होते हैं

17.4.2. लट् लकार–' ू' धातु –वर्तमान काल का द्योतक लट् लकार है।

	ए0व0	**द्वि0 व0**	**ब0व0**
प्रथम पुरुष	वति	वतः	वन्ति
मध्यम पुरुष	वसि	वथः	वथ
उत्तम पुरुष	वामि	वावः	वामः

17.4.3 लोट् लकार आज्ञा आदि के अर्थ में होता है।

	ए0व0	**द्वि0 व0**	**ब0व0**
प्रथम पुरुष	वतु	वताम्	वन्तु
मध्यम पुरुष	व	वतम्	वत
उत्तम पुरुष	वानि	वाव	वाम

17.4.4 लृट् लकार विष्य काल के अर्थ में होता है।

	ए0व0	**द्वि0 व0**	**ब0व0**
प्रथम पुरुष	विष्यति	विष्यतः	विष्यन्ति
मध्यम पुरुष	विष्यसि	विष्यथः	विष्यथ
उत्तम पुरुष	विष्यामि	विष्यावः	विष्यामः

17.4.5 लङ् लकार ूतकाल का द्योतक है।

	ए0व0	**द्वि0 व0**	**ब0व0**
प्र0 पु0	अ वत्	अ वताम्	अ वन्
म0 पु0	अ वः	अ वतम्	अ वत
उ0 पु0	अ वम्	अ वाव	अ वाम

17.4.6 विधिलिङ् लकार – विधि आदि अर्थ के लिए

	एक0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	वेत्	वेताम्	वेयुः
म0 पु0	वेः	वेतम्	वेत
उ0 पु0	वेयम्	वेव	वेम

17.4.7 भ्वादिगण का 'पठ्' धातु

'पठ्' धातु पढ़ने के अर्थ में प्रयोग होता है। प्रत्यय लगाने पर इसके भ्वादिगण में विविध रूप बनते हैं।

17.4.8 लट् लकार में 'पठ्' धातु के रूप

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	पठति	पठतः	पठन्ति
म0 पु0	पठसि	पठथः	पठथ
उ0 पु0	पठामि	पठावः	पठामः

17.4.9 लोट लकार

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	पठतु	पठताम्	पठन्तु
म0 पु0	पठ	पठतम्	पठत
उ0 पु0	पठानि	पठाव	पठाम

17.4.10 लृट् लकार

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	पठिष्यति	पठिष्यतः	पठिष्यन्ति
म0 पु0	पठिष्यसि	पठिष्यथः	पठिष्यथ
उ0 पु0	पठिष्यामि	पठिष्यावः	पठिष्यामः

17.4.11 लङ् लकार

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	अपठत्	अपठताम्	अपठन्

म0 पु0	अपठः	अपठतम्	अपठत
उ0 पु0	अपठम्	अपठाव	अपठाम

17.4.12 विधिलिङ लकार

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
म0 पु0	पठेः	पठेतम्	पठेत
उ0 पु0	पठेयम्	पठेव	पठेम

17.4.13 भ्वादिगण का 'गम्' धातु

'गम्' धातु गमन के अर्थ में प्रयुक्त होता है। विष्यत् काल (लृट् लकार) में इसी रूप में प्रत्यय लगते हैं, जबकि अन्य लकारों में 'गम्' का रूप 'गच्छ्' हो जाता है और उसके साथ प्रत्यय लगते हैं।

17.4.14 लट् लकार में 'गम्' धातु का रूप

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति
म0 पु0	गच्छसि	गच्छथः	गच्छथ
उ0 पु0	गच्छामि	गच्छावः	गच्छामः

17.4.15 लोट् लकार

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
म0 पु0	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
उ0 पु0	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम

17.4.16 लृट लकार

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
म0 पु0	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ

उ0 पु0	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

17.4.17 लङ् लकार

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	अगच्छत्	अगच्छताम्	अगच्छन्
म0 पु0	अगच्छः	अगच्छतम्	अगच्छत
उ0 पु0	अगच्छम्	अगच्छाव	अगच्छाम

17.4.18 विधिलिङ् लकार

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	गच्छेत्	गच्छेताम्	गच्छेयुः
म0 पु0	गच्छेः	गच्छेतम्	गच्छेत
उ0 पु0	गच्छेयम्	गच्छेव	गच्छेम

17.4.19 भ्वादिगण का 'स्था' धातु

'स्था' धातु ठहरने अथवा बैठने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। स्था धातु तिष्ठ के रूप में प्रत्यय लगने पर लटादि लकारों में प्रयुक्त होती है, परन्तु लृट् लकार में 'स्था' के रूप में ही चलती है।

17.4.20 लट् लकार में 'स्था' धातु का रूप

	ए0व0	द्वि0 व0	ब0व0
प्र0 पु0	तिष्ठति	तिष्ठतः	तिष्ठन्ति
म0 पु0	तिष्ठसि	तिष्ठथः	तिष्ठथ
उ0 पु0	तिष्ठामि	तिष्ठावः	तिष्ठामः

17.4.21 लोट् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	तिष्ठतु	तिष्ठताम्	तिष्ठन्तु
म0 पु0	तिष्ठ	तिष्ठतम्	तिष्ठत
उ0 पु0	तिष्ठानि	तिष्ठाव	तिष्ठाम

17.4.22 लृट् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	स्थास्यति	स्थास्यतः	स्थास्यन्ति
म0 पु0	स्थास्यसि	स्थास्य :	स्थास्य
उ0 पु0	स्थास्यामि	स्थास्यावः	स्थास्यामः

17.4.23 लङ् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	अतिष्ठत्	अतिष्ठताम्	अतिष्ठन्
म0 पु0	अतिष्ठः	अतिष्ठतम्	अतिष्ठत
उ0 पु0	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम

17.4.24 विधिलिङ् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	तिष्ठेत्	तिष्ठेताम्	तिष्ठेयुः
म0 पु0	तिष्ठेः	तिष्ठेतम्	तिष्ठेत
उ0 पु0	तिष्ठेयम्	तिष्ठेव	तिष्ठेम

17.4.25 भ्वादिगण का 'दृश्' धातु

'दृश्' धातु देखने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। यह ी भ्वादिगण का धातु है। लटादि में 'दृश्' के **'पश्य'** के रूप में रूप चलते हैं। केवल लृट् में दृश् = द्रक्ष्य हो जाता है।

17.4.26 लट् लकार में 'दृश्' धातु का रूप

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	पश्यति	पश्यतः	पश्यन्ति
म0 पु0	पश्यसि	पश्यथः	पश्यथ
उ0 पु0	पश्यामि	पश्यावः	पश्यामः

17.4.27 लोट् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	पश्यतु	पश्यताम्	पश्यन्तु
म0 पु0	पश्य	पश्यतम्	पश्यत
उ0 पु0	पश्यानि	पश्याव	पश्याम

17.4.28 लृट् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
म0 पु0	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उ0 पु0	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

17.4.29 लङ् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	अपश्यत्	अपश्यताम्	अपश्यत्
म0 पु0	अपश्यः	अपश्यतम	अपश्यत
उ0 पु0	अपश्यम्	अपश्याव	अपश्याम

17.4.30 विधिलिङ् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	पश्येत्	पश्येताम्	पश्येयुः
म0 पु0	पश्येः	पश्येतम्	पश्येत
उ0 पु0	पश्येयम्	पश्येव	पश्येम

17.5 अदादिगण और 'हन्' तथा 'अद्' धातुओं के रूप

भ्वादिगण के पश्चात् दश गणों में दूसरा स्थान अदादिगण का आता है। इसके धातुओं के रूपों में प्रत्यय लगने पर भ्वादिगण के धातुरूपों से थोड़ी िन्नता होती है। इसके प्रमुख धातुओं में से 'हन्' (मारना) और अद् (खाना) पाठ्यक्रम में निर्धारित हैं। इनके साथ प्रत्यय लगने पर लटादि में इनके रूप इस प्रकार बनते हैं –

17.5.1 अदादिगण और 'हन्' धातु

अदादिगण का 'हन्' धातु मारने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। इसके साथ प्रत्यय लगने पर इसके रूपों की भ्वादिगण की धातुओं के रूपों से िन्नता स्पष्ट झलकती है।

17.5.2 लट् लकार में 'हन्' धातु का रूप

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	हन्ति	हतः	ध्नन्ति
म0 पु0	हन्सि	हथः	हथ
उ0 पु0	हन्मि	हन्वः	हन्मः

17.5.3 लोट लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	हन्तु	हताम्	ध्नन्तु
म0 पु0	जहि	हतम्	हत
उ0 पु0	हनानि	हनाव	हनाम

17.5.4 लृट् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति
म0 पु0	हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
उ0 पु0	हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः

17.5.5 लङ् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	अहन्	अहताम्	अध्नन्
म0 पु0	अहन्	अहतम्	अहत
उ0 पु0	अहनम्	अहन्व	अहन्म

17.5.6 विधिलिङ् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म0 पु0	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ0 पु0	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

17.5.7 अदादिगण और 'अद्' धातु

अदादिगण का 'अद्' धातु खाने के अर्थ में प्रयुक्त होता है। 'अद्' धातु से प्रारम्भ होने वाले अदादिगण के रूप को समझ लेने से पता चल जायेगा कि इस गण के रूप बनाने की पृथक् प्रक्रिया होती है

17.5.8 लट् लकार में 'अद्' धातु का रूप

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	अत्ति	अत्तः	अदन्ति
म0 पु0	अत्सि	अत्थः	अत्थ
उ0 पु0	अद्मि	अद्वः	अद्मः

17.5.9 लोट लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	अत्तु	अत्ताम्	अदन्तु
म0 पु0	अद्धि	अत्तम्	अत्त
उ0 पु0	अदानि	अदाव	अदाम

17.5.10 लृट् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	अत्स्यति	अत्स्यतः	अत्स्यन्ति
म0 पु0	अत्स्यसि	अत्स्यथः	अत्स्यथ
उ0 पु0	अत्स्यामि	अत्स्यावः	अत्स्यामः

17.5.11 लङ् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	आदत्	आत्ताम्	आदन्
म0 पु0	आदः	आत्तम्	आत्त
उ0 पु0	आदम्	आद्व	आद्म

17.5.12 विधिलिङ् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म0 पु0	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उ0 पु0	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

17.6 सारांश

संस्कृत ाषा में नाम (शब्द), धातु, उपसर्ग, निपात के रूप में चार प्रकार के प्रमुख शब्द हैं, जिनका ज्ञान होना बहुत आवश्यक है। जहाँ पर नामों के त्रिलिङ्ग ज्ञान के साथ–साथ उनके कर्तादि कारकों (प्रथमादि वि क्तियों) सहित वचनों को जानना जरूरी है, वहीं उनके क्रिया व्यापार के लिये धातुओं के दश गणों एवं उनमें बनने वाले रूपों के नियमों का सम्यक् बोध ी आवश्यक है। पाठ्यक्रम में केवल भ्वादिगण के ू पठ्, गम्, स्था, दृश् और अदादिगण के 'हन्' तथा 'अद्' धातुओं के रूप ही लटादि पाँच लकारों में निर्धारित हैं, तथापि अन्य गणों व उनकी धातुओं का ज्ञान ी संस्कृत ाषा के साहित्य को पढ़ने, समझने अथवा संवाद के लिये आवश्यक है। प्रायः एक गण की धातु के लिये जो रूप बनाने के प्रक्रिया नियम हैं, वही उस गण की अन्य धातुओं के रूप बनाने पर ी लागू होते हैं। अतः उनको स्मरण कर लेना चाहिये।

17.7 परीक्षार्थ प्रश्नों के नमूने

परीक्षा में धातु रूपों का ज्ञान जानने के लिये निम्नलिखित प्रकार के सम ावित नमूने दिये जा रहे हैं–

(क) ू गम्, दृश् और हन् धातुओं के लृट्, लकार में स ी पुरुषों और वचनों के रूप लिखिये ?

(ख) यथानिर्देश रूप लिखिये –

स्था (लङ्, उ0पु0), अद् (लट्, म0पु0), पठ् (लोट, प्र0पु0), हन् (वि0लि0, उ0पु0) ?

(ग) गम् (लोट), स्था (लङ्), दृश् (लृट्) अद् (विधिलिङ्) ?

(घ) ' ' और 'हन्' धातुओं के रूप लिखिये ?

(ङ) 'अद्' (लट्, म0पु0, ए0व0), स्था (लोट, उ0पु0, ब0 व0) ?

17.8 प्रश्नों के समाधान

15.7 के (क) से (ङ) तक प्रश्नों के उत्तर क्रमशः इस प्रकार हैं –

(क) : व (लृट् लकार)

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	विष्यति	विष्यतः	विष्यन्ति
म0 पु0	विष्यसि	विष्यथः	विष्यथ
उ0 पु0	विष्यामि	विष्यावः	विष्यामः

गम् = गच्छ् (लृट् लकार)

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	गमिष्यति	गमिष्यतः	गमिष्यन्ति
म0 पु0	गमिष्यसि	गमिष्यथः	गमिष्यथ
उ0 पु0	गमिष्यामि	गमिष्यावः	गमिष्यामः

दृश् = पश्य (लृट् लकार)

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
म0 पु0	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उ0 पु0	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

हन् (लृट् लकार)

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति

म0 पु0	हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
उ0 पु0	हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः

(ख) स्था = तिष्ठ् (लङ् लकार)

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
उत्तम पुरुष	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम
		अद् (लृट् लकार)	
मध्यम पुरुष	अत्सि	अत्थः	अत्थ
		पठ् (लोट लकार)	
प्रथम पुरुष	पठतु	पठताम्	पठन्तु
		हन् (विधिलङ् लकार)	
उत्तम पुरुष	हन्याम्	हन्याव	हन्याम
		गम् = गच्छ (लोट लकार)	
प्र0 पु0	गच्छतु	गच्छताम्	गच्छन्तु
म0 पु0	गच्छ	गच्छतम्	गच्छत
उ0 पु0	गच्छानि	गच्छाव	गच्छाम
		स्था= तिष्ठ् (लङ् लकार)	
प्र0 पु0	अतिष्ठत्	अतिष्ठाम्	अतिष्ठन्
म0 पु0	अतिष्ठः	अतिष्ठम्	अतिष्ठत
उ0 पु0	अतिष्ठम्	अतिष्ठाव	अतिष्ठाम
		दृश= पश्य (लृट् लकार)	
प्र0 पु0	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
म0 पु0	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उ0 पु0	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः
		अद् (विधिलिङ् लकार)	

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म0 पु0	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उ0 पु0	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

(घ) ़ = व (लट् लकार)

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	वति	वतः	वन्ति
म0 पु0	वसि	वथः	वथ
उ0 पु0	वामि	वावः	वामः

(लोट लकार)

प्र0 पु0	वतु	वताम्	वन्तु
म0 पु0	व	वतम्	वत
उ0 पु0	वानि	वाव	वाम

(लृट् लकार)

प्र0 पु0	विष्यति	विष्यतः	विष्यन्ति
म0 पु0	विष्यसि	विष्यथः	विष्यथ
उ0 पु0	विष्यामि	विष्यावः	विष्यामः

(लङ् लकार)

प्र0 पु0	अ वत्	अ वताम्	अ वन्
म0 पु0	अ वः	अ वतम्	अ वत
उ0 पु0	अ वम्	अ वाव	अ वाम

(विधिलिङ्)

प्र0 पु0	वेत्	वेताम्	वेयुः

म0 पु0	वेः	वेतम्	वेत
उ0 पु0	वेयम्	वेव	वेम
		हन् (लट् लकार)	
प्र0 पु0	हन्ति	हतः	हनन्ति
म0 पु0	हंसि	हथः	हथ
उ0 पु0	हन्मि	हन्वः	हन्मः
		(लोट् लकार)	
प्र0 पु0	हन्तु	हताम्	घ्नन्तु
म0 पु0	जहि	हतम्	हत
उ0 पु0	हनानि	हनाव	हनाम
		(लृट् लकार)	
प्र0 पु0	हनिष्यति	हनिष्यतः	हनिष्यन्ति
म0 पु0	हनिष्यसि	हनिष्यथः	हनिष्यथ
उ0 पु0	हनिष्यामि	हनिष्यावः	हनिष्यामः
		(लङ् लकार)	
प्र0 पु0	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
म0 पु0	अहन्	अहतम्	अहत
उ0 पु0	अहनम्	अहन्व	अहन्म
		(विधिलिङ् लकार)	
प्र0 पु0	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म0 पु0	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ0 पु0	हन्याम्	हन्याव	हन्याम
		(ङ) अद् (लट् लकार)	
म0 पु0	अत्सि		
		स्था (लोट् लकार)	
उ0 पु0			तिष्ठाम

17.9 अभ्यास कार्य

(i) छात्रों से अपेक्षित है कि वे पठ्, गम्, स्था, दृश्, (भ्वादिगण) और हन, अद् (अदादिगण) के रूपों को पाँचों लकारों में स्मरण करें एवं अभ्यास करें ?

(ii) अग्रलिखित प्रश्नों के उत्तर लिखें :

(क) (लोट), स्था (लृट्), दृश् (लृट्), अद् (लङ्), हन् (विधिलिङ) ? में रूप लिखें ?

(ख) पठ् और गम् के रूप स ी लकारों में लिखें ?

(ग) स्था (लट्, उ0 पु0), दृश् (लृट्, म0 पु0) अद् (लोट् उ0 पु0), हन् (लङ्, प्र0 पु0) ?

(घ) (वि0 लि0, लट्), स्था (लृट, लङ्), अद् (लोट, लृट), हन् (वि. लि., लट्) ?

(ङ) दृश्, (लृट्, म0 पु0, ए0 व0), स्था (लोट् उ0 पु0, ब0 व0) ?

17.10 उपयोगी पुस्तकें

बृहद् अनुवाद चन्द्रिका, व्याकरण प्रबोध, व्याकरण प्रदीप आदि।

चतुर्थ खण्ड (भाग–ख)

पाठ संख्या 18

रूपरेखा

पाठशीर्षकः.संस्कृत तिङन्त क्रियापदों के रूप

18.1 उद्देश्य

18.2 पाठ–परिचय

18.3 आधार पाठ

18.3.1 परस्मैपदी तिङ् प्रत्यय

18.3.2 आत्मनेपदी तिङ् प्रत्यय

18.3.2.1 एध् धातु लट् लकार, आत्मनेपद

18.4 लक्ष्यपाठ

18.5 सारांश

18.6 उपयोगी पुस्तकें

शीर्षक : संस्कृत तिङन्त क्रियापदों के रूप

18.1. उद्देश्य

(क) इस पाठ को हृदयङ्गम करने के पश्चात् विद्यार्थी निम्नलिखित संस्कृत धातुओं के लट्, लृट, लोट्, लङ् और विधिलिङ् इन पांच लकारों में बनने वाले क्रियारूपों को समझ सकेंगें।

जुहोत्यादि गण के'दा' और 'धा' धातुओं के रूप।

दिवादि गण के'दिव्' और 'नृत्' धातुओं के रूप।

चुरुदिगण के'चुर्', 'कथ्' और क्ष् धातुओं के रूप।

(ख) इन धातुओं की तिङन्त रूपावली ठीक से समझने एवं कण्ठस्थ कर लेने पर विद्यार्थियों को इन धातुओं के अतिरिक्त इन्हीं गणों के अन्य धातुओं के रूपों को समझने में ी सहायता मिलेगी।

18.2. पाठ–परिचय

इस पाठ में संस्कृत ाषा की कतिपय बहुप्रचलित धातुओं की लट्, लृट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् इन पांच लकारों में बनने वाली रूपावली दी गई है। संस्कृत ाषा में क्रिया की अि व्यक्ति इन्हीं धातु रूपों द्वारा की जाती है।

जैसे :

- रमेशः पाठं **पठति** – रमेश पाठ पढ़ता है।
- बालकः दुग्धं **पिबति** – लड़का दूध पीता है।
- शिशुः मातुः क्रोडे **शेते** – बच्चा माँ की गोद में सोता है।
- पिता पुत्रं **कथयति** – पिता बेटे को कहता है।

इन वाक्यों में रमेश पढ़ने का काम करता है। लड़का पीने का काम करता है। बच्चा सोने का काम करता है। पिता कहने का काम करता है।

उपर्युक्त चार वाक्यों में रेखांकित क्रियाओं से चार िन्न–िन्न कार्य–व्यापारों का होना सूचित हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि 'क्रिया' का अर्थ है – करना। अर्थात् जिस शब्द से कर्ता के व्यवहार पर कार्य का होना प्रकट होता है, उसे 'क्रिया' कहते हैं। संस्कृत क्रिया पद की रचना मूलतः 'धातु' से होती है, अतः अब हम 'धातु' क्या है ? यह देखेंगे :–

18.3. – आधार पाठ :

धातु

संस्कृत में क्रिया के मूल रूप को 'धातु' कहते हैं। अंग्रेजी में इसे 'रुट' (Root) कहते हैं– अर्थात् क्रिया के मूल रूप का नाम 'धातु' है। पठ्, लिख्, गम्, हस्, धाव्, दिव्,

नृत्, चुर्, कथ्, क्ष् आदि संस्कृत के कुछ धातु हैं। संस्कृत ाषा में लग ग 2000 'धातु' हैं, जिनमें प्रयोग में आने वाले धातु करीब 300 हैं। संस्कृत के लग ग 2000 धातुओं को रूपरचना की समानता के आधार पर दस गणों (वर्गों) में वि क्त किया गया है। इन्हीं धातुओं के साथ 'तिङ्' प्रत्ययों को जोड़कर संस्कृत क्रिया के रूपों की रचना होती है। कर्ता के तीन पुरुष और तीन वचन के लिए अलग–अलग नौ तिङ् प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं के साथ जुड़ते हैं, और अन्य नौ प्रत्यय आत्मनेपदी धातुओं के साथ जुड़ते हैं। इस प्रकार – 'तिप्' से लेकर 'महिङ्' तक के 18 प्रत्यय 'तिङ्' प्रत्यय कहलाते हैं। तीन पुरुषों, तीन वचनों को प्रकट करने वाले तिङ् प्रत्यय इस प्रकार हैं :–

18.3.1 (क) परस्मैपदी तिङ् प्रत्यय :–

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	तिप्[1]	तस्[2]	झि[3]
मध्यम पुरुष	सिप्[4]	थस्[5]	थ[6]
उत्तम पुरुष	मिप्[7]	वस्[8]	मस्[9]

18.3.2 (ख) आत्मनेपदी तिङ्प्रत्यय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	त[10]	आताम्[11]	झ[12]
मध्यम पुरुष	थ[13]	आथाम्[14]	घ्वम्[15]
उत्तम पुरुष	इट्[16]	वहिङ्[17]	महिङ्[18]

3 वचन x 3 पुरुष त्र् x आत्मनेपद* परस्मैपद = 18

इन 18 प्रत्ययों में 1–9 प्रत्यय परस्मैपदी धातुओं के साथ जुड़ते हैं और 10–18 प्रत्यय आत्मने पदी धातुओं के साथ।

उदाहरणार्थ, परस्मैपदी 'पठ्' धातु से वर्तमान कालार्थ बोध के लिए 'तिङ्' प्रत्यय जोड़ने पर निम्नलिखित नौ क्रिया रूप बनते हैं :–

'पठ्' (पढ़ना) धातु, परस्मैपद लट् लकार :–

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	पठति[1]	पठतः[2]	पठन्ति[3]

मध्यम पुरुष	पठसि[4]	पठथः[5]	पठथ[6]
उत्तम पुरुष	पठामि[7]	पठावः[8]	पठामः[9]

18.3.2.1 एध् (बढना) धातु, आत्मने पद, लट् लकार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	एधते	एधेते	एधन्ते
मध्यम पुरुष	एधसे	एधेथे	एधध्वे
उत्तम पुरुष	एधे	एधावहे	एधामहे

नीचे लिखे उदाहरणों को ध्यान से पढें :–

1. रमेशः पाठं पठति = रमेश पाठ पढ़ता है।
2. रमेश–सुरेशौ पाठं पठतः = रमेश और सुरेश पाठ पढ़ते हैं।
3. रमेश–सुरेश–दीनेशाः पाठं पठन्ति = रमेश, सुरेश और दीनेश पाठ पढ़ते हैं।
4. त्वं पाठं पठसि = तूं पाठ पढ़ता है।
5. युवाम् पाठं पठथः = तुम दो पाठ पढ़ते हो।
6. यूयम् पाठं पठथ = तुम सब पाठ पढ़ते हो।
7. अहं पाठम् पठामि = मैं पाठ पढ़ता हूँ।
8. आवाम् पाठं पठावः = हम दोनों पाठ पढ़ते हैं।
9. वयं पाठं पठामः = हम सब पाठ पढ़ते हैं।

उपर्युक्त स ी वाक्यों में पढ़ने की क्रिया हो रही है। और यह क्रिया वर्तमान काल में हो रही है। परन्तु क्रिया रूप स ी वाक्यों में पृथक्–पृथक् हैं। इन उदाहरणों को ध्यान से पढ़ने पर आप समझ सकेंगे कि प्रथम वाक्य में पढ़ने वाला रमेश है, वह **प्रथम पुरुष** और **एक वचन** है, इसलिए क्रिया का रूप ी पठ् धातु के लट् लकार के **प्रथम पुरुष, एकवचन** का प्रयुक्त हुआ है।

♦ दूसरे वाक्य में पढ़ने वाले दो (रमेश–सुरेशौ) हैं। ये ी प्रथम पुरुष ही हैं। अतः क्रिया (पठतः) ी **प्रथम पुरुष**, द्विवचन की प्रयुक्त हुई है।

- तृतीय वाक्य में कर्ता (पढ़नेवाले) तीन (रमेश–सुरेश–दीनेशाः) हैं, क्रिया ी तदनुसार प्रथम पुरुष, बहुवचन की प्रयोग में लाई गई है।
- चतुर्थ, पञ्चम और शश्ठ वाक्यों में कर्ता (पढ़ने वाले) मध्यमपुरुष के क्रमशः एकवचन, द्विवचन, तथा बहुवचन में हैं, अतः क्रियारूप ी तदनुसार क्रमशः एकवचन (पठसि), द्विवचन (पठथः) तथा बहुवचन (पठथ) के ही प्रयुक्त हुए हैं।
- इसी प्रकार सप्तम, अष्टम और नवम वाक्यों में ी कर्ता के पुरुष एवं वचन (संख्या) के हिसाब से पठामि, पठावः और पठामः इन तीन क्रियारूपों का प्रयोग हुआ है।

नोटः संस्कृत और English में **'पुरुष'** के प्रयोग में यह बात ध्यान देने की है कि संस्कृ त में जो 'प्रथम पुरुष' है, वह अंग्रेजी में 'Third Person' है, और जो संस्कृत में 'उत्तम पुरुष' है, वह अग्रंजी 'First Person' है। अतः छात्रों को संस्कृत के 'प्रथम पुरुष' को अंग्रेजी का 'First Person' समझने की ूल नहीं करनी चाहिए।

उपर जो 9 (नौ) उदाहरण दिए गये हैं, उन सब में क्रिया (पढ़ना) वर्तमान काल में हो रही हैं, अतः उसके बोध के लिए पठ् धातु के साथ वर्तमानकाल के सूचक लट् लकार के क्रिया रूपों का प्रयोग हुआ है। अर्थात् संस्कृत में लट् लकार में बनने वाले क्रिया रूप वर्तमानकाल के बोधक हैं। 'लट् लकार' संस्कृत के दस (10) लकारों में से एक है। विष्यत् काल के बोध के लिए लुट् और लृट् इन दो लकारों के क्रिया रूप प्रयुक्त होते हैं, तथा ूतकाल के बोध के लिए लङ् और लुङ् इन दो लकारों के क्रिया रूपों का प्रयोग होता है। दस लकारों के नाम तथा इनके अर्थ इस प्रकार हैं :—

लकार		अर्थ
1. लट	:	वर्तमानकाल (Present Tense) /
2. लिट्	:	वक्ता के जीवन से पूर्व की क्रिया (परोक्ष ूत) (Past Perfect) /
3. लुट्	:	अनद्यतन विष्यत् (आज के बाद ही होने वाली क्रिया, First Future)/
4. लृट्	:	सामान्य विष्यत् (आज या आज के बाद क ी ी होने वाली क्रिया, Second Future)!
5. लोट्	:	आज्ञा, प्रार्थना आदि (Imperative Mood) /
6. लङ्	:	अनद्यतन ूत (जो क्रिया आज से पहले हो चुकी हो, Past Perfect Tense) /

7. विधिलिङ् : आज्ञा, निमन्त्रण, आशंसा आदि (Potential Mood) /

8. आशीर्लिङ् : आशीर्वाद (Bendedictive) /

9. लुङ् : सामान्य ूत (Aorist, Indefinite Past Tense)

10. लङ् : हेतुहेतुमद्भाव, क्रियातिपत्ति (Conditional) /

नोट: वैदिक संस्कृत में लौकिक संस्कृत के इन दस लकारों के अतिरिक्त 'सं ावनार्थक' 'लेट्' लकार ी मिलता है, अतः वहां लकारों की संख्या 11 (ग्यारह) हो जाती है।

18.4 – लक्ष्य पाठ

18.4.1 महत्त्व :– इस शीर्षक के अन्तर्गत B.A. Ist Semester, Sanskrit, के पाठ्यक्रम में निर्धारित धातुओं का लट्, लृट्, लोट्, लङ् और विधिलिङ् इन पाँच लकारों में बनने वाली धातु रूपावली को देकर उनके प्रयोग को समझाने का प्रयास किया जाएगा। छात्रों को चाहिए कि वे इन धातु रूपों को कण्ठस्थ कर इसके शुद्ध उच्चार एवं लिखने का बार–बार अभ्यास करें। ये धातुरूप परीक्षा की दृष्टि से तो उपयोगी हैं ही, संस्कृत बोलने या किसी अन्य ाषा का संस्कृत में अनुवाद करने के लिए ी नितान्त उपयोगी हैं

18.4.2 – धातु रूपावली

धातु : 'दा'

अर्थ : देना

पद : उमयपदी

गण : जुहोत्यादिगण। सकर्मक, अनिट्।

18.4.2.1 'दा' धातु का लट् लकार में रूप :–

(i) **परस्मैपद में**

	एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	ददाति	दत्तः	ददति
मध्यम पुरुष	ददासि	दत्थः	दत्थ
उत्तम पुरुष	ददामि	दद्वः	दद्मः।

नोट :–दा धातु उमयपदी है– अर्थात् इसके प्रत्येक लकार में दो–दो क्रिया रूप बनते हैं, एक परस्मैपद में दूसरा आत्मने पद में। छात्रों को दोनों रूपों को स्मरण करने चाहिएं।

दा धातु लट् लकार

18.4.2.2 (ii) आत्मने पद के रूप

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	दत्ते	ददाते	ददते
म0 पु0	दत्से	ददाये	दद्ध्वे
उ0 पु0	ददे	दद्वहे	दद्महे।

यहां ए0 व0 = एकवचन, द्वि0 व0 = द्विवचन, ब0 व0 = बहुवचन, प्र0 पु0 = प्रथम पुरुष, म0 पु0 = मध्यम पुरुष, उ0 पु0 = उत्तम पुरुष के बोधक हैं!

'दा' धातु लृट् लकार के रूप

18.4.3.1 परस्मैपद में –

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	दास्यति	दास्यतः	दास्यन्ति
म0 पु0	दास्यसि	दास्यथः	दास्यथ
उ0 पु0	दास्यामि	दास्यावः	दास्यामः।

18.4.3.2 आत्मने पद में –

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म0 पु0	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ0 पु0	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे।

18.4.4.1 'दा' 'धातु' लोट् लकार के रूप :–

(i) परस्मैपद में

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	ददातु	दत्ताम्	ददतु

म0 पु0	देहिदत्तात्	दत्तम्	दत्त
उ0 पु0	ददानि	ददाव	ददाम

18.4.4.2 आत्मने पद में :–

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	दत्ताम्	ददाताम्	ददताम्
म0 पु0	दत्स्व	ददाथाम्	दद्ध्वम्
उ0 पु0	ददै	ददावहै	ददामहै

18.4.5 'दा' धातु का लङ् लकार में रूप :–

18.4.5.1 परस्मैपद में –

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	अददात्	अदत्ताम्	अददुः
म0 पु0	अददाः	अदत्तम्	अदत्त
उ0 पु0	अददाम्	अदद्व	अदद्म

18.4.5.2 आत्मने पद में

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	अदत्त	अददाताम्	अददत
म0 पु0	अदत्थाः	अददाथाम्	अदद्ध्वम्
उ0 पु0	अददि	अदद्वहि	अदद्महि

18.4.6 'दा' 'धातु' विधिलिङ् के रूप :–

18.4.6.1 (i) परस्मैपद में

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	दद्यात्	दद्याताम्	दद्युः
म0 पु0	दद्या	दद्यातम्	दद्यात

उ0 पु0	दद्याम्	दद्याव	दद्याम।

18.4.6.2 (ii) आत्मने पद में

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	ददीत	ददीयाताम्	ददीरन्
म0 पु0	ददीथाः	ददीयाथाम्	ददीध्वम्
उ0 पु0	ददीय	ददीवहि	ददीमहि।

उदाहरण

जैसा कि ऊपर बताया गया है, ये क्रिया रूप (धातु रूप) वर्तमान आदि कालों, वृत्तियों तथा मूड आदि की अि व्यक्ति करते हैं। काल, वचन, पुरुष आदि के आधार पर इनका प्रयोग होता है। लट् आदि लकारों के क्रिया रूप को ठीक से समझने के लिए कुछ उदाहरण लें :

1. लट् लकार के धातुरूपों का प्रयोग

लट् लकार का प्रयोग वर्तमान काल के अर्थ में होता है। 'दा' धातु के लट् लकार में (परस्मैपद में) नौ रूप दिये गए हैं। इनका प्रयोग कर्ता के (देने वाले के), पुरुष, वचन के अनुसार होता है – उदाहरणार्थ :–

(i) सः निर्धनाय धनं **ददाति** – वह निर्धन को धन देता है।

(ii) त्वं निर्धनाय धनं **ददासि** – तूँ निर्धन को धन देता है।

(iii) **अहं** निर्धनाय धनं ददामि – मैं निर्धन को धन देता हूँ।

(iv) प्रथम वाक्य में देने वाला (सः) अन्यपुरुष या प्रथमपुरुष है, और वह एक है, अतः उसके साथ क्रिया ी प्रथम पुरुष, एकवचन की आई है।

(v) द्वितीय वाक्य में दाता मध्यम पुरुष एकवचन (त्वम्) में हैं, अतः उसके लिए क्रिया ी मध्यम पुरुष एक वचन की है।

(vi) तृतीय वाक्य में दाता (कर्ता) उत्तम पुरुष एकवचन में (अहम्) है, उसके साथ क्रिया ी उत्तम पुरुष एक वचन की प्रयुक्त हुई है। इन तीनों वाक्यों में देने की क्रिया वर्तमान काल में हो रही है, अतः क्रिया के तीनों रूप (ददाति, ददासि, ददामि) लट् लकार के हैं।

इसी प्रकार यदि कर्ता (दान देने वाले) दो या तीन होंगे तो क्रिया ी द्विवचन या बहुवचन की ही आएगी; जैसेः–

ते ददति = वे देते हैं (प्र0 पु0, ब0 व0)

यूयम् दत्य = तुम सब देते हो (म0 पु0, ब0 व)

वयम् दद्मः = हम सब देते हैं (उ0 पु0, ब0 व0)।

'दा' धातु उमयपदी है – अर्थात् इसके रूप आत्मने पद में ी बनते हैं और परस्मैपद में ी। इस प्रकार दा धातु जैसे उमयपदी धातुओं के प्रत्येक लकारों में अट्ठारह–अट्ठारह (9 x 2 = 18) क्रिया रूप बनते हैं। ऊपर 'सः निर्धनाय धनं ददाति' आदि तीन उदाहरणों में 'दा' धातु के लट् लकार परस्मैपदी धातुरूप प्रयुक्त किये गये हैं– ददाति, ददासि, ददामि– इनके साथान पर आत्मनेपदी धातुरूपों को प्रयुक्त कर इस प्रकार ी लिख या बोल सकते हैं–

(i) सः निर्धनाय धनं दत्ते = वह निर्धन को धन देता है।

(ii) त्वं निर्धनाय धनं दत्से = तूँ निर्धन को धन देता है।

(iii) अहम् निर्धनाय धनं ददे = मैं निर्धन को धन देता हूँ।

2) **लृट् लकार के धातु रूपों का प्रयोग**

इस लकार का अर्थ सामान्य विष्यत्काल को द्योतित करता है, जैसे –

(i) सः निर्धनाय धनं **दास्यति** = वह निर्धन (गरीब) को धन देगा।

(ii) त्वं निर्धनाय धनं दास्यसि = तूँ ,, ,, ,, ,, देगा।

(iii) अहम् निर्धनाय धनं दास्यामि = मैंः ,, ,, ,, ,, दूंगा।

इसी प्रकार दास्यति आदि क्रियारूपों के स्थान पर आत्मनेपदी 'दास्यते' आदि रूपों का प्रयोग ी किया जा सकता है :–

i. सः .... दास्यते = वह .... देगा।

ii. त्वत् .... दास्यसे = तूँ .... देगा।

iii. अहम् .... दास्ये = मैं .... दूंगा।

3) **लोट् लकार के धातुरूपों का प्रयोग :–**

विधि, आज्ञा, आशीर्वाद अर्थ को प्रकट करने के लिए लोट् लकार के क्रिया रूपों (धातुरूपों) का प्रयोग होता है।

जैसे :–

i) मोहनः निर्धनाय धनं **ददातु** = मोहन गरीब को धन दे (आज्ञा)

ii) त्वं निर्धनाय धनं **देहि** = तूं गरीब को धन दे

iii) अहँ निर्धनाय धनं **ददानि** = मैं गरीब को धन दूँ ?

इसी प्रकार आत्मनेपदी धातुरूपों का प्रयोग होता है –

i) मोहनः ....दत्ताम्

ii) त्वम् .... दत्स्व

iii) अहम् ....ददै।

iv) ते .... ददताम् वे सब (निर्धन को धन)– दें।

v) यूयम् .... ध्वम्।

vi) वयम् .... ददाम है।

इसी प्रकार ूतकाल अर्थ को प्रकट करने के लिए 'दा' धातु के लङ्लकार के क्रिया रूपों का तथा आज्ञा, निमन्त्रण, प्रार्थना आदि अर्थ को प्रकट करने के लिए विधिलिङ् के धातुरुपों का प्रयोग करना चाहिए, जैसे –

दा धातु के लुङ् लकार के प्रयोग

1.	सः धनं अददात्	=	उसने धन दिया
2.	ते धनं अददुः	=	उन्होंने धन दिया
3.	त्वं धनं अददाः	=	तूँने धन दिया
4.	युयम् धनं अदत्त	=	तुम सबने धन दिया
5.	अहं धनं अददाम्	=	मैंने धन दिया
6.	वयं धनं अदद्म	=	हमनें धन दिया

एवमेव विधिलिङ्लकार के धातु रूपों का ी प्रयोग समझना चाहिए!

2) 'धा' धातु की रूपावली :–

धातु	:	धा
अर्थ	:	धारण करना पोषण करना
पद	:	उभय पदी
गण	:	जुहोत्यादिगण

'धा' धातु के लट् लकार के रूप (परस्मैपद में)

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	दधाति	धत्तः	दधति
म0 पु0	दधासि	धत्थः	धत्थ
उ0 पु0	दधामि	दध्वः	दध्मः

प्रयोग :–

1. सः वस्त्रं दधाति = वह वस्त्र धारण करता है।
2. ते वस्त्रं दधति = वे सब वस्त्र धारण करते हैं।
3. त्वं वस्त्रं दधासि = तूँ वस्त्र धारण करता है।
4. यूयम् वस्त्रं धत्थ = तुम सब वस्त्र धारण करते हो!
5. अहं वस्त्रं दधामि = मैं वस्त्र धारण करता हूँ।
6. वयं वस्त्रं दध्मः = हम सब वस्त्र धारण करते हैं।

'धा', 'धातु', लट् लकार, आत्मनेपदी रूप

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	धत्ते	दधाते	दधते
म0 पु0	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उ0 पु0	दधे	दध्वहे	दध्महे

'धा', 'धातु', लट् लकार, परस्मैपद में रूप

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	धास्यति	धास्यतः	धास्यन्ति
म0 पु0	धास्यसि	धास्यथः	धास्यथ
उ0 पु0	धास्यमि	धास्यावः	धास्यामः

(ii) आत्मनेपदी रूप

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0	धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
म0 पु0	धास्यसे	धास्येथे	धास्यध्वे
उ0 पु0	धास्ये	धास्यावहे	धास्यामहे

परस्मैपदे आत्मनेपेदे

सः धास्यति / धास्यते = वह धारण करेगा

ते धास्यन्ति / धास्यन्ते= वे धारण करेंगे

त्वं धास्यसि / धास्यसे = तूं धारण करेगा

यूयम् धास्यथ / धास्यध्वे = तुम सब धारण करोगे

अहम् धास्यामि / धास्ये = मैं धारण करूंगा

वयं धास्यामः / धास्यामहे = हम सब धारण करेंगे

iii) 'धा' धातु के लोट् लकार के रूप

i) परस्मैपद में

ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
दधातु / धत्तात्	धत्ताम्	दधतु
धेहि / धत्तात्	धत्तम्	धत्त
दधानि	दधाव	दधाम

(ii) आत्मनेपद में

	एo वo	द्विo वo	बo वo
	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
	धत्स्व	दधाथाम्	धद्ध्वम्
	दधै	दधावहै	दधामहै

प्रयोग

ते दधतु = वे धारण करें।

त्वम् धेहि = तूँ धारण कर।

वयम् दधाम = हम धारण करें।

'धा' धातु, लङ् लकार के रूप :

(परस्मैपद में)

	एo वo	द्विo वo	बo वo
प्रo पुo –	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः
मo पुo –	अदधाः	अधत्तम्	अधत्त
उo पुo –	अदधाम्	अवध्व	अदध्म

प्रयोग :–

सः अदधात् = उसने धारण किया

यूयम् अधत्त = तुम सबने धारण किया

आवाम् अदध्व = हम दोनों ने धारण किया, आदि।

आत्मनेपदी रूपों के लिए छात्र संस्कृत व्याकरण या रूपचन्द्रिका का सहयोग लें।

'धा' धातु का विधिलिङ् के रूप

(i) (परस्मैपद में)

प्रo पुo –	दध्यात्	दध्याताम्	दध्युः

म0 पु0 –	दध्याः	दध्यातम्	दध्यात
उ0 पु0 –	दध्याम्	दध्याव	दध्याम

(ii) (आत्मनेपद में)

प्र0 पु0 –	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
म0 पु0 –	दधीथाः	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
उ0 पु0 –	दधीय	दधीवहि	दधीमहि

3) 'दिव्' धातु की रूपावली

धातुः = 'दिव्'

अर्थः = खेलना

पदः = परस्मैपदी

गणः = दिवादि

लट् लकार

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0 –	दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति
म0 पु0 –	दीव्यसि	दीव्यथः	दीव्यथ
उ0 पु0 –	दीव्यामि	दीव्यावः	दीव्यामः

लृट् लकार

देविष्यति	देविष्यतः	देविष्यन्ति
देविष्यसि	देविष्यथः	देविष्यथ
देविष्यामि	देविष्यावः	दविष्यामः

लोट् लकार

दीव्यतु	दीव्यताम्	दीव्यन्तु
दीव्य	दीव्यतम्	दीव्यत

	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

लङ् लकार में

	एo वo	द्विo वo	बo वo
प्रo पुo –	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
मo पुo –	अदीव्यः	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उo पुo –	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

विधिलिङ् लकार में

एo वo	द्विo वo	बo वo
दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयुः
दीव्येः	दीव्येतम्	दीव्येत
दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

4. 'नृत्' धातु की रूपावली

धातुः = नृत्

अर्थः = नाचना

पद = परस्मैपदी

गणः = दिवादि

लट् लकार के रूप

नृत्यति	नृत्यतः	नृत्यन्ति
नृत्यसि	नृत्यथः	नृत्यथ
नृत्यामि	नृत्यावः	नृत्यामः

लृट् लकार के रूप

नर्तिष्यति	नर्तिष्यतः	नर्तिष्यन्ति
नर्तिष्यसि	नर्तिष्य्यथः	नर्तिष्यथ

	नर्तिष्यामि	नर्तिष्यावः	नर्तिष्यामः

लोट् लकार के रूप

एo वo	द्विo वo	बo वo	
प्रo पुo –	नृत्यतु	नृत्यताम्	नृत्यन्तु
मo पुo –	नृत्य	नृत्यतम्	नृत्यत
उo पुo –	नृत्यानि	नृत्याव	नृत्याम

लङ् लकार के रूप

अनृत्यत्	अनृत्यताम्	अनृत्यन्
अनृत्यः	अनृत्यतम्	अनृत्यत
अनृत्यम्	अनृत्याव	अनृत्याम

विधि लिङ् के रूप

नृत्येत्	नृत्येताम्	नृत्येयुः
नृत्येः	नृत्येतम्	नृत्येत
नृत्येयम्	नृत्येव	नृत्येम

नृत् के प्रयोग

सः नृत्यति = वह नाचता है

अहं नर्तिष्यामि = मैं नाचूंगा

सः नृत्यतु = वह नाचे (आज्ञा)

ते अनत्यन् = वे सब नाचे (ूतकाल)

त्वं नृत्येः = तूँ नाचे (इच्छा)

वयं नृत्येम = हम नाचें (इच्छा)!

5. 'चुर्' धातु के रूप

चुर् = चुराना

गण = चुरादि।

लट् लकार में

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0 –	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
म0 पु0 –	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
उ0 पु0 –	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः।

लृट् लकार में

	चोरयिष्यति	चोरयिष्यतः	चोरयिष्यन्ति
	चोरयिष्यसि	चोरयिष्यथः	चोरयिष्यथ
	चोरयिष्यामि	चोरयिष्यावः	चोरयिष्यामः

लोट् लकार में

	चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु
	चोरय	चोरयतम्	चोरयत
	चोरयाणि	चोरयाव	चोरयाम।

लङ् लकार में

	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
	अचोरयः	अचोरयतम्	अचोरयत
	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम।

विधिलिङ् लकार में

	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयुः
	चोरयेः	चोरयेतम्	चोरयेत
	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम।

6. 'कथ्' धातु के रूप — कथ् = कहना

लट् लकार में

	एo वo	द्विo वo	बo वo
प्रo पुo –	कथयति	कथयतः	कथयन्ति
मo पुo –	कथयसि	कथयथः	कथयथ
उo पुo –	कथयामि	कथयावः	कथयामः।

लृट् लकार में

कथयिष्यति	कथयिष्यतः	कथयिष्यन्ति
कथयिष्यसि	कथयिष्यथः	कथयिष्यथ
कथयिष्यामि	कथयिष्यावः	कथयिष्यामः।

लोट् लकार में

कथयतु	कथयताम्	कथयन्तु
कथय	कथयतम्	कथयत
कथयानि	कथयाव	कथयाम।

लङ् लकार में

अकथयत्	अकथयताम्	अकथयन्
अकथयः	अकथयतम्	अकथयत
अकथयम्	अकथयाव	अकथयाम।

विधिलिङ् लकार में

कथयेत्	कथयेताम्	कथयेयुः
कथयेः	कथयेतम्	कथयेत
कथयेयम्	कथयेव	कथयेम।

कथ् धातु के प्रयोग :–

सः कथयति = वह कहता है।

अहं कथयिष्यामि = मैं कहूँगा।

त्वं कथय = तूँ कह

ते अकथयन् = वे बोले (कहे)!

7. 'क्ष्' धातु के रूप   क्ष् = खाना

लट् लकार में

	ए0 व0	द्वि0 व0	ब0 व0
प्र0 पु0 –	क्षयति	क्षयतः	क्षयन्ति
म0 पु0 –	क्षयसि	क्षयथः	क्षयथ
उ0 पु0 –	क्षयामि	क्षयावः	क्षयामः।

लट् लकार में

क्षयिष्यति	क्षयिष्यतः	क्षयिष्यन्ति
क्षयिष्यसि	क्षयिष्यथः	क्षयिष्यथ
क्षयिष्यामि	क्षयिष्यावः	क्षयिष्यामः।

लोट् लकार में

क्षयतु	क्षयताम्	क्षयन्तु
क्षय	क्षयतम्	क्षयत
क्षयाणि	क्षयाव	क्षयाम।

लङ् लकार में

अ क्षयत्	अ क्षयताम्	अ क्षयन्
अ क्षय	अ क्षयतम्	अ क्षयत
अ क्षयम्	अ क्षयाव	अ क्षयाम।

विधिलिङ् में

क्षयेत्	क्षयेताम्	क्षयेयुः
क्षयेः	क्षयेतम्	क्षयेत

क्षयेयम्	क्षयेव	क्षयेम।

18.5 सारांश

संस्कृत में पठ् आदि धातुओं के 10 लकारों में वचन और पुरुष `द से कुल 90 रूप बनते हैं। 10 लकारों में कुछ काल के बोधक है । ये धातु रूप संस्कृत सीखने वाले स ी छात्रों को स्मरण करना चाहिए।

18.6 उपयोगी पुस्तकें :–

1. रूप चन्द्रिका, पं0 रामचन्द्र झा सम्पादित ।
2. बृहद् अनुवाद चन्द्रिका, चक्र धर 'हंस' नौटियाल।

g g g g g g

''लघुसिद्धान्त कौमुदी'' (भाग–ग)

शीर्षक : 'संज्ञाप्रकरणम्'

19.1 (क) सामान्य उद्देश्य

19.1 (ख) विशिष्ट उद्देश्य

19.2 पाठ परिचय (क), (ख), (ग), (घ)

19.3 मूलपाठ (क), (ख), (ग), (घ)

19.3.1 मूलवृत्ति ाग

19.3.2 अर्थ

19.3.3 टिप्पणी

19.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.5 प्रश्न

प्रश्न – 19.0 ''लघुसिद्धान्त कौमुदी''

शीर्षक : 'संज्ञाप्रकरणम्'

19.1 (क) सामान्य उद्देश्य

(अ) छात्रों को पाणिनीय व्याकरण से परिचित करवाना।

(आ) छात्रों को 'लघुसिद्धान्त कौमुदी' के 'संज्ञा प्रकरण' से परिचित करवाना।

(इ) छात्रों की तर्कशक्ति एवं रचनात्मक वृत्ति का विकास करना।

(ई) छात्रों को 'इत्संज्ञा' और 'लोप' से अवगत करवाना।

(उ) छात्रों को ाषा के गुण–दोषों को परखने की क्षमता प्रदान करना। जिससे वे शुद्ध लिख सकें।

19.1 (ख) विशिष्ट उद्देश्य ।

पाणिनि के चतुर्दश सूत्रों का परिचय देकर, प्रत्याहार बनाने की विधि को बताकर, ''उपदेश'' में वर्तमान अन्त्य व्यञ्जन इत्संज्ञक होते हैं और जिसकी इत्संज्ञा होती है उस का लोप हो जाता है।

19.2 पाठ परिचय

(क) यह आचार्य पाणिनीय का प्रथम सूत्र है। जिस का अर्थ है कि उपदेश अवस्था में अन्त्य हल् की इत्संज्ञा होती है। पाणिनि आदि आचार्यों के प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं। सूत्रों में न देखा गया पद दूसरे सूत्रों से अनुवर्तन कर लेना चाहिये, सब स्थानों में।

(ख) यह द्वितीय सूत्र है। विद्यमान के अदर्शन (न दिखाई देने) की लोप संज्ञा होती है।

(ग) यह संज्ञा प्रकरण में तृतीय सूत्र है। जिसका अर्थ है कि जिसकी लोप संज्ञा होती है, उसका लोप हो जाता है।

(घ) चतुर्थ सूत्र है। जिसका अर्थ है कि अन्त्य इत् के साथ उच्चार्यमाण आदि वर्ण मध्यगामी वर्णों का तथा अपना बोधक होता है। जैसे 'अण्' यह प्रत्याहार 'अ इ उ' इन वर्णों का बोधक है। ऐसे ही अक्–अच्–अल्–हल् इत्यादि प्रत्याहार जानने चाहिये।

19.3 मूल पाठ (सूत्र)

(क) हलन्त्यम् 1. 3. 3

19.3.1 मूलवृत्ति ाग – उपदेशेऽन्त्यं हलित् स्यात्। उपदेश आद्योच्चारणम्। सूत्रेष्वदृष्टं पदं सूत्रान्तरादनुवर्तनीयं सर्वत्र।

19.3.2 अर्थ उपदेश अवस्था में अन्त्य हल् की इत्संज्ञा होती है। पाणिनि आदि आचार्यों के प्रथम (आद्य) उच्चारण को उपदेश कहते हैं। ''हलन्त्यम्'' सूत्र में उपदेश और इत् पद नहीं हैं? इसका उत्तर यह है कि सूत्रों में न देखा गया (अदृष्ट) पद अन्य सूत्रों से ले लेना (अनुवृत्ति करना) चाहिये। आवश्यकता के अनुसार सब स्थानों में।

19.3.3 टिप्पणी –

हल् + अन्त्यम् = हलन्त्यम्।।

(अन्त्यम्) अन्त्य (अन्त में – 'अन्ते वमन्त्यम्' काशिका) (हल्) – हल् ....।

किन्तु अन्त्य हल् को क्या होता है इसका पता 'हलन्त्यम्' सूत्र से नहीं चलता। इस सूत्र के स्पष्टीकरण के लिए एक अन्य सूत्र ''उपदेशेऽजनुनासिक इत्'' से 'उपदेशे' और 'इत्' की अनुवृत्ति करनी होगी। सूत्र में स्थित 'अन्त्य' शब्द का अर्थ है अन्त में होने वाला और 'हल्' प्रत्याहार है।

प्रत्याहार क्या होता है? इसके उत्तर में कहा जा सकता है कि पाणिनि मुनि ने सम्पूर्ण वर्ण– समुदाय (अक्षर–समामा़य) को चौदह सूत्रों में प्रकट किया है, जिन्हें माहेश्वर सूत्र कहते हैं। ये चतुर्दश सूत्र हैं –

1. अइ उण् 2. ऋ लृक् 3. ए ओङ् 4. ऐ औच् 5. ह य व र ट् 6. ल ण् 7. ञ् म ङ ण न म् 8. झ ञ् 9. घ ढ ध ष् 10. ज ब ग ड द श् 11. ख फ छ ठ थ च ट त व् 12. क प य् 13. श ष स र् 14. हल्।

इन चतुर्दश सूत्रों को 'प्रत्याहार–सूत्र' ी कहते हैं क्योंकि इन्हीं के आधार पर 'अण्' आदि प्रत्याहार ी बनते हैं। इन चौदह सूत्रों को 'माहेश्वर सूत्र' ी कहा जाता है। ये चौदह सूत्र 'अण्' आदि प्रत्याहारों (संज्ञाओं) की सिद्धि के लिए शिव जी की कृपा से प्राप्त हुए हैं। इन चौदह सूत्रों में वर्णमाला का निर्देश है। आचार्य पाणिनि ने अष्टाध्यायी के प्रारम् में इनका उल्लेख किया है कि व्याकरण के ये मूल ूत सूत्र हैं।

इन चौदह सूत्रों के अन्त के अक्षर अर्थात् ण्, क्, ङ्, च् , ट्, ण्, म् , ञ्, ष्, श्, व्, य्, र् एवं ल् इत्संज्ञक है। हकारादि अक्षरों में अकार केवल उच्चारण के लिए है, किन्तु 'लण्' सूत्र में लकारोत्तरवर्ती अकार (ल् + अ = ल) इत्संज्ञक है।

स्वरों की सहायता से ही व्यञ्जनों का स्पष्ट उच्चारण हुआ करता है। अतः उच्चारण की सुविधा के लिए प्रत्येक व्यञ्जन में 'अ' स्वर जोड़ा गया है यथा ह् + अ = ह।

प्रत्याहार बनाने का नियम – समुदाय या सूत्र के अन्त में आने वाले इत्संज्ञक (सामान्यतया हलन्त) वर्ण को जब उस के किसी पूर्ववर्ती वर्ण से मिला दिया जाता है, तब 'प्रत्याहार' बन जाता है। वह प्रत्याहार उस अन्त्य हलन्त वर्ण को छोड़कर आदि तथा मध्यवर्ती वर्णों का बोधक होता है। उदाहरण के लिए माहेश्वर–सूत्र 'अ इ उ ण्' में अन्त्य इत्संज्ञक णकार को पूर्ववर्ती अकार के साथ मिलाने से 'अण्' प्रत्याहार बन जाता है। यह 'अण्'

प्रत्याहार आदि 'अ' और मध्यवर्ती 'इ' और 'उ' का बोधक है।

'हल्' प्रत्याहार है। इसके अन्तर्गत स ी व्यञ्जन आ जाते हैं। इस तरह सूत्र का ावार्थ होगा –

– उपदेश में वर्तमान अन्त्य व्यञ्जन इत्संज्ञक होता है। तात्पर्य यह है कि उपदेश के अन्त में होने वाला व्यंजन 'इत्' कहलाता है।

19.3 मूल सूत्र (ख) अदर्शनं लोपः 1। 1। 60

19.3.1 मूल वृत्ति ाग प्रसक्तस्याऽदर्शनं लोपसंज्ञं स्यात्।

19.3.2 अर्थ विद्यमान के अदर्शन की लोप संज्ञा होती है।

19.3.3 टिप्पणी प्राप्त का (प्रसक्तस्य) न दिखाई देना या न सुना जाना अदर्शन है, उसकी 'लोप' संज्ञा होती है। यह ी संज्ञा–सूत्र है। शब्दार्थ हैः (अदर्शनम्) अदर्शन (लोपः) लोपसंज्ञक होता है। 'अदर्शन' का अर्थ है– श्रवणा ाव अर्थात् न सुना जाना। ''**स्थानेऽन्तरतमः**'' 1.1.50 सूत्र से 'स्थाने' की अनुवृत्ति करनी होगी। यह षष्ठयन्त में विपरिणत हो जाता है। इस प्रकार सूत्र का ावार्थ होगा (स्थानस्य) विद्यमान का (अदर्शनम्) न सुना जाना (लोपः) लोप कहलाता है। अ िप्राय यह है कि 'लोप का अर्थ है उच्चारण से प्राप्त का न सुना जाना अर्थात्सुने को अनसुना कर देना। उदाहरण के लिए कोई व्यक्ति 'सखान्' पद का उच्चारण करता है, किन्तु ''न लोप......'' सूत्र से उसके नकार का लोप हो जाता है। इसका अर्थ यह होगा कि सुनने वाला व्यक्ति नकार को नहीं सुनेगा। इस प्रकार श्रवण निषेध हो जाने से नकार का उच्चारण ी व्यर्थ हो जायेगा। फलतः व्यवहार में केवल 'सखा' का ही प्रयोग होगा, न कि 'सखान्' का।

19.3 मूलसूत्र

(ग) तस्य लोपः 1। 3। 9

19.3.1 मूलवृत्ति ाग तस्येतो लोपः स्यात्। णादयोऽणाद्यर्थाः।

19.3.2 अर्थजिसकी इत्संज्ञा होती है, उसका लोप होता है।

अ इ उ ण् इत्यादि में णकारादि अण्–अक्–अच् आदि प्रत्याहार बनाने के लिए जोड़े गये हैं।

19.3.3 टिप्पणी – अ िप्राय यह है कि 'अ इ उ ण्' इत्यादि में अन्त्य हल् 'ण्' आदि की 'हलन्त्यम्' सूत्र से इत्संज्ञा होती है तथा ''**तस्यलोपः**'' सूत्र से 'ण्' का लोप हो जाता

है। 'लोप' से क्या अ प्राय है? यह दर्षाने के लिए ''**अदर्शन लोपः**'' सूत्र है अर्थात् जिस वर्ण का शास्त्र द्वारा निर्देश किया गया है। उसका प्रयोग अवस्था में अदर्शन (न रहना) ही लोप है।

दूसरे शब्दों में सूत्र का शब्दार्थ है (तस्य) उसका (लोपः) लोप होता है। यहाँ 'तस्य' (उसका) अ प्राय '**उपदेशेऽजनुनासिक इत्**' 1.3.2 सूत्र से लेकर '**लशक्वतद्धिते**' 1. 3.8 सूत्र तक की गई 'इत्' संज्ञा से है। इस प्रकार सूत्र का ावार्थ होगा – उस इत्संज्ञक का लोप होता है। तात्पर्य यह है कि जिसकी ी 'इत्' संज्ञा होती है, उसका लोप हो जाता है। सूत्र में 'तस्य' का प्रयोग होने से यह लोप सम्पूर्ण इत्संज्ञक का होता है।

उदाहरण के लिए ''आदिर्ञिटुडवः'' सूत्र से 'टुनदि' धातु के आदि 'टु' की इत्संज्ञा होती है। ''तस्य लोपः'' सूत्र से इस इत्संज्ञक 'टु' का लोप हो जाता है, अतः केवल 'नदि' (नद्) धातु का ही लोक में व्यवहार होता है। इसी प्रकार प्रकृत सूत्र से इत्संज्ञक वर्णों का लोप होता है।

इत्संज्ञा–विधायक सूत्र ये हैं

(1) उपदेशेऽजनुनासिक इत्।

(2) हलन्त्यम्। इसका अपवाद 'न वि क्तौ तुस्माः' है।

(3) आदिर्ञिटुडवः।

(4) षः प्रत्ययस्य।

(5) चुटू।

(6) लशक्वतद्धिते।

19.3 मूलसूत्र

19.3.1 (घ) आदिरन्त्येन सहेता 1। 1। 71

मूल वृत्ति ाग – अन्त्येनेता सहित आदिर्मध्यगानां स्वस्य च संज्ञा स्यात्। यथाऽण् इति अ इ उ वर्णानां संज्ञा। एवमक्–अच्–अल्–हलित्यादयः।

19.3.2 अर्थ – आदिवर्ण अन्त्य इत् संज्ञक वर्ण के साथ उच्चार्यमाण मध्य में स्थित वर्णों का तथा अपना ी बोधक होता है। जैसे 'अण्' प्रत्याहार लीजिये। यह प्रथम माहेश्वर सूत्र ''अ इ उ ण्'' के अन्तिम इत्संज्ञक वर्ण 'ण्' के साथ आदिवर्ण 'अ' के योग से बना

है। अतः यह 'अण्' आदि में आने वाले 'अ' और मध्यवर्ती 'इ' 'उ' का बोधक है। इसी प्रकार 'अ इ उ ण्' । ऋ लश् क्। के आदि अकार और अन्त्य इत्संज्ञक अककार को लेकर बना हुआ 'अक्' प्रत्याहार 'अ इ उ ऋ लश' का बोधक है। अच् (अ से लेकर औ तक समस्त स्वरों का) अल् (अ से लेकर ह पर्यन्त समस्त वर्णों का) और हल्. ह से लेकर अग्रिम ह पर्यन्त समस्त व्यञ्जनों का) इत्यादि प्रत्याहार जानने चाहिये।

19.3.3 टिप्पणी – यह प्रत्याहार संज्ञा विधायक सूत्र है। 'अ इ उ ण्' आदि वर्णों का उपदेश प्रत्याहार निर्माण के लिए किया गया है। प्रत्याहार बनाने की विधि यह है 'अ इ उ ण्' में आदि वर्ण 'अ' है उसका अन्त्य इत्संज्ञक वर्ण 'ण्' के साथ ग्रहण करके 'अण्' प्रत्याहार बनता है जिसके द्वारा अ (अपना) और मध्य के इ उ वर्णों का बोध करवाता है। अतः अण्अ इ उ वर्णों का बोधक है।

पाणिनीय व्याकरण में उपर्युक्त चौदह सूत्रों के आधार पर इन 42 प्रत्याहारों का प्रयोग किया गया है जो क्रमानुसार निम्नलिखित हैं –

1. अक् अ, इ, उ, ऋ, लृ।
2. अच् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ,औ।
3. अट् अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र्।
4. अण्. अ, इ, उ।

5. अम् 6. अल्, 7. अष्, 8. इक् 9. इच् 10. इण् 11. उक् 12. एङ् 13. एच्, 14. ऐच्, 15. रवय् 16. खर्, 17. म् 18. चय्, 19. चर् 20. छव्, 21. जश्, 22. झय्, 23. झर्, 24. झल्, 25. झश् 26. झष्, 27. बश्, 28. ष् 29. मय् 30. यञ् 31. यण्, 32. यम् 33. यय् 34. यर्, 35. रल् 36. बल्, 37. वश्, 38. शर् 39. शल् 40. हल् 41. अण्, 42. हश्,

19.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

19.4.1 प्रश्न – उपदेश किसे कहते हैं ?

उत्तर – पाणिनि आदि आचार्यों के प्रथम उच्चारण को उपदेश कहते हैं।

प्रश्न – लोप किसका होता है?

उत्तर – जिसकी इत्संज्ञा होती है, उसका लोप हो जाता है।

प्रश्न – विद्यमान के अदर्शन की कौन सी संज्ञा होती है?

उत्तर – ''अदर्शनं लोपः'' सूत्र से लोप संज्ञा होती है।

प्रश्न – 'अण्' यह प्रत्याहार किन वर्णों का बोधक होता है?

उत्तर – 'अण्' प्रत्याहार अ इ उ वर्णों का बोधक होता है।

19.5 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजियेः–

प्रश्न – उपदेश अवस्था में अन्त्य हल् का इत्संज्ञा विधायक सूत्र लिखिये।

प्रश्न – जिसकी इत्संज्ञा होती है, उस वर्ण का किस सूत्र से लोप होता है?

प्रश्न – विद्यमान के अदर्शन की लोप संज्ञा किस सूत्र से होती है?

प्रश्न – 'अण्' अक् अच् प्रत्याहार बनाईये।

g g g g g g

B.A. - 1st Semester **Paper - SANSKRIT**

Unit - IV (भाग–ग) **Lesson No. 20**

20.0 ''लघुसिद्धान्तकौमुदी'' (भाग–ग)

शीर्षक 'संज्ञाप्रकरणम्'

20.1 (क) सामान्य उद्देश्य

20.1 (ख) विशिष्ट उद्देश्य

20.2 पाठ–परिचय (क), (ख), (ग), (घ), (ङ)

20.3 मूलसूत्र (क), (ख), (ग), (घ), (ङ)

20.3.1 मूलवृत्ति ाग

20.3.2 अर्थ

20.3.3 टिप्पणी

20.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

20.5 कुछ प्रश्न

20.0 शीर्षक – (संज्ञाप्रकरणम्)

20.1 (क) सामान्य उद्देश्य :

1. छात्रों को संस्कृत व्याकरण की विशेषता से परिचित कराना।
2. छात्रों की तर्क–शक्ति एवं रचनात्मक वृत्ति का विकास करना।
3. उनको ाषा के गुण–दोषों को परखने की क्षमता प्रदान करना जिससे वे शुद्ध–शुद्ध लिख व बोल सकें।
4. छात्रों को संस्कृत व्याकरण के ध्वनि तत्त्व से परिचित करवाना।

20.1 (ख) विशिष्ट उद्देश्य :

1. अ, इ, उ ऋ, आदि के ह्रस्व–दीर्घ और प्लुत `दों को बतलाते हुए यह बताना कि इन वर्णों में प्रत्येक के अठारह–अठारह `द हो जाते हैं। 'लृ' ए, ओ, ऐ औ आदि के ी बारह–बारह `द हो जाते हैं।

2. उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों की पहचान करवाना।

3. अनुनासिक एवं अननुनासिक वर्णों के बारे में बतलाना।

10.2 पाठ–परिचय

(क) एकमात्रिक, द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक उकार के उच्चारण काल के समान है उच्चारण काल जिस अच् का वह अच् क्रम से ह्रस्व–दीर्घ–प्लुत संज्ञक होता है। ह्रस्व–दीर्घ–प्लुत `द से तीन प्रकार का हुआ वह अच् उदात्तादि `द से फिर तीन प्रकार का होता है।

(ख) तालु आदि स ाग स्थानों के ऊर्घ्व ाग में निष्पन्न अच् उदात्त संज्ञक होता है।

(ग) तालु आदि स ाग स्थानों के अधो ाग में उच्चार्यमाण अच् अनुदात्त संज्ञक होता है।

(घ) मध्य ाग में उच्चार्यमाण अच् स्वरितसंज्ञक होता है। वह नौ प्रकार का ी अच् अनुनासिक और अननुनासिक `द से दो–दो प्रकार का होता है।

(ङ) मुखसहित नासिका से उच्चार्यमाण वर्ण अनुनासिक संज्ञक होता है। इस प्रकार अ इ उ ऋ इन वर्णों में प्रत्येक के अठारह–अठारह `द होते हैं। लृ वर्ण के बारह `द होते हैं। क्योंकि वह दीर्घ नहीं होता। एचों (ए, ओ, ऐ)

(औ) के ी बारह–बारह ही `द होते हैं, क्योंकि वे ह्रस्व नहीं होते।

20.3 मूलसूत्र :

(क) ऊकालोऽज्हश्स्व–दीर्घ–प्लुतः 1। 2। 27

20.3.1 मूल वृत्ति ाग – उश्च ऊश्च ऊ उश्च वः वां काल इव कालो यस्य सोऽच् क्रमाद् ह्रस्व दीर्घप्लुतसंज्ञः स्यात्। स प्रत्येकमुदात्तादि `देन त्रिधा।

20.3.2 अर्थ यह संज्ञा सूत्र है। शब्दार्थ है (ऊकालः) ऊकाले वाला (अच्) अच् (ह्रस्वदीर्घ–प्लुतः) ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञक होता है। यहाँ सूत्रस्थ 'ऊकालः' का अर्थ

हे:– उ, ऊ और ऊ 3 कालवाले[2]। 'अच्' प्रत्याहार है और उसमें स ी स्वर आ जाते हैं। इस प्रकार सूत्र का ावार्थ होगा उ ऊ और ऊ 3 काल वाले स्वर ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञक होते हैं। तात्पर्य यह है कि उकाल वाले स्वर को ह्रस्व, ऊकाल वाले स्वर को दीर्घ और ऊ 3 काल वाले स्वर को प्लुत कहते हैं। वास्तव में 'उ', ऊ, और ऊ 3 क्रमशः एकमात्रिक, द्विमात्रिक और त्रिमात्रिक के निर्देश मात्र हैं।

अतः सूत्र का स्पष्टार्थ होगा ''एकमात्रिक स्वर ह्रस्व, द्विमात्रिक स्वर'' दीर्घ और त्रिमात्रिक स्वर प्लुत कहलाता है।

20.3.3 टिप्पणी कहा ी है कि

''एकमात्रो वेद् ह्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते।''

त्रिमात्रस्तु प्लुतोज्ञेयो व्यञ्जनं चार्धमात्रिकम्। 'एक मात्रा वाला ह्रस्व' होता है और द्विमात्रिक को 'दीर्घ' कहते हैं। त्रिमात्रिक को प्लुत और व्यञ्जन को अर्धमात्रिक समझना चाहिये। यथा

1. ऊकालः का विग्रह है उश्च ऊश्च ऊ 3श्च वः, वः कालो यस्य स

2. 'काल' का अ िप्राय यहाँ उच्चारण में लगने वाले समय से है – 'ऊ शब्देन स्वोच्चारण कालो लक्ष्यते' (तत्त्व बोधिनी) ''ऊ'' इति त्रयाणामयं मात्रिकद्विमात्रिकत्रिमात्रिकाणां प्रष्लिश्ट निर्देशः (काशिका)।

'कुक्कुट' के 'कु कू कू 3' शब्द में क्रमशः एकमात्रा, द्विमात्रा और त्रिमात्रा का स्पष्ट पता चलता है। प्लुत का प्रयोग प्रायः पुकारने में होता है यथाराम 3।

इन तीनों प्रकार के स्वरों के पुनः (1) उदात्त, (2) अनुदात्त, और (3) स्वरित (सूत्र 6 से 8 देखिये)

इन तीनों ेदों में वि ाजित किया जाता है। अन्त में इन स ी प्रकार के स्वरों के दो अन्य ेद होते हैं (1) अनुनासिक और (2) अननुनासिक।

अनुनासिक उस स्वर को कहते हैं जिसके उच्चारण में नासिका से ी सहायता ली जाती है– जैसे – आँ, एँ आदि। जिसके उच्चारण में नासिका से सहायता न ली जाये, उस स्वर को अननुनासिक कहते हैं यथाआ, ए आदि।

इन स ी ेदों का स्पष्टीकरण निम्नलिखित चक्र द्वारा सुसम्यक् प्रकारेण हो जाता है।

स्वर बोधक–चक्र

अ इ उ ऋ लृ *ह्रस्व `द*	अ इ उ ऋ ए ओ ऐ औ *दीर्घ `द*	अ इ उ ऋ लृ ए ओ ऐ औ *प्लुत `द*
1. ह्रस्व उदात्त–अनुनासिक 2. ह्रस्व उदात्ताननुनासिक 3. ह्रस्व अनुदात्तानुनासिक 4. ह्रस्व अनुदात्ताननुनासिक 5. ह्रस्व स्वरितानुनासिक 6. ह्रस्व स्वरिताननुनासिक	7 दीर्घ उदात्तानुनासिक 8 दीर्घ–उदात्ताननुनासिक 9 दीर्घ अनुदात्तानुनासिक 10 दीर्घ अनुदात्ताननुनासिक 11 दीर्घ स्वरितानुनासिक 12 दीर्घ स्वरिताननुनासिक	13 प्लुत–उदात्ताननुनासिक 14 प्लुत–उदात्ताननुनासिक 15 प्लुत–अनुदात्तानुनासिक 16 प्लुत–अनुदात्ताननुनासिक 17 प्लुत स्वरितानुनासिक 18 प्लुत स्वरिताननुनासिक

20.3 मूलसूत्र

(ख) उॅच्चैरुदात्तः 1। 2 । 29

20.3.2 अर्थ – तालु आदि स ाग स्थानों के ऊर्ध्व ाग से उच्चरित स्वर (अच्) उदात्त कहलाता है।

20.3.3 टिप्पणी – यह ी संज्ञा सूत्र है। शब्दार्थ है (उच्चैः) ऊँचा (उदात्तः) उदात्त संज्ञक होता है। किन्तु इससे सूत्र का अ िप्राय स्पष्ट नहीं होता। सूत्र के स्पष्टीकरण के लिए पूर्वसूत्र 5–ऊकालोऽज....। सूत्र से अच् की अनुवृत्ति करनी पड़ेगी। सूत्रस्थ 'उच्चै' का तात्पर्य स्थानकृत ऊंचाई से है, न कि आवा की ऊंचाई (तेजी) से (उच्चैरिति च श्रुति प्रकर्शो न गृह्यते। किं तर्हि, स्थानकृतमुच्चत्वं संज्ञिनो विशेषणम्–इति काशिका)

इस प्रकार सूत्र का ावार्थ होगा (उच्चैः) ऊपर वाले ाग में उच्चार्यमाण (अच्) स्वर (उदात्तः) उदात्त संज्ञक होते हैं। अ िप्राय यह है कि जिस स्वर का उच्चारण अपने निर्धारित स्थान के ऊपर वाले ाग से होगा, वह उदात्त कहलायेगा। उदाहरण के लिए अकार का स्थान 'कण्ठ' है। यदि उसका उच्चारण कण्ठ के ऊपरी ाग से किया जायेगा तो वह उदात्त संज्ञक होगा। इसी प्रकार इकार, उकार आदि अन्य स्वरों के बारे में ी समझना चाहिये।

20.3 मूलसूत्र

(ग) नीचैरनुदात्तः 1। 2। 30

20.3.2 अर्थ – तालु आदि स ाग स्थानों के अधो ाग से उच्चरित स्वर अनुदात्त संज्ञक होता है।

20.3.3 टिप्पणी – सूत्र का शब्दार्थ है – (नीचैः) नीचा (अनुदात्तः) अनुदात्त होता है। यह ी संज्ञा–सूत्र है और पूर्वसूत्र (6 उच्चैरुदात्तः) के समान इसका ावार्थ होगा निर्धारित स्थान के निचले ाग से उच्चारण किया जाने वाला स्वर 'अनुदात्त' संज्ञक होता है। उदाहरण के लिए अकार का उच्चारण यदि कण्ठ के निचले ाग से होता तो वह अनुदात्त कहलायेगा।

20.3 मूलसूत्र

(घ) समाहारः स्वरितः 1। 2। 31

20.3.1 मूलवृत्ति ाग :

स नवविधोऽपि प्रत्येकमनुनासिकाननुनासिकत्वाभ्यां द्विधा।

20.3.2 अर्थ – जिस स्वर में उदात्त और अनुदात्त दोनों ही गुणों का सम्मिश्रण होता है वह 'स्वरित' कहलाता है।

20.3.3 टिप्पणी – यह ी संज्ञा–सूत्र है। शब्दार्थ है (समाहारः) समाहार (स्वरितः) स्वरित–संज्ञक होता है। सूत्रस्थ 'समाहार' का अर्थ है एकीकरण अथवा समुच्चय, किन्तु वह एकीकरण किसका होता है यह ज्ञात करने के लिए 6. ''उच्चैरुदात्तः'' से उदात्त और 'नीचैऽनुदात्तः से अनुदात्त की अनुवृत्ति करनी होगी। ये दोनों पद षष्ठयन्त में विपरिणत हो जाते हैं। इसके साथ ही साथ 5. ऊकालोऽज्...। सूत्र से अच् की अनुवृत्ति होती है। इस तरह सूत्र का ावार्थ होता है(उदात्तस्य) उदात्त (अनुदात्तस्य) और अनुदात्त के (समाहारः) एकीकरण या मेल वाला (अच्) स्वर (स्वरितः) 'स्वरित' कहलाता है। 'उदात्त' का तात्पर्य यहाँ उदात्त के गुण (उदात्तत्व) और 'अनुदात्त' का अि प्राय अनुदात्त के गुण से है। फलतः जिस स्वर में उदात्त और अनुदात्त के गुणों का मेल होगा, वह स्वरित कहलावेगा।

उदात्त का गुण ऊपरी ाग से उच्चारण करना और अनुदात्त का गुण निचले ाग से उच्चारण करना है यह पूर्व ही बताया जा चुका है। इस तरह दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि जिस स्वर का उच्चारण निर्धारित स्थान के ऊपरी और निचले ागों को मिलाकर होता है, उसे 'स्वरित' कहते हैं। उदाहरण के लिए अकार का उच्चारण जब कण्ठ के ऊपरी और निचलेइन दोनों ही ागों से होगा, तब वह 'स्वरित' कहलावेगा।

उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वरों का प्रयोग केवल वेदों में मिलता है। वहाँ इनका

संकेत चिन्हों द्वारा किया जाता है। उदात्त के लिए कोई चिन्ह नहीं होता, किन्तु अनुदात्त के नीचे पड़ी रेखा (–) और स्वरित के ऊपर खड़ी रेखा का चिन्ह (1) होता है, जैसे

1. उदात्त **अ, इ** आदि (कोई चिन्ह नहीं)
2. अनुदात्त – **अ, ई** आदि
3. स्वरित – **अ, इ,** आदि।

20.3 मूलसूत्र

(ङ) मुखनासिकावचनोऽनुनासिका 1। 1 । 8

20.3.1 मूलवृत्ति ाग – मुखसहित – नासिकयोच्चार्यमाणो वर्णोऽनुनासिकसंज्ञः स्यात्। तदित्थम्– अ इ उ ऋ एशां वर्णानां प्रत्येकमष्टादश `दाः। लृ वर्णस्य द्वादश, तस्य दीर्घा ावात्। एचामपि द्वादश, तेशां ह्रस्वा ावात्।

20.3.2 अर्थ – मुख तथा नासिका से उच्चार्यमाण (बोला गया) वर्ण अनुनासिक संज्ञक होता है।

20.3.3 टिप्पणी – यह ी संज्ञा सूत्र है। शब्दार्थ है (मुखनासिकावचनः) मुख सहित नासिका से बोला जाने वाला वर्ण (अनुनासिकः) अनुनासिक संज्ञक होता है। तात्पर्य यह हैं कि जिस वर्ण का उच्चारण मुख और नासिका दोनों से ही होगा, वह 'अनुनासिक' कहलायेगा। जैसे– ङ्, ञ्, ण्, न् तथा म् ये पाँचों वर्ण मुख एवं नासिका दोनों से बोले जाते हैं। अतः इस सूत्र से ये अनुनासिक संज्ञक होंगे। इनके अतिरिक्त ी जिन अन्य स्वरों और व्यञ्जनों का उच्चारण मुख एवं नासिका दोनों से किया जायेगा, वे अनुनासिक कहलायेंगे। जिन वर्णों का उच्चारण केवल मुख से होता है वे अननुनासिक या निरनुनासिक कहलाते हैं।

इस प्रकार अ इ उ ऋ इन वर्णों में प्रत्येक के अठारह–अठारह `द हो जाते हैं। 'लृ' वर्ण के बारह `द होते हैं, क्योंकि वह दीर्घ (अर्थात् दीर्घ लकार) नहीं होता। एचों (ए, ओ, ऐ, औ) के ी बारह–बारह ही `द होते हैं, क्योंकि वे ह्रस्व नहीं होते अर्थात् ह्रस्व एकारादि नहीं होता है।

संक्षेपतः स्वरों के `द इस प्रकार हैं अ इ उ ऋ के 18 `द = तीन `द = 3 (ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत) X 3 (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) X 2 (अनुनासिक, अननुनासिक = 18 `द 1 लृ के 12 `द = 2 (ह्रस्व, प्लुत) X 3 (उदात्त, अनुदात्त, स्वरित) X 2 (अनुनासिक, अननुनासिक), ए, ओ, ऐ, औ के 12 `द = 2 (दीर्घ, प्लुत) X 3 (उदात्त, अनुदात्त,

स्वरित) X 2 (अनुनासिक, अननुनासिक)।

विशेष प्रत्येक वर्ण का उच्चारण सामान्यतया मुख से ही होता है अतः प्रश्न उठ सकता है कि सूत्र में 'मुख' शब्द का प्रयोग क्यों हुआ? 'मुखनासिकावचनः' के स्थान पर 'नासिकावचनः' क्यों नहीं कहा गया? इसका उत्तर यही है कि यदि सूत्र में मुख शब्द का प्रयोग न किया जाता तो अनुस्वार को ी अनुनासिक मानना पड़ता, क्योंकि अनुस्वार का उच्चारण केवल मात्र नासिका से ही होता है।

20.4 अभ्यासार्थ प्रश्न –

20.4.1 प्रश्न – एकमात्रिक, द्विमात्रिक, त्रिमात्रिक अच् की कौन सी संज्ञा होती है?

उत्तर – क्रमशः ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत संज्ञा होती है।

प्रश्न – उदात्त किसे कहते हैं?

उत्तर – तालु आदि स ाग स्थानों के ऊर्ध्व ाग से निष्पन्न अच् उदात्त संज्ञक होता है।

प्रश्न – अनुदात्त किसे कहते हैं?

उत्तर – तालु आदि स ाग स्थानों के अधो ाग में उच्चार्यमाण अच् अनुदात्त संज्ञक होता है।

प्रश्न – स्वरित किसे कहते हैं ?

उत्तर – तालु आदि स ाग स्थानों के मध्य ाग में उच्चार्यमाण अच् स्वरित संज्ञक होता है।

प्रश्न – अनुनासिक किसे कहते हैं?

उत्तर – मुख सहित नासिका से उच्चार्यमाण वर्ण अनुनासिक संज्ञक होता है।

20.5 प्रश्न – उदात्त संज्ञा विधायक सूत्र लिखिये।

प्रश्न – अनुदात्त संज्ञा विधायक सूत्र लिखिये।

प्रश्न – स्वरित संज्ञा विधायक सूत्र लिखिये।

प्रश्न – 'अ इ उ ऋ' के अठारह–अठारह `द कौन से हैं ? लिखिये।

g g g g g g

21.0 'लघुसिद्धान्तकौमुदी'

शीर्षक कृ 'संज्ञा प्रकरणम्'

21.1 (क) सामान्य उद्देश्य

21.1 (ख) विशिष्ट उद्देश्य

21.2 पाठ परिचय (क), (ख), (ग), (घ), (ङ),

21.3 मूलसूत्र (क), (ख), (ग), (घ), (ङ),

11.3.1 मूलवृत्ति ाग

11.3.2 अर्थ

11.3.3 टिप्पणी आदि

21.4 अभ्यासार्थ प्रश्न

21.5 कुछ प्रश्न

21.0 शीर्षक (संज्ञाप्रकरणम्)

21.1 (क) सामान्य उद्देश्य :

1. छात्रों को संस्कृत ाषा व्याकरण के ध्वनि तत्त्व से परिचित करवाना।
2. शुद्ध वाक्य–रचना का ज्ञान प्रदान करना।
3. छात्रों की तर्कशक्ति एवं स्मरण शक्ति का विकास करना।
4. छात्रों को व्याकरण के संज्ञा–प्रकरण से अवगत करवाना।

21.1 (ख) विशिष्ट उद्देश्य :

1. छात्रों को उच्चारण स्थानों से परिचित करवाना।

2. आभ्यन्तर प्रयत्न एवं बाह्म प्रयत्नों से ी छात्रों को अवगत करवाना।

3. छात्रों को 'पद' संज्ञा की जानकारी देना।

4. छात्रों के शब्द ण्डार में वृद्धि करना।

21.2 पाठ परिचय :

(क) तालु आदि स्थान (आस्य) तथा आभ्यन्तर प्रयत्न ये दोनों जिस वर्ण के जिस अन्य वर्ण में समान होते हैं, वे वर्ण परस्पर सवर्ण कहलाते हैं। इस सूत्र में वर्णों के उच्चारण स्थानों का ी निर्देश किया गया है। यथा

अ, आ, कवर्ग, ह तथा विसर्ग – कण्ठ स्थान

इ, ई, चवर्ग, य तथा श – तालु

ऋ , ॠ , टवर्ग, ट तथा ष मूर्घा

लृ, तवर्ग, ल तथा स दन्त

उ, ऊ, पवर्ग, उपध्मानीय – ओष्ठ

ञ्, म, ङ, ण, न–नासिका तथा अपने वर्ग का स्थान ी।

ए और ऐ – कण्ठ + तालु।

ओ + औ – कण्ठ + ओष्ठ।

जिव्हामूलीय का जिह्मा का मूल ाग। अनुस्वार (.) का नासिका स्थान है। इत्यादि।

(ख) जिसका विधान न किया गया हो वह अण् (अ से लेकर लण् के ण् तक के वर्ण) तथा 'उ' (उत्) है इत्संज्ञक। जिनमें ऐसे कु, चु आदि सवर्ण की संज्ञा होते हैं अर्थात् उनके द्वारा सवर्णों का ी ग्रहण होता है।

(ग) वर्णों के अतिशय सामीप्य को संहिता कहते हैं।

(घ) अचों के व्यवधान से रहित हल् संयोग संज्ञक होते हैं।

(ङ) सुबन्त (सु, औ, जस्) और तिङन्त (तिप्, तस्, झि) की पद संज्ञा होती है)।

21.3 मूलसूत्र

(क) तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् 119

21.3.1 **मूलवृत्ति** ागे – ताल्वादिस्थानमाभ्यत्तर प्रयत्नश्चेत्येतद् द्वयं यस्य येन तुल्यं तन्मिथः सवर्णसंज्ञं स्यात्।

(ऋ लृ वर्णयोर्मिथः सावर्ण्यं वाच्यम्)

(वर्णाणां स्थानानि)

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः। इचुयशानां तालु। ऋटुरषाणां मूर्धा।

लृतुलसानां दन्ताः। उपूपध्मानीयानामोष्ठौ । ञमङ णनानां नासिका च।

21.3.2 **अर्थ–तुल्यास्येति** – तालु आदि स्थान और आभ्यन्तर प्रयत्न जिन वर्णों के समान हों उनकी परस्पर सवर्ण संज्ञा होती है।

ऋलृ इति – (ऋ तथा लृ वर्ण की ी परस्पर सवर्ण संज्ञा कहनी चाहिये।)

अकुहेति (वर्णों के स्थान निम्नलिखित हैं)

1 अ (आ) कवर्ग (क ख ग घ ङ) हकार और विसर्ग–कण्ठ

2 इ (ई) चवर्ग (च छ ज फ ञ) य तथा श – तालु।

3 ऋ (ॠ) टवर्ग (ट ठ ड ढ ण) र तथा ष – मूर्धा।

4. लृ तवर्ग (त थ द ध न) ल तथा स दन्त।

5. उ (ऊ) पवर्ग (प फ ब म) तथा उपध्मानीयओष्ठ ञ् म ङ ण न नासिका और अपने वर्ग का स्थान ी। यथा ङ का स्थान कण्ठ नासिका है तथा ञ् का तालु नासिका है।

ए तथा ऐ = कण्ठ + तालु। ओ + औ = कण्ठ + ओष्ठ। जिह्वामूलीय[2] का जिह्वा का मूल ाग। अनुस्वार (.) का नासिका स्थान है।

1. 'उपध्मानीय' उस वर्ण ध्वनि का नाम है जो क ी–क ी प और फ से पूर्व अर्धविसर्ग के रूप में प्रयुक्त की जाती है उसे ( ) इस चिन्ह से प्रकट किया जाता है।

2. जिह्वामूलीय – उस वर्ण ध्वनि को कहते हैं जो क ी क ी क तथा ख से पूर्व अर्ध विसर्ग ( ) के रूप में प्रयुक्त की जाती है। उसे ी ( ) इसी चिन्ह द्वारा प्रकट किया

जाता हैं, यथा क खनति (कः खनति)

मुखगत वर्णोदवस्थान बोधक चक्र

कंठ	तालु	मूर्धा	दन्त	ओष्ठ	नासिका	कं0ता0	कण्ठोष्ठ	दंतोष्ठ	जि0मू0	नासिका
अ	इ	ऋ	लृ	उ	ञ्	ए	ओ	व	क	(.)
क	च	ट	त	प	म	ऐ	औ		ख	अनुस्वार
ख	छ	ठ	थ	फ	ङ					
ग	ज	ड	द	ब	ण					
घ	झ	ढ	ध		न					
ङ	ञ्	ण	न	म						
ह	य	र	ल	प						
:	श	ष	स	फ						

(आभ्यन्तरप्रयत्नाः)

यत्नो द्विधाआभ्यन्तरो बाह्यष्च। आद्यः पञ्चधा–स्पृष्टेषत्पृष्टेषद् विवृत–विवृत–संवृत `दात्। तत्र स्पृष्टं प्रयत्नं स्पृर्गनाम्। ईषत्स्पृष्टमन्तः स्थानाम्। ईषद्विवृतमूष्मणाम् । विवृतं स्वराणाम्। ह्रस्वस्यावर्णस्य प्रयोगे संवृतम्। प्रक्रियादषायां तु विवृतमेव।

यत्न इति – प्रयत्न दो प्रकार का होता है – आभ्यन्तर (ीतर का) तथा बाह्य (बाहर का) आभ्यन्तर प्रयत्न पाँच प्रकार का है 1. स्पृष्ट 2. ईषत्स्पृष्ट 3. ईषद् विवृत 4. विवृत और 5. संवृत `द से। उनमें स्पर्शों (क से लेकर म पर्यन्त) का = स्पृष्ट प्रयत्न है।

अन्तस्थ (य र ल व) का = ईषत्स्पृष्ट

ऊष्म (श ष स ह) का = ईषद् विवृत

स्वरों (अ से और तक) का = विवृत प्रयत्न है।

ह्रस्वेति ह्रस्व 'अ' वर्ण का प्रयोग (उच्चारण दशा) में संवश्त प्रयत्न है; किन्तु प्रक्रिया दशा अर्थात् शब्द–सिद्धि करने की स्थिति में इसका विवृत प्रयत्न ही है।

आभ्यन्तर प्रयत्न – बोधक चक्र

स्पृष्ट	ईशत्स्पृष्ट	विवृत	ईषद्विवृत	संवष्त
क ख ग घ ङ	य	अ ए	श	प्रयोग (सिद्ध रूप)
च छ ज झ ञ्	र	इ ओ	ष	में ह्रस्व 'अ'
ट ठ ड ढ ण		उ		
त थ द ध न	ल	ऋ ऐ	स	
प फ ब म	व	लृ औ	ह	

वर्णों के उच्चारण में जिह्वा का तालु आदि स्थानों को स्पर्श करना स्पष्ट प्रयत्न कहलाता है और थोड़ा सा स्पर्श करना ईषत्स्पृष्ट है। जिह्वा का उस स्थान के पास रहना संवृत है तथा दूर रहना विवृत तथा कुछ दूर रहना ईषद् विवृत प्रयत्न है।

बाह्य प्रयत्नाः

बाह्य प्रयत्नस्त्वेकादशधा–विवारः संवार श्वासो नादो घोषोऽघोषोऽल्पप्राणो महाप्राण उदात्तोऽनुदात्तः स्वरितश्चेति खरो विवाराः श्वासा अघोषाश्च। हृषः . संवारा नादा घोशाश्च। वर्णाणां प्रथम–तृतीय पञ्चमा यणष्चाल्पप्राणाः। वर्गाणां द्वितीय चतुर्थौ शलश्च महाप्राणाः।

बाह्येति बाह्य प्रयत्न ग्यारह प्रकार का होता है – 1. विवार, 2. संवार, 3. श्वास, 4. नाद, 5. घोष, 6.अघोष, 7. अल्पप्राण 8. महाप्राण 9. उदात्त, 10. अनुदात्त और 11. स्वरित।

वर्गों के प्रथम और द्वितीय (क, ख, च, छ) आदि वर्णों तथा, श, ष, स (खरः) के विवार श्वास और अघोष प्रयत्न होते हैं। वर्गों के तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम (ग, घ, ङ आदि) वर्णों तथा ह, य, व, र, ल,– (हशः) के संवार, नाद घोष प्रयत्न होते हैं। वर्गों के प्रथम, तृतीय और पञ्चम वर्णों तथा य र ल व (यण) का अल्प प्राण प्रयत्न होता है और वर्गों के द्वितीय, चतुर्थ वर्णों तथा श ष स ह – (शलः) का महाप्राण प्रयत्न होता है। 'अ' आदि स्वर ही उदात्त, अनुदात्त और स्वरित होते हैं।

बाह्य प्रयत्न – बोधक चक्र

विवार, श्वास, अघोष	संवार, नाद, घोष	अल्पप्राण महाप्राण	उदात्त, अनुदात्त स्वरित
क ख श	ग घ ङ ह	क ग ङ य ख घ श	अ ए
च छ ष	ज झ ञ् य	च ज ञ् र छ झ ष	इ ओ
ट ठ स	ड ढ ण व	ट, ड, ण ल	ठ ढ स उ ऐ
त थ	द ध न र	त द न व थ ध ह	ऋ औ
प फ	ब म ल	प ब म फ	लृ

विवार–वर्णों के मुंह से निकलते समय गले का खुलना विवार है। संवार – गले का संकोच संवार है। श्वास–जिन वर्णों के उच्चारण के साथ श्वास चलता प्रतीत होता है वे श्वासप्रयत्न वाले हैं। नाद–जिनके उपरान्त विशेष ध्वनि (नाद) होती है वे नाद हैं। घोष–जिन वर्णों के उच्चारण में गूंज सी होती है वे घोष है और घोष से ि न्न अघोष हैं। अल्प प्राण जिन के उच्चारण में प्राणवायु की कम आवश्यकता होती है वे अल्पप्राण हैं। महाप्राण–और जिनमें अधिक प्राणवायु की आवश्यकता होती है वे महाप्राण होते हैं। कादयो मावसानाः स्पर्शाः। यणोऽन्ताः स्थाः। शल ऊष्माण अचः स्वराः। अ कः, अ खः इति कखाभ्यां प्रागर्ध विसर्गसहशो जिह्वा मूलीयः। अ पः, अ फः इति पफाभ्यां प्रागर्ध विसर्गसदृश उपध्मानीयः। अं, अः, इत्यचः परावनुस्वारविसर्गौ।

कादय इति – 'क' से 'म' तक स्पर्श वर्ण कहलाते हैं। यणों (य र ल व) को अन्तःस्थ वर्ण कहते हैं। शल् (श ष स ह) प्रत्याहार के वर्णों को 'ऊष्म' वर्ण कहते हैं। अचों की स्वर संज्ञा है। क ख इस तरह जो क तथा ख से पूर्व अर्धविसर्ग सदृश जिह्वामूलीय कहलाता है। इसी प्रकार प फ से पूर्व अर्ध विसर्ग सदृश ध्वनि उपध्मानीय कहलाता है। (वर्णमाला में) जो 'अं' और 'अः' यहाँ स्वर (अच्) से परे हैं वे अनुस्वार (.) और विसर्ग (:) कहलाते हैं। यथा – अं अः।

21.3.3 टिप्पणी : क से म तक व्यञ्जनों के उच्चारण में कण्ठ तालु आदि स्थानों में जिह्वा का स्पर्श होता है। इसलिए यह स्पर्श वर्ण कहलाते हैं। यण् स्वर और व्यञ्जनों के मध्य में स्थित हैं क्योंकि 'इ' आदि के स्थान में य् आदि हुआ करते हैं और य् आदि के स्थान में इ आदि। अतः इन्हें अर्धस्वर ी कहते हैं। शर् के उच्चारण में जोर देने से उष्णता ी उत्पन्न होती है। अतः ये ऊष्म वर्ण ी कहलाते हैं। जिह्वामूलीय और उपध्मानीय – ये दोनों लेखन एवं उच्चारण में अर्धविसर्ग के सदृश माने जाते हैं।

21.3 मूलसूत्र :

(ख) अणुदित्सवर्णस्य चाऽ प्रत्ययः 1169

21.3.1 मूल वृत्ति ाग – प्रतीयते विधियत इति प्रत्ययः। अविधीयमानोऽण् उदिच्च सवर्णस्य संज्ञा स्यात्। अत्रैवाण् परेण णकारेण। कु चु टु तु पु एते उदितः। तदेवम् अ इत्यश्टादशानां संज्ञा। तथेकारोकारौ। ऋकारस्त्रिंशतः। एवं लश्कारोऽपि एचो द्वादशानाम्।

21.3.2 अर्थ – अणुदिदिति विधान किये जाने वाले को प्रत्यय कहते हैं। अविघीयमान (जिसका विधान न किया गया हो ऐसा अण् (अ, इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ, ह्, य्, व्, र् ल्) तथा उदित् (उत् है इत्संज्ञक जिनमें ऐसे कु, चु, टु आदि सवर्ण की संज्ञा होते हैं अर्थात् उनके द्वारा सवर्णों का ी ग्रहण होता है।

अत्रैवेति – केवल इसी सूत्र में अण् पर (लण् के) णकार से लिया जाता है।

टिप्पणी – 'अ इ उ ण्' और 'लण्' इन दो प्रत्याहार सूत्रों में 'ण्' अनुबन्ध का प्रयोग दो बार हुआ है। अतः दो प्रकार के अण् प्रत्याहार का प्रयोग इस व्याकरण में हुआ है। ढ्ढ एक पूर्व णकार जिसके द्वारा अ इ उ का ग्रहण होता है और ढ्ढढ्ढ दूसरा पर णकार जिसके द्वारा – समस्त स्वरों और ह य व र ल का ग्रहण होता है। सन्देह की स्थिति यह है कि 'अणुदित्–' सूत्र के कौन से णकार तक अण् प्रत्याहार माना जाय? इसके उत्तर में कहा गया है कि केवल इसी सूत्र में 'अण्' प्रत्याहार 'लण्' के 'ण्' तक लिया जाता है अन्यत्र नहीं।

परेणैवेणग्रहाः सर्वे पूर्वेणैवाण् ग्रहा मताः।

ऋतेऽणुदित्सवर्णस्ये तदेकं परेण तु।। उपर्युक्त निर्णय ाण्यकार के व्याख्यान के आधार पर ही किया गया है।

अनुनासिकाननुनासिक `देन य व ला द्विधा।

तेनोऽननुनासिकास्ते द्वयोर्द्वयोः संज्ञा।

21.3 मूलसूत्र

(ग) परः सन्निकर्शः संहिता 1 । 4 । 109

21.3.1 मूल वृत्ति ाग – वर्णानामतिशयितः सन्निधिः संहितासंज्ञः स्यात्।

कुचु इति कु चु टु तु पु – ये उदित् कहलाते हैं। अर्थात् उत् (उ) है इत्संज्ञक जिसमें, इन में 'उ' की इत्संज्ञा होकर लोप हो जाता है।

तदेवमिति – इस प्रकार 'अ' यह अठारह प्रकार के 'अ' की संज्ञा का बोधक है। इसी प्रकार इकार–उकार ी अठारह–अठारह के बोधक हैं। ऋकार तीस (18 ऋ + 12 ऌ) का तथा ऌकार ी तीस का बोधक है। ए, ओ, ऐ तथा औ (एच्) बारह–बारह के बोधक होते हैं। अनुनासिक तथा अननुनासिक ेद से य व ल दो–दो प्रकार के होते हैं। इसी से अननुनासिक य व ल दो–दो के बोधक रहते हैं।

21.3.2 अर्थ –

पर इति वर्णों के अतिशय सामीप्य की 'संहिता' यह संज्ञा होती है।

21.3.3 टिप्पणी –

साधारणतया शब्दों या वर्णों के बीच में अर्धमात्रा काल का व्यवधान होता है। अगर इससे अधिक व्यवधान नहीं होता तो संहिता अथवा सामीप्य माना जाता है।

21.3 मूलसूत्र

(घ) **हलोऽनन्तराः संयोगः** 1 । 1 । 7

अजि र व्यवहिता हलः संयोग संज्ञाः स्युः।

21.3.1 मूलसूत्र

(ङ) **सुप्तिङन्तं पदम्** 1 । 1 । 14

21.3.1 मूल वृत्ति ाग – सुबन्तं तिङन्तं च पदसंज्ञं स्यात्।

इति संज्ञा प्रकरणम्

21.3.2 अर्थ –

हल् इति अचों (स्वरों) के व्यवधान से रहित हल् (व्यञ्जनों) की संयोग संज्ञा होती है।

21.3.3 टिप्पणी – अर्थात् जिन व्यञ्जनों के बीच में स्वर नहीं होता उनको 'संयोग' शब्द से जाना जाता है। यथा 'अल्प' में 'ल्' तथा प की मिलकर संयोग संज्ञा है।

21.3.2 **सुप्तिङन्तमिति** – सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है।

21.3.3 टिप्पणी – सु, औ, जस्। अम्, औट्, शस् आदि वि क्ति सूचक प्रत्यय 'सुप्' हैं। जिनके अन्त में सुप् (सु, औ, जस् आदि) होता है वह सुबन्त होता है। जैसे राम + सु = रामः। राम + औ = रामौ। 'रामः' रामौ यह सिद्ध रूप सुबन्त है अतः पदसंज्ञक

हैं। सुप् प्रत्ययों से संज्ञा, सर्वनाम विशेषणादि पद बनाये जाते हैं। तिप्, तस्, झि (अन्ति) आदि प्रत्यय तिङ् कहे जाते हैं। जिनके अन्त में तिङ् (तिप्, तस् , झि आदि) होता है उसे तिङन्त कहते हैं। जैसे ् + ति = वति। वति तिङन्त है अतः पदसंज्ञक है। क्रियापद तिङ् प्रत्ययों से बनते हैं।

इति संज्ञा प्रकरणम्

21.4 अभ्यासार्थ प्रष्न

प्रश्न –इ, ई, चवर्ग, यकार तथा शकार का उच्चारण स्थान बतायें।

उत्तर– तालु।

प्रश्न– तवर्ग का उच्चारण स्थान कौन सा है?

उत्तर– दन्त स्थान।

प्रश्न– प्रत्यय किसे कहते हैं?

उत्तर– विधान किये जाने वाले को प्रत्यय कहते हैं।

प्रश्न– संहिता किसे कहते हैं?

उत्तर– वर्णों के अतिशय सामीप्य को संहिता कहते हैं।

प्रश्न– 'पद' संज्ञा क्या होती है?

उत्तर– सुबन्त और तिङन्त की पद संज्ञा होती है।

21.5 निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिये

प्रश्न– 'तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम्' का अर्थ लिखिये।

प्रश्न– क, च, प, त के उच्चारण स्थान बताइये।

प्रश्न– 'अणुदित् सवर्णस्य चाऽप्रत्ययः' सूत्र का अर्थ लिखिये।

प्रश्न– 'परः सन्निकर्शः संहिता' का अर्थ लिखिये।

प्रश्न– 'हलोऽन्तराः संयोगः' सूत्र का अर्थ लिखिये।

प्रश्न– 'सुप्तिङन्तं पदम्' सूत्र की व्याख्या कीजिये।

g g g g g g

सन्धि

सन्धि का अर्थ = संसार की प्रायः सभी भाषाओं में यह विशेषता पाई जाती है कि उनकी स्वतन्त्र ध्वनियों का जब पदों, पदांशों अथवा वाक्यों में किसी अन्य ध्वनियों से मेल हाता है तो उनमें अनेक प्रकार के उच्चारण–सम्बन्धी परिवर्तन घटित होते हैं । अतः किसी भाषा के शुद्ध एवं स्वीकृत उच्चारण को जानने के लिए इनका ज्ञान अत्यावश्यक है । शब्द, पद या वाक्य के स्तर पर दो या दो से अधिक शब्दों के सान्निध्य से उत्पन्न ध्वन्यात्मक परिवर्तन को भारतीय वैयाकरणों ने **'सन्धि'** कहा है ।

सन्धि का साधारण अर्थ है –**'सङ्गम या मेल।'** दो ध्वनियों के निकट आने से उनका मेल होता है, इसीलिए उसे **'सन्धि'** कहते हैं। सन्धि के लिए यह आवश्यक है कि दोनों ध्वनियाँ एक दूसरे के पास सटी हुई हों, दूरवर्ती शब्दों में सन्धि नहीं हो सकती । पाणिनि ने सन्धि को 'संहिता' कहा है । उनके अनुसार संहिता की परिभाषा है – **'परः सन्निकर्षः संहिता'** अर्थात् उच्चारण के समय वर्णों की अत्यधिक समीपता ही संहिता कहलाती है। इसीलिए संस्कृत–भाषा में सन्धि का नियम यह है कि जिन शब्दों में निकटता घनिष्ठ हो, उनमें सन्धि अवश्य होती है और जहाँ निकटता घनिष्ठ न हो, वहाँ सन्धि करना या न करना बोलने वाले की इच्छा पर निर्भर करता है।

सन्धि के विषय में नियम यह है – एक पद के भिन्न–भिन्न अवयवों में, धातु और उपसर्ग के बीच में और समास में सन्धि अवश्य करनी चाहिए, इनमें संहिता ऐच्छिक नहीं हो सकती । परन्तु वाक्य के अलग–अलग पदों के बीच सन्धि करना या न करना वक्ता की इच्छा पर निर्भर थी । यदि उच्चारण के समय जल्दी के कारण ध्वनियों की अधिक समीपता हो जाती थी तो सन्धि भी हो जाती थी और यदि उच्चारण में देरी के कारण ध्वनियाँ अत्यधिक समीप नहीं होती थीं तो सन्धि नहीं होती थी, जिसके कारण उन ध्वनियों का स्वतन्त्र उच्चारण बना रहता था ।

संस्कृत परम्परा में सन्धियाँ तीन प्रकार की मानी गई हैं –

1. स्वर–सन्धि

2. व्यञ्जन–सन्धि और

3. विसर्ग–सन्धि ।

यहाँ इनका पृथक्–पृथक् विवेचन किया जा रहा है।

1. स्वर–सन्धि

एक स्वर के साथ दूसरे स्वर के मेल होने से जो परिवर्तन होता है, उसे **'स्वर–सन्धि'** कहते हैं । स्वर–सन्धि में निम्नलिखित सन्धियाँ प्रमुख हैं –

अ) दीर्घ–सन्धि अथवा सवर्ण–सन्धि

आ) गुण–सन्धि

इ) वृद्धि–सन्धि

ई) यण्–सन्धि

उ) अयादि–सन्धि

अ) दीर्घ–सन्धि अथवा सवर्ण–सन्धि – दो समस्थानीय स्वर–ध्वनियों के संयोग से एक दीर्घ स्वर–ध्वनि उत्पन्न होती है । अतः इसे **'दीर्घ–सन्धि'** कहते हैं । दीर्घ–स्वर, सवर्ण–स्वरों के योग से होने के कारण इसे **'सवर्ण–सन्धि'** भी कहते हैं । जैसे –

अ अथवा आ के बाद, अ अथवा आ हो तो दोनों मिलकर **'आ'**, इ अथवा ई के बाद, इ अथवा ई हो तो दोनों मिलकर **'ई'** तथा उ अथवा ऊ के बाद, उ अथवा ऊ हो तो दोनों मिलकर **'ऊ'** हो जाते हैं ।

– अक : सवर्णे दीर्घः, 6.1.101

उदाहरण

क) अ+अ = आ

सुर+अरिः = सुरारिः

पुर+अरिः = पुरारिः

स्व+अधीन = स्वाधीनः

भाव+अर्थः = भावार्थः

देह+अन्तः = देहान्तः

परम+अणुः = परमाणुः

न+अस्ति = नास्ति

सर्व+अधिकः = सर्वाधिकः

वेद+अन्तः = वेदान्तः

अन्त्य + अनुप्रासः = अन्त्यानुप्रासः

अन्ध+अनुकरणम् = अन्धानुकरणम्

उत्तर+अधिकारः = उत्तराधिकारः

नृसिंह+अवतारः = नृसिंहावतारः

प्राण+अन्तः = प्राणान्तः

शत+अंशः = शतांशः

उप+अंगः = उपांगः

उप+अध्यक्षः = उपाध्यक्षः

प्र+अध्यापकः = प्राध्यापकः

स+अन्वयः = सान्वयः

स+अवकाशः = सावकाशः

स+अवधिः = सावधिः

स+अभिप्रायः = साभिप्रायः ।

ख) अ+आ = आ

धर्म+आत्मा = धर्मात्मा

हिम+आलयः = हिमालयः

छात्र+आलयः = छात्रालयः

छात्र+आवासः = छात्रावासः

जल+आशयः = जलाशयः

देव+आलयः = देवालयः

अल्प+आयुः = अल्पायुः

अनाथ+आलयः = अनाथालयः

अस्त्र+आगारः = अस्त्रागाारः

काम + आतुरः = कामातुरः

गृहस्थ+आश्रमः = गृहस्थाश्रमः

जीव+आत्मा = जीवात्मा

उप+आख्यानम्. = उपाख्यानम्

उप+आगमः = उपागमः

प्र+आचार्यः = प्राचार्यः

प्र+आरम्भः = प्रारम्भः

न+आस्तिकः = नास्तिकः ।

ग) आ+अ = आ

विद्या+अर्थी = विद्यार्थी

शिक्षा+अर्थी = शिक्षार्थी

परीक्षा+अर्थी = परीक्षार्थी

दया+अर्णवः = दयार्णवः

तथा+अपि = तथापि

तथा+अस्तु = तथास्तु

दीक्षा+ अन्तः = दीक्षान्तः

महा+अनुभवः = महानुभावः

छाया+अङ्कनम् = छायाङ्कनम्

सभा+अध्यक्षः = सभाध्यक्षः

घ) आ+आ = आ

विद्या+आलयः = विद्यालयः

महा+आशयः = महाशयः

तुलना+आत्मकः = तुलनात्मकः

चिंता+आकुलः = चिंताकुलः

प्रतीक्षा+आलयः = प्रतीक्षालयः

परा+आक्रान्तः = पराक्रान्तः

परा+आवर्तकः = परावर्तकः

कारा+आगारः = कारागारः

कारा+आवासः = कारावासः

चिकित्सा+आलयः = चिकित्सालयः

क्षुधा+आर्तः = क्षुधार्तः

तथा+आगतः = तथागतः

मिथ्या+आचारः = मिथ्याचारः

वार्ता+आलापः = वार्तालापः

ङ) इ+इ = ई

अभि+इष्टः = अभीष्टः

कपि+इन्द्रः = कपीन्द्रः

रवि+इन्द्रः = रवीन्द्रः

अति+इवि = अतीव

गिरि+इन्द्रः = गिरीन्द्रः

कवि+इन्द्रः = कवीन्द्रः

क्षिति+इन्द्रः = क्षितीन्द्रः

मुनि+इन्द्रः = मुनीन्द्रः

अति+इन्द्रियः = अतीन्द्रियः

च) इ+ई = ई

कपि+ईशः = कपिशः

हरि+ईशः = हरीशः

गिरि+ईश = गिरीशः

मुनि+ईश्वरः = मुनीश्वरः

कपि+ईश्वरः = कपीश्वरः

कवि+ईशः = कवीशः

अवनि+ईश = अवनीशः

अवनि+ईश्वरः = अवनीश्वरः

गिरि+ईश्वरः = गिरीश्वरः

क्षिति+ईशः = क्षितीशः

भूमि+ईश्वरः = भूमीश्वरः

वारि+ईशः = वारीशः

वारि+ईश्वरः = वारीश्वरः

अभि+ईप्सा = अभीप्सा

अभि+ईप्सितः = अभीप्सितः

परि+ईक्षकः = परीक्षकः

परि+ईक्षिताः = परीक्षितः

परि+ईक्षणम् = परीक्षणम्

छ) ई+इ= ई

महीइन्द्रः = महीन्द्रः

पृथ्वी+इन्द्रः = पृथ्वीन्द्रः

योगी+इन्द्रः = योगीन्द्रः

शची+इन्द्रः = शचीन्द्रः

स्त्री+इन्द्रियः = स्त्रीन्द्रियः

फणी+इन्द्रः = फणीन्द्रः

सुधी+इन्द्रः = सुधीन्द्रः

ज) ई+ई = ई

जानकी+ईशः = जानकीशः

रजनी+ईशः = रजनीशः

नदी+ईशः = नदीशः

करी+ईशः = करीशः

गौरी+ईशः = गौरीशः

धरणी+ईशः = धरणीशः

धरणी+ईश्वरः = धरणीश्वरः

लक्ष्मी+ईशः = लक्ष्मीशः

श्री+ईशः = श्रीशः

मही+ईशः = महीशः

मही+ईश्वरः = महीश्वरः

योगी+ईशः = योगीशः

योगी+ईश्वरः = योगीश्वरः

झ) उ+उ = ऊ

भानु+उदयः = भानूदयः

गुरु+उपदेशः = गुरूपदेशः

सु+उक्तिः = सूक्तिः

बहु+उद्देश्यः = बहूद्देश्यः

प्रतिवस्तु+उपमा = प्रतिवस्तूपमा

मधु+उत्सवः = मधूत्सवः

लघु+उत्तरः = लघूत्तरः

साधु+उक्तिः = साधूक्तिः

वस्तु+उत्प्रेक्षा = वस्तूत्प्रेक्षा

वस्तु+उपमा = वस्तूपमा

हेतु+उत्प्रेक्षा = हेतूत्प्रेक्षा

हेतु+उपमा = हेतूपमा ।

ञ) उ+ऊ = ऊ

लघु+ऊर्मिः = लघूर्मिः

सिन्धु+ऊर्मिः = सिन्धूर्मिः

भानु+ऊर्जितः = भानूर्जितः ।

ट)   ऊ + उ = ऊ

वधू +उत्सवः = वधूत्सवः

चमू+उद्धारः = चमूद्धारः

भू+उत्कर्षः = भूत्कर्षः

भू+उद्धारः = भूद्धारः।

ठ)   ऋ/ऋ+ऋ/ऋ = ऋ

पितृ+ऋणम् = पितृणम्

यदि ऋ या लृ के बाद ह्रस्व ऋ या लृ आये तो दोनों के स्थान में स्वेच्छा से **'ऋ'** या **'लृ'** कर सकते हें । जैसे –

होतृ+ऋकारः = होतृकारः या होतृ ऋकारः

होतृ+लृकारः = होत्लृकारः या होतृ ऋकारः ।

आ)   **गुण–सन्धि** – अ, आ के बाद इ,ई हो तो दोनों मिलकर **'ए'**, अ, आ के बाद उ, ऊ हो तो दोनों मिलकर **'ओ'** तथा अ, आ के बाद ऋ हो तो दोनों मिलकर 'अर्' हो जाते हैं । अ, आ के बाद यदि लृ आये तो दोनों के स्थान में 'अल्' हो जाता है ।

अदेङ्गुणः, 1.1.2; आद्गुणः 6.1.87

संस्कृत व्याकरण में अ, ए, ओ को गुण कहते हैं, अतः इसे 'गुण–सन्धि' कहा गया है । जैसे –

देव+इन्द्रः = देवेन्द्रः

यहाँ पर देव के **'व'** में **'अ'** है और उसके बाद 'इन्द्र' की **'ई'** है, इसलिए उपर्युक्त नियमानुसार देव के **'अ'** तथा इन्द्र की **'इ'**, दोनों के स्थान में **'ए'** हो जाता है ।

अन्य उदाहरण –

क)   अ+इ = ए

स्व+इच्छा = स्वेच्छा

नर+इन्द्रः = नरेन्द्रः

भारत+इन्दुः = भारतेन्दुः

अन्त्य +इष्टिः = अन्त्येष्टिः

आर्य+इतरः = आर्येतरः

कर्म+इन्द्रियः = कर्मेन्द्रियः

काव्य+इतरः = काव्येतरः

क्षेम+इन्द्रः = क्षेमेन्द्रः

गज+इन्द्रः = गजेन्द्रः

घ्राण+इन्द्रियः = घ्राणेन्द्रियः

देव+इन्द्रः = देवेन्द्रः ।

ख) **अ+ई = ए**

गण+ईश = गणेशः

सुर+ईशः = सुरेशः

दिन+ईशः = दिनेशः

देव+ईशः = देवेशः

अखिल+ईशः = अखिलेशः

अखिल+ईश्वरः = अखिलेश्वरः

नर+ईशः = नरेशः

धन+ईशः = धनेशः

एक+ईश्वरः = एकेश्वरः

परम+ईश्वरः = परमेश्वरः

उप+ईक्षकः = उपेक्षकः

उप+ईक्षितः = उपेक्षितः

प्र+ईक्षकः = प्रेक्षकः

प्र+ईक्षणम् = प्रेक्षणम् ।

ग) आ+इ = ए

तथा+इति = तथेति

महा+इन्द्रः = महेन्द्रः

यथा+इच्छा = यथेच्छा

यथा+इष्टम् = यथेष्टम्

रसना+इन्द्रियः = रसनेन्द्रियः

राजा+इन्द्रः = राजेन्द्रः

रमा+इन्द्रः = रमेन्द्रः

घ) आ+ई = ए

महा+ईशः = महेशः

राका+ईशः = राकेशः

लङ्का +ईशः = लङ्केशः

रमा+ईशः = रमेशः

दुर्गा+ईशः = दुर्गेशः

नर्मदा+ईश्वरः = नर्मदेश्वरः

राजा+ईशः = राजेशः

राजा+ईश्वरः = राजेश्वरः

ङ) अ+उ = ओ

वीर+उचित = वीरोचितः

चन्द्र+उदयः = चन्द्रोदयः

सूर्य+उदयः = सूर्योदयः

पीन+उरुः = पीनोरुः

हित+उपदेशः = हितोपदेशः

पर+उपकारः = परोपकारः

मद+उन्मतः = मदोन्मतः

उत्तर+उत्तरः = उत्तरोत्तरः

अतिशय+उक्तिः = अतिशयोक्तिः

ईश्वर+उन्मुखः = ईश्वरोन्मुखः

प्र+उत्साहनम् = प्रोत्साहनम्

स+उदाहरणम् = सोदाहरणम् ।

च) अ+ऊ = ओ

जल+ऊर्मिः = जलोर्मिः

कृष्ण+ऊरुः = कृष्णोरुः ।

छ) आ+उ = ऊ

गङ्गा+उदकम् = गङ्गोदकम्

कथा+उपकथनम् = कथोपकथनम्

महा+उदयः = महोदयः

संध्या+उपासनाः = संध्योपासना ।

ज) आ+ऊ = ओ

गङ्गा+ऊर्मिः = गङ्गोर्मिः

महा+ऊर्मिः = महोर्मिः

यमुना+ऊर्मिः = यमुनोर्मिः ।

झ) अ / आ+ऋ = अर्

ब्रह्म+ऋषिः = ब्रह्मर्षिः

देव+ऋषिः = देवर्षिः

राज+ऋषिः = राजर्षिः

सप्त+ऋषिः = सप्तर्षिः

महा+ऋषिः = महार्षि

ञ) अ+लृ = अल्

तव+लृकारः = तवल्कारः ।

इ) **वृद्धि–सन्धि** – अ अथवा आ के बाद ए अथवा ऐ हो तो दोनों मिलकर 'ऐ' हो जाता है तथा अ अथवा आ के बाद ओ अथवा औ हो तो दोनों को मिलकर 'औ' हो जाता हे । संस्कृत व्याकरण में आ, ऐ, औ की 'वृद्धि' संज्ञा है, अतः इसे 'वृद्धि–सन्धि' कहते हैं ।

– वृद्धिरादैच् 1.1.1; वृद्धिरेचि 6.1.88

जैसे –

क) अ+ए = ऐ

लोक+एषणा = लोकैषणा

पुत्र+एषणा = पुत्रैषणा

धन+एषणा = धनैषणा

वित्त+एषणा = वित्तैषणा

हित+एषी = हितैषी

तव+एव = तवैव ।

ख) अ+ऐ = ऐ

देव+ऐश्वर्यम् = देवैश्वर्यम्

मत+ऐक्यः = मतैक्यः ।

ग) आ+ए = ऐ

सदा+एव = सदैव

यथा+एव = यथैव

तथा+एव = तथैव

विद्या+एषी = विद्यैषी

घ) आ+ऐ = ऐ

विद्या+ऐश्वर्यम् = विद्यैश्वर्यम्

महा+ऐश्वर्यम् = महैश्वर्यम् ।

ङ) अ+ओ = औ

अधर+ओष्ठः = अधरौष्ठः

दन्त+ओष्ठः = दन्तौष्ठः

वन+ओषधिः = वनौषधिः

सर्व+ओषधिः = सर्वौषधिः

तण्डुल+ओदनम् = तण्डुलौदनम् ।

च) अ+औ = औ

परम+औषधम् = परमौषधम्

नेत्र+औषधम् = नेत्रौषधम्

वन+औषधम् = वनौषधम्

सर्व+औषधम् = सर्वौषधम्

धर्म+औदार्यम् = धर्मौदार्यम् ।

छ) **आ+ओ = औ**

गङ्गा+ओघः = गङ्ौघः

महा+ओषधम् = महौषधम्

महा+ओजः = महौजः

विद्या+ओजः = विद्यौजः ।

ज) **आ+औ = औ**

विद्या+औदार्यम् = विद्यौदार्यम्

महा+औत्सुक्यम् = महौत्सुक्यम्

महा+औषधिः = महौषधिः

महा+औषधम् = महौषधम् ।

ई) यण्–सन्धि – इ अथवा ई के बाद इ और ई को छोड़कर यदि कोई अन्य असवर्ण स्वर हो तो इ अथवा ई के स्थान पर **'य्'**, उ अथवा ऊ के बाद उ और ऊ को छोड़कर कोई अन्य स्वर हो तो उ अथवा ऊ के स्थान पर **'व्'** और 'ऋ' के बाद ऋ को छोड़कर कोई अन्य स्वर हो तो **'ऋ'** के स्थान पर **'र्'** तथा लृ को **'ल्'** हो जाता है ।

– इको यणचि 6.1.77

जैसे –

क) **'इ' के स्थान पर 'य्'**

यदि+अपि = यद्यपि

इति+आह = इत्याह

प्रति+एकः = प्रत्येकः

प्रति+उत्तरः = प्रत्युत्तरः

इति+आदि = इत्यादिः

नदी+उदकम् = नद्युदकम्

अभि+उत्थानम् = अभ्युत्थानम्

अभि+उदयः = अभ्युदयः

प्रति+उक्तिः = प्रत्युक्तिः

प्रति+उपकारः = प्रत्युपकारः

अग्नि+अस्त्रम् = अग्न्यस्त्रम्

प्रति+अक्षम् = प्रत्यक्षम्

ध्वनि+उपान्तः = ध्वन्युपान्तः

देवी+आगमः = देव्यागमः

अति+आचारः = अत्याचारः

वि+आकरणम् = व्याकरणम् ।

ख) 'उ' के स्थान पर 'व्'

सु+आगतम् = स्वागतम्

अनु+एषणम् = अन्वेषणम्

सु+अल्पम् = स्वल्पम्

हेतु+आभासः = हेत्वाभासः

अनु+एषकः = अन्वेषकः

मधु+ओदनम् = मध्वोदनम्

अनु+अयः = अन्वयः

गुरु+आदेशः = गुर्वादेशः

मधु+अरिः = मध्वरिः

गुरु+आज्ञा = गुर्वाज्ञा

शिशु+ऐक्यम् = शिश्वैक्यम्

तनु+अङ्गी = तन्वङ्गी

साधु+आचारः = साध्वाचारः

लघु+आहारः = लघ्वाहारः

वधू+आगमनम् = वध्वागमनम् ।

ग) 'ऋ' के स्थान पर 'र्'

भ्रातृ+अंशः = भ्रात्रंशः

पितृ+आज्ञा = पित्राज्ञा

पितृ+अनुमतिः = पित्रनुमतिः

मातृ+आज्ञा = मात्राज्ञा

पितृ+आदेशः = पित्रादेशः

पितृ+उपदेशः = पित्रुपदेशः ।

घ) 'लृ' के स्थान पर ल्

लृ+आकृतिः = लाकृतिः ।

उ) **अयादि–सन्धि** = ए, ऐ, ओ, औ (एच्) के आगे यदि कोई असवर्ण स्वर आए तो उनके (एच् के) स्थान में क्रमशः 'अय्', 'आय्', 'अव्', 'आव्' हो जाते हैं ।

– एचोऽयवायावः 6.1.78

जैसे –

ने+अनम् = नयनम्

शे+अनम् = शयनम्

हरे+ए = हरये

नै+अकः = नायकः

गै+अकः = गायकः

विष्णो+ए = विष्णवे

पो+अनः = पवनः

वटो+ऋक्षः = वटवृक्षः

भो+अति = भवति

पौ+अकः = पावकः ।

2. **व्यंजन–सन्धि** : व्यञ्जन का व्यञ्जन के साथ अथवा स्वर के साथ होनी वाली सन्धि को '**व्यंजन–सन्धि**' कहते हैं । दूसरे शब्दों में व्यञ्जन–सन्धि वह सन्धि है, जिसमें प्रथम इकाई (शब्द या प्रत्यय) के प्रारम्भ में व्यञ्जन हो और द्वितीय इकाई (शब्द या प्रत्यय) के प्रारम्भ में व्यञ्जन हो अथवा प्रथम इकाई के अन्त में स्वर हो तथा द्वितीय इकाई के प्रारम्भ में व्यंजन हो । इस प्रकार व्यञ्जन–सन्धि को स्थूल रूप से तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है ।

अ) व्यंजन+व्यञ्जन

आ) व्यंजन+स्वर तथा

इ) स्वर+व्यंजन

इन उपर्युक्त स्थितियों में घटित होने वाले परिवर्तनों के आधार पर व्यञ्जन–सन्धि के अन्तर्गत व्याकरण में **श्चुत्व, ष्टुत्व, जशत्व, झशत्व** आदि विभिन्न सन्धियाँ होती हैं । यहाँ इनमें से कतिपय सन्धियों का सोदाहरण विवेचन किया जा रहा है ।

क) श्चुत्व–सन्धि – स् या तवर्ग (त् थ् द् ध् न्) से पहले या बाद में श् या चवर्ग (च् छ् ज् झ् ञ्) आये तो स् को श् और तवर्ग को चवर्ग (त् > च्, द् > ज्, न > ञ्) हो जाता है ।

–स्तोः श्चुना श्चुः, 8.4.40

स् को '**श्**' तथा तवर्ग को '**चवर्ग**' अर्थात् '**श्चुत्व**' होने के कारण इसे '**श्चुत्व–सन्धि**' कहा जाता है ।

उदाहरण –

स् > श् – कस्+चित् = कश्चित्

कस्+च = कश्च

रामस्+च = रामश्च

कृष्णस्+च = कृष्णश्च

जनस्+चलति = जनश्चलति

हरिस्+चरित्रम् = हरिश्चरित्रम्

हरिस्+शेते = हरिश्शेते ।

त् > च् – उत्+चारणम् = उच्चारणम्

सत्+चरित्रम् = सच्चरित्रम्

महत्+छत्रम् = महच्छत्रम्

शरत्+चन्द्रः = शरच्चन्द्रः

शरत्+चन्द्रिका = शरच्चन्द्रिका

सत्+चिदानन्द = सच्चिदानन्द

द् > ज् – सद्+जनः = सज्जनः

एतद्+जलम् = एतज्जलम्

बृहद्+झरः = बृहज्झरः

तद्+जन्यः = तज्जन्यः

जगद्+जननी = जगज्जननी

यावद्+जीवनम् = यावज्जीवनम्

विद्वद्+जनः = विद्वज्जनः

शरद्+ज्योत्स्ना = शरज्ज्योत्स्ना ।

न् > ञ् – याच्+ना = याच्ञा

शार्ङ्गिन्+जयः = शार्ङ्गिञ्जयः ।

ख) **ष्टुत्व–सन्धि** = यदि स् या तवर्ग (त् थ् द् ध् न्) से पहले या बाद में ष् या तवर्ग हो तो स् को 'ष्' तथा तवर्ग को **'टवर्ग'** (त् > ट्, द् > ड्, न् > ण्) हो जाता है । –ष्टुना ष्टुः,8.4.41

स् को **'ष्'** और तवर्ग को **'टवर्ग'** (ष्टुत्व) होने के आधार पर इसे **'ष्टुत्व–सन्धि'** कहा जाता है ।

उदाहरण –

स् > ष् – पुस्+टः = पुष्टः

रामस्+षष्ठः. = रामष्षष्ठः

रामस्+टीकते = रामष्टीकते ।

त् > ट् – तत्+टीका = तट्टीका

पेष्+ता = पेष्टा

इष्+तः = इष्टः

दुष्+तः = दुष्टः

हृष्+तः = हृष्टः

पुष्+तः = पुष्टः ।

द् > ड् – उद्+डीनः = उड्डीनः ।

न् > ण् – चक्रिन्+ढौकसे = चक्रिण्ढौकसे

विष्+नुः = विष्णुः

कृष्+नः = कृष्णः ।

ग) णत्व–विधान यदि ऋ, ॠ, र्, तथा ष् के आगे (एक ही पद में) न् हो तो, उसे ण् हो जाता है ।

– रषाभ्यां नोणः समानपदे, 8.4.41

ऋवर्णान्नस्य णत्वं वाच्यम्, वार्तिक

जैसे –

नृ+नाम् = नृणाम्

नृ+नाम् = नृणाम्

चतसृ+ नाम् = चतसृणाम्

भातृ+नाम् त्र भातृणाम्

कीर्+नः = कीर्णः

जीर्+नः = जीर्णः

शीर्+नः = शीर्णः

पूर्+नः = पूर्णः

चतुर्+नाम् = चतुर्णाम्

विस्तीर्+नम् = विस्तीर्णम्

विष्+नुः = विष्णुः

कृष्+नः = कृष्णः

जिष्+नुः = जिष्णुः

दोषा+नाम् = दोषाणाम्

पुष्+नाति = पुष्णाति ।

एक ही पद में यदि पद के मध्य में स्वर (अ, इ, उ, ए, ऐ, ओ,औ); कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्); पवर्ग (प्, फ्, ब्, भ्, म्); ह्, य्, व्, र् ; आ और न् हो तो भी ऋ, र्, ष् से परे न् को 'ण्' हो जाता है । परन्तु पद के अन्त वाले न् को ण् नहीं होता।

–अट्कुप्वाङ् नुम्व्यवायेऽपि, 8.4.2

पदान्तस्य, 8.4.37

जैसे =

तिसृ+नाम् = तिसृणाम्

मृगे+न = मृगेण

करा+नाम् = कराणाम्

करि+ना = करिणा

गुरु+ना = गुरुणा

मूर्खे+न = मूर्खेण

दर्पे+न = दर्पेण

रये+न = रयेण

गर्वे+न = गर्वेण

चतुर्+नाम् = चतुर्णाम्

पूष्+ना = पूष्णा

आर्ये+न = आर्येण

मूर्खा+नाम् = मूर्खाणाम्

ग्रहा+नाम् = ग्रहाणाम्

राव+नः = रावणः

रामे+न = रामेण ।

पदान्त न् को ण् न होने के उदाहरण =

रामान्, हरीन्, गुरून्, वृक्षान्, भातृन् आदि ।

घ) **षत्व–विधान** – इ, उ, ऋ, लृ, ए, ओ, ऐ, औ; य्, व्, र्, ल्; ह् तथा कवर्ग (क्, ख्, ग्, घ्, ङ्) के बाद आने वाले अपदान्त स् को (जो किसी दूसरे वर्ण के स्थान में आदेश रूप हो या प्रत्यय का अवयव हो) 'ष्' हो जाता है ।

–अपदान्तस्य मूर्धन्यः, 8.3.55, इण्कोः, 8.3.57, आदेश प्रत्यययोः, 8.3.59

जैसे –

मुनि+सु = मुनिषु

नदी+सु = नदीषु

वधू+सु = वधूषु

रामे+सु = रामेषु

वने+सु = रामेषु

वने+सु = वनेषु

ए+साम् त्र एषाम्

अन्ये+साम् त्र अन्येषाम्

मातृ+सु त्र मातृषु

गो+सु त्र गोषु

ग्लौ+सु त्र ग्लौषु ।

3. **विसर्ग–सन्धि (अयोगवाह सन्धि)** – विसर्ग के पश्चात् स्वर अथवा व्यञ्जन के आने के कारण विसर्ग में जो परिवर्तन होता है उसे 'विसर्ग–सन्धि' कहते हैं । परवर्ती वर्ण के कारण विसर्ग में होने वाले विकार आठ प्रकार के हैं :–

"ओभावश्च विवृतिश्च शषसा रेफ एव च ।

जिह्वामूलमुपध्माच गतिरष्टविधोष्मणः ।।"

ओभाव, विवृति (सन्धि का लोप होना), शकार होना, षकार होना, सकार होना, रेफ होना, जिह्वामूलीय होना, उपध्मानीय होना ।

यथा –

क) :> ओ – देवः+याति = देवोयाति ।

ख) :∅ (लोप) – नरः+आगच्छन्ति = नर आगच्छन्ति ।

ग) :> श् – हरिः+शेते = हरिश्शेते ।

घ) :> ष् – आविः+कारः = अविष्कारः

ङ) :> र् – अहः+दिनम् = अहर्दिनम् ।

च)   :> (जिह्वामूल) – कः+करोति = क करोति (कक्करोति) ।

छ)   :> (उपध्मानीय) – कः+पचति = क पचति (कप्पचति) ।

इनके विशेष नियम इस प्रकार से हैं :–

क) **ओभाव** = अकार (अ) के बाद आने वाले विसर्ग को **'ओ'** हो जाता है यदि इसके बाद ह्रस्व अ या हश् प्रत्याहार के वर्ण (वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम वर्ण; ह और अन्तःस्थ) हों तो । – ससजुषो रूः, 8.2.66; हशि च, 6.1.114;

अतो रोरप्लुतादप्लुते, 6.1.113

जैसे –

कः+अयम् = कोऽयम्

देवः+अस्ति = देवोऽस्ति

देवः+अधुना = देवोऽधुना

नृपः+अवदत् = नृपोऽवदत्

बालः+अस्ति = बालोऽस्ति

यः+अपि = योऽपि

शिवः+अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः

अधः+गतिः. = अधोगतिः

बालकः+गच्छति = बालको गच्छति

तमः+गुणः = तमोगुणः

यशः+गानम् = यशोगानम्

रजः+गुणः = रजोगुणः

सतः+गुणः. = सतोगुणः

सरः+जम् = सरोजम्

यशः+दा = यशोदा

पयः+धरः = पयोधरः

तपः+धनम् = तपोधनम्

तपः+धामः = तपोधामः

तिरः+धानम् = तिरोधानम्

पयः+निधिः = पयोनिधिः

मनः+नयनम् = मनोनयनम्

तपः+बलम् = तपोबलम्

मनः+बलम् = मनोबलम्

मनः+भावः = मनोभावः

तिरः+भावः = तिरोभावः

तपः+भूमिः = तपोभूमिः

तिरः+भूतः = तिरोभूतः

शिरः+भूषणम् = शिरोभूषणम्

अधः+मुखः = अधोमुखः

तेजः+मण्डलम् = तेजोमण्डलम्

नभः+मण्डलम् = नभोमण्डलम्

तेजः+मयः = तेजोमयः, मनः+योगः = मनोयोगः

मनः+रञ्जनम् = मनोरञ्जनम्

मनः+रथः = मनोरथः

मनः+वृत्तिः = मनोवृत्तिः

तपः+वनम् = तपोवनम्

मनः+विकारः = मनोविकारः

मनः+विज्ञानम् = मनोविज्ञानम्

वयः+वृद्धः = वयोवृद्धः

मनः+हरः = मनोहरः

तिरः+हितः = तिरोहितः ।

ख) **विसर्ग का लोप** = भो, भगो, अघो और ह्रस्व 'अ' या दीर्घ 'आ' के बाद आने वाले विसर्ग का लोप हो जाता है, यदि विसर्ग के बाद 'अ' को छोड़कर अन्य स्वर–वर्ण तथा हश् प्रत्याहार (ह, अन्तस्थ, वर्ग के तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम वर्ण) हो ।

–भो भगो अघो अपूर्वस्थ योऽशि, 8.3.17;

हलि सर्वेषाम्, 8.3.22; लोपः शाकल्यस्य,8.3.19

जैसे –

भोः+देवाः = भोदेवाः

देवः+आगच्छति = देव आगच्छति

सुतः+आगच्छति = सुत आगच्छति

देवाः+आगच्छन्ति = देवा आगच्छन्ति

देवः+इति = देव इति

देवः+उपदिशति = देव उपदिशति

देवाः+उपदिशन्ति = देवा उपदिशन्ति

देवः+एति = देव एति

जनाः+गच्छन्ति = जना गच्छन्ति

बालाः+गच्छन्ति = बाला गच्छन्ति

देवाः+जयन्ति = देवा जयन्ति

अश्वाः+धावन्ति = अश्वा धावन्ति

देवाः+नम्याः = देवा नम्याः

कन्याः+यान्ति = कन्या यान्ति

देवाः+हसन्ति = देवा हसन्ति ।

ग) :> **श्** – विसर्ग के बाद चवर्ग अथवा श् ध्वनि आये तो विसर्ग के स्थान पर 'श्' हो जाता है ।

जैसे –

बालः+चलति = बालश्चलति

रामः+चलति = रामश्चलति

तपः+चर्या = तपश्चर्या

पुरः+चर्या = पुरश्चर्या

नभः+चरः = नभश्चरः

पुरः+चरणम् = पुरश्चरणम्

कः+चित् = कश्चित्

बालकः+चेते = बालकश्चेते

अन्तः+चेतना = अन्तश्चेतना

निः+चक्षुः = निश्चक्षुः

निः+चन्द्रः = निश्चन्द्रः

निः+चलः = निश्चलः

बहिः+चरः = बहिश्चरः

हरिः+चन्द्रः = हरिश्चन्द्रः

निः+चिन्तः = निश्चिन्तः

निः+चेष्टः = निश्चेष्टः

दुः+चरित्रम् = दुश्चरित्रम्

दुः+चेष्टा = दुश्चेष्टा

शिरः+छेदनम् = शिरश्छेदनम्

निः+छन्दः = निश्छन्दः

निः+छलः = निश्छलः

निः+छिद्रः = निश्छिद्रः

रामः+शेते = रामश्शेते

हरिः+शेते = हरिश्शेते ।

घ) :> ष् = i) विसर्ग के बाद टवर्ग या 'ष्' आये तो विसर्ग को 'ष्' हो जाता है ।

ii) यदि विसर्ग के पूर्व 'इ' या 'उ' हो और बाद में कवर्ग (विशेषतः क्, ख्) या पवर्ग (विशेषतः प्, फ्) हो तो विसर्ग को 'ष्' हो जाता है ।

जैसे –

धनुः+टङ्कारः = धनुष्टङ्कारः

रामः+टीकते = रामष्टीकते

पुः+टः = पुष्ट

निः+ठा = निष्ठा

विः+णुः = विष्णुः

रामः+षष्ठः = रामष्षष्ठः

निः+कण्टकः = निष्कण्टकः

निः+करोति = निष्करोति

निः+कर्षः = निष्कर्षः

निः+कलङ्कः = निष्कलङ्कः

निः+कामः = निष्कामः

निः+कारणम् = निष्कारणम्

निः+क्रान्तः = निश्क्रान्तः

आविः+कृतम् = आविष्कृतम्

निः+पापः = निष्पापः

निः+प्रत्यूहम् = निष्प्रत्यूहम्

दुः+करः = दुष्करः

चतुः+कोणः = चतुष्कोणः

दुः+कृतम् = दुष्कृतम्

चतुः+पदी = चतुष्पदी

दुः+कृतम् = दुष्कृतम्

चतुः+पदी = चतुष्पदी

दुः+प्रवादः = दुष्प्रवादः

दुः+प्राप्यः = दुष्प्राप्यः

दुः+प्रवृतिः = दुष्प्रवृत्तिः

निः+फलम् = निष्फलम्

चतुः+फलम् = चतुष्फलम्

ङ) :> स् – विसर्ग के बाद यदि स्वर् प्रत्याहार (विशेषतः त् और क् वर्ण) आये तो विसर्ग के स्थान में 'स्' हो जाता है ।

–विसर्जनीयस्य सः, 8.3.34

जैसे –

यशः+कलपम् = यशस्कल्पम्

अन्तः+तलः = अन्तस्तलः

मनः+तापः = मनस्तापः

रामः+तरति = रामस्तरति

बालः+तिष्ठति = बालस्तिष्ठति

रामः+तिष्ठति = रामस्तिष्ठति

गजाः+तिष्ठन्ति = गजास्तिष्ठन्ति

मनः+तुष्टिः = मनस्तुष्टिः

नमः+ते = नमस्ते

निः+तत्त्वम् = निस्तत्त्वम्

निः+तन्द्रः = निस्तन्द्रः

निः+तरङ्गः = निस्तरङ्गः

निः+तरणम् = निस्तरणम्

निः+तारः = निस्तारः

निः+तेजः = निस्तेजः

दुः+तरः = दुस्तरः

शिरः+त्राणम् = शिरस्त्राणम्

हरिः+त्राता = हरिस्त्राता

विष्णुः+त्रायते = विष्णुस्त्रायते

च) :> **र्** – अ, आ से भिन्न स्वरों के बाद आने वाले विसर्ग के बाद कोई स्वर अथवा घोष–व्यञ्जन (वर्ग के तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम वर्ण) आये तो विसर्ग को 'र्' हो जाता है ।

जैसे –

(शब्द+शब्द) – ज्योतिः+बीजः = ज्योतिर्बीजः (जुगनूं)

ज्योतिः+मण्डलम् = ज्योतिर्मण्डलम्

ज्योतिः+लोकः = ज्योतिर्लोकः

ज्योतिः+लिङ्गम् = ज्योतिर्लिङ्गम्

ज्योतिः+विद्या = ज्योतिर्विद्या

आशीः+वचनम् = आशीर्वचनम्

धनुः+धरः = धनुर्धरः

आयुः+वेदः = आयर्वेदः

(उपसर्ग+शब्द) – निः+गतः = निर्गतः

निः+गमनम् = निर्गमनम्

निः+गुणः = निर्गुणः

निः+घोषः = निर्घोषः

निः+जनः = निर्जनः

निः+जलम् = निर्जलम्

निः+जीवः = निर्जीवः

निः+देशः = निर्देशः

निः+धनः = निर्धनः

निः+धारणम् = निर्धारणम्

निः+भयः = निर्भयः

निः+मत्सरः = निर्मत्सरः

निः+मूलः = निर्मूलः

निः+यातः = निर्यातः

निः+लेपः = निर्लेपः

निः+लिप्तः = निर्लिप्तः

निः+वसनः = निर्वसनः

निः+वाचनम् = निर्वाचनम्

निः+विकल्पः = निर्विकल्पः

निः+वेघः = निर्वेघः

दुः+गन्धः = दुर्गन्धः

दुः+गतिः = दुर्गतिः

दुः+गुणः = दुर्गुणः

दुः+जनः = दुर्जनः

दुः+जेयः = दुर्जेयः

दुः+दिनम् = दुर्दिनम्

दुः+धरः = दुर्धरः

दुः+बलः = दुर्बलः

दुः+बुद्धिः = दुर्बुद्धिः

दुः+भावः = दुर्भावः

दुः+भृत्यः = दुर्भृत्यः

दुः+योधनः = दुर्योधनः

दुः+लङ्ध्यम् = दुर्लङ्ध्यम्

दुः+लभम् = दुर्लभम्

दुः+व्यवहारः = दुर्व्यवहारः

दुः+व्यसनम् = दुर्व्यसनम् ।

यद्यपि विसर्ग से पूर्व अ, आ का निषेध माना गया है परन्तु अ, आ के बाद भी

विसर्ग को घोष व्यञजन आने पर 'र्' हो जाता है ।

जैसे –

पुनः+गमनम् = पुनर्गमनम्

पुनः+जन्मः = पुनर्जन्मः

पुनः+जातः = पुनर्जातः

पुनः+जीवनम् = पुनर्जीवनम्

पुनः+मुद्रणम् = पुनर्मुद्रणम्

पुनः+वासः = पुनर्वासः

पुनः+विवाहः = पुनर्विवाहः

अन्तः+दृष्टिः = अन्तर्दृष्टिः

अन्तः+बोधः = अन्तर्बोधः

अन्तः+भावः = अन्तर्भावः

अन्तः+योगः = अन्तर्योगः

छ) :> जिह्वामूलीय – अकारान्त शब्द के साथ संलग्न विसर्ग के बाद यदि क् ख् वर्ण में से कोई वर्ण आए, तो विकल्प से जिह्वामूलीय हो जाता है ।

–कुप्वो क पौ च (सि.कौ.)

यथा –

बालकः + करोति = बालक करोति या बालकः करोति ।

रामः+करोति = राम करोति या रामः करोति ।

कृषकः+खनति = कृषक खनति या कृषकः खनति ।

ज) :> उपध्मानीय – अकारान्त शब्द के साथ आने वाले विसर्ग के बाद प् या फ् आए तो विसर्ग के स्थान पर विकल्प से उपध्मानीय हो जाता है।

–कुप्वो क पौ च (सि.कौ.)

यथा –

बालकः + पिबति = बालक   पिबति या बालकः पिबति ।

वृक्षः+फलति = वृक्ष   फलति या वृक्षः फलति ।

रामः+ पिबति = राम   पिबति या रामः पिबति ।

इस प्रकार संस्कृत में विसर्ग (:) के आठ विकार होते हैं ।

✠✠✠✠✠✠✠

Objective Type Questions

बहुविकल्पीय प्रश्न

पाठशीर्षक :–

जम्मू विश्वविद्यालय Directorate of Distance Education द्वारा B.A.-Ist Sem. पत्र संस्कृत के लिए निर्धारित पाठ्यक्रम से सम्बद्ध बहुविकल्पीय प्रश्न (Objective Type Questions) और उनके उत्तर

रुपरेखा :

1) उद्देश्य

2) पाठ परिचय

3) बहुविकल्पीय प्रश्न

   1) पञ्चतन्त्रम् में वर्णित कथाओं से सम्बद्ध प्रश्न

   2) शब्द रुपों से सम्बद्ध प्रश्न

   3) धातु–रूपों से सम्बद्ध प्रश्न

   4) संज्ञा प्रकरण से सम्बद्ध प्रश्न

   5) स्वर, व्यञ्जन, विसर्ग सीन्ध से सम्बद्ध प्रश्न

4) उत्तरमाला

5) सारांश

1) <u>उद्देश्य :–</u> इस पाठ द्वारा छात्र सम्पूण पाठ्यक्रम से सम्बद्ध सम्भावित प्रश्नों के लधु उत्तर देने में सक्षम होगे।

- ✓ अपरीक्षितकारक नामक 'पञ्चतन्त्र' मे वर्णित कथाओ से प्राप्त होने वाली शिक्षाओं से ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- ✓ 'पञ्चतन्त्र' की लघु कथाओं द्वारा लघु प्रश्नों से सम्बद्ध जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- ✓ अजन्त, हलन्त एवं सर्वनाम शब्दों की रुपावली से सम्बद्ध लधु प्रश्नों से परिचित होंगे।
- ✓ भू, पठ्, चुर, कथ् दा आदि धातुओं के पाँचों लकारों से सम्बन्धित प्रश्नों का अधिक कुशलता से उत्तर दे सकेंगें।
- ✓ लधुसिद्धान्त कौमुदो के संज्ञा प्रकारण से पुछे जाने वाले वस्तुनिष्ठ प्रश्नों को पुनः स्मरण कर पायेंगे।
- ✓ हिन्दी से संस्कृत में अनुवाद कार्य एवं स्वर, व्यञ्जन तथा विसर्ग सन्धि से सम्बन्धित प्रश्नों को समझ सकेंगे।

2) <u>पाठ परिचय :–</u>

इस पाठ में Objective Type Questions (बहुविकल्पीय प्रश्न) और उनके उत्तर दिये गये हैं। पाठ को दो भागों में बाँटा है 1 कथा साहित्य (पञ्चतन्त्रम्) और 2 संस्कृत व्याकरण। प्रत्येक प्रश्न के कम से कम चार उत्तर दिये गए हैं, जिनमे से एक सही और तीन गलत हैं। विद्यार्थी ठीक (सही) उत्तर को (✓) चिह्न से चिह्नित करेंगें। प्रश्नों के सही उतरों को इसी पाठ के अन्त में 'उत्तरमाला' द्वारा दर्शाया गया है।

कथा साहित्य :

1) कथासाहित्य का सर्वाधिक प्राचीन संस्कृत कथा ग्रन्थ कौन सा है?

(क) हितोपदेश (ख) पञ्चतन्त्र

(ग) कादम्बरी (घ) दशकुमारचरित

2) पञ्चतन्त्र के रचयिता कौन हैं?

(क) नारायण पण्डित (ख) वेद व्यास

(ग) विष्णु शर्मा (घ) बाणभट्ट

3) विष्णुशर्मा विरचित पञ्चतन्त्र में कितने तन्त्र हैं?

(क) 5 (ख) 10

(ग) 6 (घ) 8

4) नारायण पण्डित ने कथा साहित्य को किस संज्ञा से अभिहित किया है?

(क) नीतिसाहित्य (ख) गद्य साहित्य

(ग) चम्पू साहित्य (घ) नाट्य साहित्य

5) कथा साहित्य का उद्गम किस प्राचीनतम वेद से माना गया है?

(क) यजुर्वेद (ख) सामवेद

(ग) अथर्ववेद (ङ) ऋग्वेद

6) राजनीति के पाँच सिद्धान्तों का कथाओं के माध्यम से उल्लेख किस ग्रन्थ में हुआ है?

(क) दशकुमारचरित (ख) उत्तररामचरित

(ग) पञ्चतन्त्र (घ) ऋग्वेद

7) पञ्चतन्त्र विरचित विष्णुशर्मा का समय क्या है?

(क) 300 ई॰ पू॰ (ख) 500 ई॰ पू॰

(ग) 400 ई॰ पू॰ (घ) 600 ई॰ पू॰

8) अपरीक्षितकारकम् आचार्य विष्णुशर्मा विरचित पञ्चतन्त्र का कौन सा तन्त्र है?

(क) प्रथम तन्त्र (ख) पञ्चमतन्त्र

(ग) द्वितीय तन्त्र (घ) चतुर्थ तन्त्र

9) अपरीक्षितकारकम् नामक पञ्चम्तन्त्रम मे कितनी कथाओं का वर्णन है?

(क) 10 (ख) 16

(ग) 15 (घ) 08

10) मणिभद्र नामक सेठ का वर्णन किस कथा में है?

(क) क्षपणक कथा (ख) मूर्ख पण्डित कथा

(ग) ब्राह्मण कर्कट (घ) मत्स्य मण्डुक कथा

11) मणिभद्र सेठ को किस साधु ने दर्शन दिये?

(क) बौद्ध साधु (ख) जैन साधु

(ग) जैमनीय साधु (घ) स्वर्णमय साधु

12) जैन साधु पर डण्डे से किस ने प्रहार किया?

(क) नाई ने (ख) मणिभद्र सेठ ने

(ग) मणिभद्र की पत्नी ने (घ) पद्मनिधि ने

13) जैन साधु पर डण्डे से प्रहार करते समय किस ने देखा?

(क) मणिभद्र (ख) नाई

(ग) मनोरमा (घ) नौकर

14) न्यायधीश ने किस को फाँसी पर चढ़ाने का आदेश दिया?

(क) मणिभद्र सेठ (ख) नौकर

(ग) जैन साधु (घ) न्यायधीश

15) सोने के लालच मे कौन क्षपणकों के आश्रम में भोजन का आमन्त्रण देने गया?

(क) मणिभद्र सेठ (ख) नाई

(ग) जैन साधु (घ) न्यायधीश

16) ब्राह्मणी नेवले की कथा में ब्राह्मण का क्या नाम था?

(क) मणिभद्र (ख) मन्थरक

(ग) शतबुद्धि (घ) देवशर्मा

17) ब्राह्मणी ने किस का अपने पुत्र के समान बड़े प्यार से पालन–पोषण किया?

(क) नेवले (ख) सर्प

(ग) गौ (घ) कबुतर

18) काले सर्प से ब्राह्मणी के पुत्र की रक्षा किसने की?

(क) देवताओं ने (ख) गौ ने

(ग) नेवले ने (घ) देवशर्मा ने

19) ब्राह्मणी नेवले की कथा में नेवले को किस ने मारा?

(क) देव शर्मा (ख) ब्राह्मणी

(ग) सर्प (घ) हाथी

20) भैरवानन्द योगी का वर्णन किस कथा में है?

(क) क्षपणक कथा (ख) विकाल–वानर कथा

(ग) लोभाविष्ट चक्रधर (घ) मूर्ख पण्डित कथा

21) लोभाविष्ट–चक्रधर कथा में धनोपार्जन के लिए चार ब्राह्मण–पुत्र किस नगरी में जाते हैं?

(क) अवन्तिका (उज्जैन) (ख) रामनगरी

(ग) जम्मू (घ) कश्मीर

22) ब्राह्मण–पुत्रों को चार मन्त्रसिद्ध गुटिकाएँ किस ने दी?

(क) महर्षि व्यास (ख) बौद्ध योगी

(ग) भैरवानन्द योगी (घ) जैन साधु

23) लोभाविष्ट–चक्रधर कथा में चक्र किस ब्राह्मण के मस्तक पर चढ गया?

(क) प्रथम (ख) द्वितीय

(ग) तृतीय (घ) चतुर्थ

24) मृत सिहं को जीवित करने की कथा का वर्णन मिलता है?

(क) सिंहकारकमूर्ख ब्राह्मण कथा (ख) लोभाविष्ठ चक्रधर कथा

(ग) मूर्ख पण्डित कथा (घ) क्षपणक कथा

25) विद्या की अपेक्षा क्या उत्तम होती है?

(क) आँखे (ख) बुद्धि

(ग) घन (घ) शास्त्र

26) मूर्खपण्डित कथा में चार ब्राह्मण–मित्रो ने किस देश जाकर विद्या अध्ययन किया?

(क) अवन्तिका (ख) विदर्भ

(ग) कन्नौज (घ) वत्स

27) ''महाजनों येन गतः सः पन्थाः'' का वर्णन किस कथा में है?

(क) सिंहकारकमूर्ख ब्राह्मण कथा (ख) क्षपणक कथा

(ग) चन्द्रभूपति कथा (घ) मूर्ख पण्डित कथा

28) सेठ के मृत पुत्र को अन्त्येष्टि के लिए शमशान ले जाते किस ने देखा?

(क) चार ब्राह्मणों ने (ख) मूर्ख पण्डित ने

(ग) एक ब्राह्मण ने (घ) गघे ने

29) शमशान पहुँचने पर गद्ये और उँट का वर्णन किस कथा में हैं?

(क) मूर्खपण्डित कथा (ख) चन्द्रभूपतिकथा

(ग) रासभश्रृगांल कथा (घ) क्षपणक कथा

30) 'दीर्धसूत्रो विनश्यति' वर्णन मिलता हैं?

(क) मूर्खपण्डित कथा में (ख) सिंहश्रृंगाल कथा मे

(ग) ब्राह्मण कथा में (घ) क्षपणक कथा मे

31) 'छिद्रेष्वनर्था बहुली भवन्ति' वाक्य मिलता है?

(क) ब्राह्मण कथा में (ख) मूर्ख पण्डित कथा में

(ग) भारूण्डी पक्षी कथा में (घ) रासभश्रृंगाल कथा में

32) राजा अमरशक्ति के पुत्र थे?

(क) 3 (ख) 4

(ग) 5 (घ) 6

33) अपरीक्षितकारक में है—

(क) रासभश्रृगाल कथा (ख) वानर श्रृंगाल कथा

(ग) सिंहश्रृंगाल कथा मे (घ) मूर्खश्रृंगाल कथा

34) शतबुद्धि और सहस्त्रबुद्धि नामक दो मत्स्य का वर्णन मिलता है–

(क) मन्थरकौलिक कथा (ख) मत्स्य–मण्डुक कथा

(ग) मत्स्य–वानर कथा (घ) शतसहस्त्रबुद्धि कथा

35) एक बुद्धि नामक मेंढक का वर्णन किस कथा में किया गया है–

(क) विकाल वानर कथा (ख) मत्स्यवानर कथा

(ग) क्षपणक कथा (घ) मत्स्यमण्डुक कथा

36) मत्स्य–मण्डुक कथा में मछुआरों से अपने आप को किस ने बचाया है–

(क) शतबुद्धि ने (ख) सहस्त्रबुद्धि ने

(ग) एकबुद्धि ने (घ) केकड़े ने

37) उद्धत नामक गधे का वर्णन मिलता हैं?

(क) रासभश्रृंगाल कथा (ख) मत्स्यमण्डुक कथा

(ग) मूर्खपण्डित कथा (घ) क्षपणक कथा

38) गधे और गीदड़ की मित्रता का कथा का वर्णन मिलता है

(क) सिंहश्रृंगाल कथा (ख) रासभश्रृंगाल कथा

(ग) मूर्ख ब्राहमण कथा (घ) मत्स्यमण्डुक कथा

39) रासभ और श्रृंगाल चाँदनी रात में खेतों मे घुस कर क्या खाते है

(क) पपीता (ख) ककडियाँ

(ग) आम (घ) फसल

40) रासभ और श्रृंगाल कथा में किस ने गीदड से गीत गाने की इच्छा व्यक्त की?

(क) सिंह ने (ख) वानर ने

(ग) गधे ने (घ) मत्स्य ने

41) मन्थरक नामक जुलाहे का वर्णन किस कथा में किया गया है?

(क) मन्थरककौलिक (ख) कौलिक मन्थर

(ग) चन्द्रभूपति (घ) मत्स्य मण्डुक

42) मन्थर–कौलिक कथा में यक्ष किस वृक्ष पर निवास करता था?

(क) आम के वृक्ष पर (ख) शीशम वृक्ष पर

(ग) वैर वृक्ष पर (घ) नींबू के वृक्ष पर

43) जुलाहे को किसने वरदान माँगने के लिए कहा?

(क) नाई ने (ख) यक्ष ने

(ग) वानर ने (घ) पत्नी ने

44) नाई ने जुलाहे को क्या माँगने की सलाह दी?

(क) धन (ख) मकान

(ग) राज्य (घ) पत्नी

45) जुलाहे ने यक्ष से क्या वरदान माँगा?

(क) पत्नी (ख) धन

(ग) राज्य (घ) दो हाथ, एक सिर

46) सत्तू से भरे घड़े का वर्णन किस कथा में किया गया है?

(क) सोमशर्मा–पितृकथा (ख) चन्द्रभूपतिकथा

(ग) मत्स्य–मण्डुक कथा (घ) मूर्खपण्डित कथा

47) सोमशर्मा–पितृकथा में ब्राहमण अपने पुत्र का नाम क्या रखना चाहता था?

(क) देव शर्मा (ख) सोहन शर्मा

(ग) सोम शर्मा (घ) सोमराज शर्मा

48) चन्द्रभूपति कथा में किस राजा का वर्णन किया गया है?

(क) चन्द्र (ख) सूर्य

(ग) उदयन (घ) दुष्यन्त

49) वानरों और भेड़ों का वर्णन मिलता है?

(क) चन्द्र भूपति कथा में (ख) रासभश्रृंगाल कथा में

(ग) विकाल वानर कथा में (घ) सोमषर्मापितृ कथा में

50) पशुचिकित्सकों ने धायल धोड़ो की चिकित्सा हेतु किसकी चर्बी माँगी?

(क) राक्षसो की (ख) मनुष्यों की

(ग) वानरों की (घ) भेड़ो की

51) वानर ने राजा के परिवार को किस के द्वारा मरवाया है?

(क) भेड़ों द्वारा (ख) राक्षस द्वारा

(ग) मनुष्यों द्वारा (घ) वानरों द्वारा

52) भद्रसेन नामक राजा का वर्णन किस कथा में मिलता हैं?

(क) चन्द्रभूपति कथा (ख) भारूण्डपक्षी कथा

(ग) रासभ श्रृंगाल कथा (घ) विकाल वानर कथा

53) भद्रसेन नामक राजा की कन्या का क्या नाम था?

(क) रत्नावली (ख) वासवदता

(ग) उषा (घ) षकुन्तला

54) विकाल नामक राक्षस किस का हरण करना चाहता था ?

(क) रत्नो देवी (ख) रत्नावली

(ग) भद्रसेन (घ) वासवदता

55) विकाल नामक राक्षस का मित्र कौन था ?

(क) राजा (ख) मन्त्री

(ग) वानर (घ) अश्व

56) मघुसेन नामक राजा का वर्णन मिलता है ?

(क) अन्धक–कुब्जक–त्रिस्तनी कन्या कथा में (ख) ब्राह्मण–कर्कट कथा में

(ग) भारूण्डी पक्षी कथा में (घ) विकालवानर कथा में

57) भारूण्डी पक्षी को समुद्र की लहरों द्वारा लाया हुआ क्या मिला ?

(क) रत्न (ख) स्वादिष्ट फल

(ग) शंख (घ) नारियल

58) ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण की कथा मिलती है ?

(क) मूर्ख पण्डित कथा में (ख) क्षपणक कथा में

(ग) ब्राह्मणी नेवले की कथा में (घ) ब्राह्मण कर्कट कथा में

59) ब्रह्मदत्त नामक ब्राह्मण यात्रा में किसे अपने साथ ले गया है ?

(क) माता को (ख) पिता को

(ग) केकड़े को (घ) बानर को

60) ब्रह्मदत्त की काले सॉप से किसने रक्षा की?

(क) कर्कट ने (ख) वानर ने

(ग) माता ने (घ) पिता ने

61) 'कुपुत्रोऽपि भवेत्पुंसा हदयानन्दकारकः' वाक्य मिलता है

(क) ब्राह्मणी नेवले की कथा में (ख) क्षपणक कथा में

(ग) मूर्ख पण्डित कथा में (घ) रासभश्रृगाल कथा में

62) 'अपरीक्षितकारकम' नामक तन्त्र किस ग्रन्थ का अंश है

(क) हितोपदेश (ख) पञ्चतन्त्रम्

(ग) वृहत्कथा (घ) कादम्बरी

63) मित्र भेद एवं मित्र लाभ नामक तन्त्र किस ग्रन्थ के अंश हैं?

(क) वृहत्कथा (ख) हितोपदेश

(ग) पञ्चतन्त्रम् (घ) होरातन्त्र

64) वृहत्कथासार के रचयिता हैं?

(क) नारायण पण्डित (ख) विष्णु शर्मा

(ग) दण्डी (घ) गुणाढ़्य

65) आचार्य विष्णुशर्मा ने राजा अमरशक्ति के मूर्ख पुत्रों को कितने महीनों में राजनीति शास्त्र में कुशल करने की प्रतिज्ञा की थी?

(क) 06 (ख) 08

(ग) 10 (घ) 12

(उत्तरमाला) (कथा साहित्य)

1	ख	21	क	41	क
2	ग	22	ग	42	ख
3	क	23	घ	43	ख
4	क	24	क	44	ग
5	घ	25	ख	45	घ
6	ग	26	ग	46	क
7	क	27	घ	47	ग
8	ख	28	क	48	क
9	ग	29	क	49	क
10	क	30	क	50	ग
11	ख	31	ख	51	ख
12	ख	32	क	52	घ
13	ख	33	क	53	क
14	घ	34	ख	54	ख
15	ख	35	घ	55	ग
16	घ	36	ग	56	क
17	क	37	क	57	ख
18	ग	38	ख	58	घ
19	ख	39	ख	59	ग
20	ग	40	ग	60	क
61	क	62	ख		
63	ग	64	घ		
65	क				

(संस्कृत–व्याकरण)

Objective Type Questions

Dr. Rajesh Sharma
Asstt. Prof. of Sanskrit
Govt. M.A.M, College Jammu

1) 'राम' शब्द है:–

(क) स्त्रीलिंड्.ग (ख) पुल्लिंग

(ग) संख्यावाची (घ) सर्वनाम

2) संस्कृत व्याकरण मे वचन है:–

(क) 01 (ख) 02

(ग) 03 (घ) 04

3) संस्कृत व्याकरण मे पुरूषों की संख्या है:–

(क) 03 (ख) 04

(ग) 02 (घ) 06

4) संस्कृत व्याकरण में लिंग है:–

(क) 01 (ख) 04

(ग) 02 (घ) 03

5) 'राम' शब्द की चुतर्थी विभक्ति के रूप हैः–

(क) रामाय, रामाभ्याम् रामेभ्यः (ख) रामाय रामात् रामयोः

(ग) रामाय रामेभ्यः रामाभ्याम्ः (ङ) रामः रामौः रामाः

6) 'राम' शब्द षष्ठी विभिक्ति बहुवचन में रूप हैंः–

(क) रामानाम् (ख) रामाभ्याम्

(ग) रामाणाम् (घ) रामस्य

7) 'राम' शब्द तृतीया विभक्ति एकवचन और बहुवचन के रूप हैः–

(क) रामेण, रामाभ्याम् (ख) रामेण, रामैः

(ग) रामेण, रामेभ्यः (घ) रामेण, रामान

8) हरि शब्द हैः–

(क) इकारान्त पुल्लिग (ख) ईकारान्त पुल्लिग

(ग) उकारान्त पुल्लिग (घ) तकारान्त पुल्लिग

9) हरि शब्द चतुर्थी विभक्ति एकवचन का रूप हैः–

(क) हरिणा (ख) हरेः

(ग) हरये (घ) हरेय

10) हरि शब्द सप्तमी विभक्ति के रूप हैंः–

(क) हरौ, हरयोः, हरिसु (ख) हरौ हर्योः हरिसु

(ग) हरौ, हरि, हरीणाम् (घ) हरौ, हर्योः, हरिषु

11) गुरू शब्द हैः–

(क) ऋकारान्त पुल्लिग (ख) उकारान्त पुल्लिंग

(ग) आकारान्त पुल्लिंग (घ) इकारान्त पुल्लिंग

12) गुरू शब्द प्रथमा विभक्ति एकवचन और बहुवचन के रुप हैः–

(क) गुरुः, गुरवः (ख) गुरुः, गुरु

(ग) गुरुः, गुरुन् (घ) गुरुः, गुरुभ्यः

13) गुरू शब्द चतुर्थी विभक्ति द्विवचन का रुप हैः–

(क) गुरुभ्यम् (ख) गुर्वोः

(ग) गुरूभ्याम् (घ) गुरूभ्यः

14) पितृ (पिता) शब्द हैः–

(क) ऋकारान्त पुल्लिंग (ख) उकारान्त पुल्लिंग

(ग) अकारान्त पुल्लिंग (घ) इकारान्त पुल्लिंग

15) पितृ और हरि शब्द चुतर्थी एकवचन के रूप हैः–

(क) पित्रा/हरये (ख) पितरम्/हरिम्

(ग) पित्रे/हरये (घ) पित्रे/हरिभ्यः

16) लता एवं नदी शब्द हैः–

(क) पुल्लिंग (ख) स्त्रीलिंग

(ग) नपुसंकलिंग (घ) संख्यावाची

17) लता शब्द षष्ठी विभक्ति के रुप हैः–

(क) लतायाः, लतयोः, लताणाम् (ख) लतायाः लतया लतासु

(ग) लतायाः, लता, लतासु (घ) लतायाः, लतयोः, लतानाम्

18) मति (बुद्धि) शब्द सप्तमी बहुवचन का रुप हैः–

(क) मतिषु (ख) मतसु

(ग) मतिसु (घ) मतीषु

19) नदी शब्द द्वितीया विभक्ति के रूप हैः—

(क) नदी, नद्यौः, नद्यः (ख) नदीम्, नद्यौ, नदीः

(ग) नदीम्, नदौ, नदीः (श) नदीम, नद्यौ, नदीसु

20) धेनु (गाय) शब्द तृतीया का एकवचन का रुप हैः—

(क) धेन्वा (ख) धेन्वः

(ग) धेनम् (घ) धेन्वैः

21) मातृ (माता) शब्द षष्ठी विभक्ति के द्विवचन एवं बहुवचन के रुप हैः—

(क) मात्रोः मातृणाम (ख) मात्रोः मातृषु

(ग) मात्रोः, मातृणाम् (घ) मात्रोः मातृभ्यः

22) फल, वारि और मधु शब्द हैः—

(क) पुल्लिंग (ख) सर्वनाम्

(ग) स्त्रीलिंग (घ) नपुंसकलिंग

23) फल शब्द प्रथमा विभक्ति के रूप हैः—

(क) फलम्, फले, फलानि (ख) फलम फले फलैः

(ग) फलम् फले फलेषु (घ) हे फल, हे फले, हे फलानि

24) वारि (जल) शब्द षष्ठी एकवचन और बहुवचन के रुप हैंः—

(क) वारि, वारिणी (ख) वारिणः, वारीणाम्

(ग) वारिणः, वारिणो (घ) वारिणः, वारिषु

25) मधु शब्द प्रथमा द्विवचन का रुप हैः—

(क) मधुनि (ख) मधु

(ग) मधुनी (घ) मधूनि

26) राजसु रुप हैंः–

(क) राज शब्द का (ख) राजन् शब्द का

(ग) नृप शब्द का (घ) राम शब्द का

27) विद्वस् (विद्वान) शब्द सप्तमी एकवचन मे रुप हैः–

(क) विदुषि (ख) विदुषः

(ग) विदुसि (घ) विद्वत्सु

28) सरित और मनस शब्द के चतुर्थी एकवचन के रुप हैंः–

(क) सरिते / मनसः (ख) सरिते / मनसे

(ग) सरिते / मनसी (घ) सरितः / मनसाम्

29) अस्मद् और युष्मद् षब्द हैंः–

(क) संख्यावाची शब्द (ख) नपुसंकलिंग शब्द

(ग) पुल्लिंग शब्द (घ) सर्वनाम् शब्द

30) तद् शब्द कितने लिंगो में चलता हैंः–

(क) 02 (ख) 01

(ग) 03 (घ) 04

31) तद् शब्द नपुंसकलिंग प्रथमा विभक्ति के रुप हैंः–

(क) तत्, ते, तानि (ख) तत्, ते, तानी

(ग) तत्, ताभिः, ताभ्यः (घ) सः, तौ, ते

32) 'अहम्' हैः–

(क) प्रथम पुरुष (ख) मध्यम पुरुष

(ग) उत्तम पुरुष (घ) अन्य पुरुष

33) अस्मद और युष्मद के चतुर्थी एकवचन के रूप हैः–

(क) मत / त्वत् (ख) मह्यम् / तुभ्यम्

(ग) अहं / त्वम् (घ) मत् / त्वत्

34) 'युष्माकम्' किस शब्द का किस विभक्ति का रुप हैः–

(क) युष्मद् शब्द, पष्ठी वहुवचन (ख) युष्मद् शब्द षष्ठी एकवचन

(ग) युष्मद् शब्द, चतुर्थी एकवचन (घ) युष्मद् शब्द प्रथमा द्विवचन

35) संस्कृत की सम्पूर्ण धातुओं की कितने गणों में बाँटा गया हैः–

(क) 05 (ख) 08

(ग) 02 (घ) 10

36) संस्कृत व्याकरण में लकारों की संख्या हैः–

(क) 05 (ख) 08

(ग) 02 (घ) 10

37) परस्मैपद / आत्मनेपद में लकारों की संख्या हैः–

(क) 5 / 5 (ख) 2 / 2

(ग) 10 / 10 (घ) 6 / 6

38) वर्तमान काल के लिए लकार हैः–

(क) लृट् लकार (ख) लृट् लकार

(ग) विधिलिंग लकार (घ) लड्. लकार

39) भूतकाल एवं भविष्यत् काल के लिए कौन से लकार का प्रयोग होता हैः–

(क) लड्. / लट् (ख) लृट् / लोट्

(ग) लड्. / लृट् (घ) विधिलिंग / लृट्

40) भू धातु के लट् लकार मध्यम पुरुष एकवचन का रुप हैः–

(क) भवति (ख) भवामि

(ग) भवतः (घ) भवसि

41) पठति, पठतः, पठन्ति ये रुप हैः–

(क) लट् लकार प्रथम पुरुष के (ख) लृट् लकार प्र॰ पु॰ के

(ग) लट् लकार मध्यम पु॰ के (घ) लोट लकार प्र॰ पु॰ के

42) गमिष्यामि ये रुप हैः–

(क) पठ् धातु का (ख) गच्छ धातु का

(ग) भू धातु का (घ) भक्ष् धातु का

43) स्था (तिष्ठ) धातु लङ् लकार प्र॰ पु॰ एकवचन का रुप हैं :–

(क) तिष्ठति (ख) स्थास्यति

(ग) अतिष्ठत् (घ) तिष्ठतु

44) हन् धातु लट् लकार प्र॰ पु॰ का रुप हैं :–

(क) हन्ति (ख) हन्तु

(ग) हन्सि (घ) हन्मि

45) दास्यति, दास्यतः दास्यन्ति ये रुप हैं :–

(क) लृट् लकार प्र॰ पु॰ के (ख) लोट् लकार प्र॰ पु॰ के

(ग) लट् लकार प्र॰ पु॰ के (घ) लङ् लकार प्र॰ पु॰ के

46) दिव् धातु का अर्थ हैं :–

(क) देखना (ख) रोना

(ग) मारना (घ) चमकना

47) 'नर्तिष्यति' ये रुप हैं :–

(क) नृत् धातु लट् लकार (ख) नृत् धातु लृट् लकार

(ग) नृत धातु लङ् लकार (घ) दिव् धातु लृट् लकार

48) 'चुर्' धातु, लट् लकार, उ॰ पु॰ बहुवचन का रुप हैं :–

(क) चोरयामः (ख) चोरयति

(ग) चोरयामि (घ) चोरयसि

49) कथ् एवं भक्ष् धातु का अर्थ हैं :–

(क) कहना/रवाना (ख) रोना/पढना

(ग) करना/भक्ष (घ) कहना/बोलना

50) भक्ष् धातु लट् लकार प्र॰ पु॰ एकवचन का रुप हैं :–

(क) भक्षयसि (ख) भक्षयतः

(ग) भक्षयामि (घ) भक्षयति

51) शिव (माहेश्वर) सूत्रों की संख्या हैं :–

(क) 36 (ख) 14

(ग) 42 (घ) 13

52) प्रत्याहार कितने हैं :–

(क) 52 (ख) 36

(ग) 42 (घ) 14

53) 'इत्संज्ञा' किस सूत्र से होती हैं :–

(क) हलन्त्यम् (ख) सुप्तिङन्तं पदम्

(ग) तस्य लोपः (घ) अदर्शनम् लोपः

54) उदात्त संज्ञा किस सूत्र से होती है?

(क) समाहार स्वरित (ख) उच्चैरुदात

(ग) तस्य लोपः (घ) हलन्त्यम्

55) अनुदात्त संज्ञा विद्यायक सूत्र है?

(क) उच्चैरुदात्तः (ख) हलन्त्यम्

(ग) नीचैरनुदात्तः (घ) अदर्शनम् लोपः

56) सवर्ण संज्ञा होती है?

(क) तुल्यास्य प्रयत्नं सवर्णम् (ख) परं सन्निकर्षः संहिता

(ग) तस्य लोपः (घ) सुप्तिङ्.न्तं पदम्

57) सुबन्त और तिङ्.न्त की पद संज्ञा होती है?

(क) हलन्त्यम (ख) अदर्षनम लोपः

(ग) उच्चैरुदात्तः (घ) सुप्तिङ्.न्तं पदम्

58) उदात्त और अनुदात्त दोनों गुणो का सम्मिश्रण किस सूत्र से होता है?

(क) नीचैरनुदात्तः (ख) समाहारः स्वरित

(ग) उच्चैरुदात्तः (घ) मुरवनासिकावचनो

59) 'वह जाता है' की संस्कृत है?

(क) सः गच्छति (ख) त्वम् गच्छसि

(ग) सः गच्छसि (घ) अहं गच्छामि

60) सम्प्रदान कारक के लिए कौन से चिह्न का प्रयोग किया जाता है?

(क) को (ख) ने

(ग) के लिए (घ) का, के, की

61) मे, पर चिह्न किस कारक के लिए प्रयोग किया जाता है?

(क) सम्बोधन (ख) कर्म

(ग) कर्ता (घ) अधिकरण

62) 'अश्वः चरति है?

(क) एकवचन (ख) द्विवचन

(ग) बहुवचन (घ) इनमे से कोई नहीं

63) 'अहं धावामि' हैः—

(क) प्रथम पुरुष (ख) उत्तम पुरुष

(ग) मध्यम पुरुष (घ) अन्य पुरुष

64) वृक्ष से पत्ते गिरते हैं (संस्कृत अनुवाद) करें :—

(क) वृक्षात् पत्राणि पतन्ति (ख) वृक्षात् पत्रम् पतन्ति

(ग) वृक्षम् पत्रम् पतति (घ) वृक्षात् पतति

65) संस्कृत परम्परा मे सन्धियाँ कितने प्रकार की मानी हैं :—

(क) 01 (ख) 02

(ग) 03 (घ) 04

66) दीर्ध सन्धि किस सूत्र से होती हैं?

(क) अकः सवर्णे दीर्धः (ख) अदेङ्. गुणः

(ग) वृद्धिरादैच (घ) वृद्धिरेचि

67) हिम + आलयः में सन्धि हैं?

(क) गुण सन्धि (ख) दीर्ध सन्धि

(ग) यण् सन्धि (घ) वृद्धि सन्धि

68) विद्यार्थी का सन्धि विच्छेद करें :–

(क) विद्य + अर्थी (ख) विद्या + आलयः

(ग) विद्या + अर्थि (घ) विद्या + अर्थी

69) गुण सन्धि किस सूत्र से होती है? :–

(क) अदेङ् गुणः (ख) वृद्विरेचि

(ग) इको यणचि (घ) वृद्धिरादैच्

70) वृद्धिरौदच् सूत्र से कौन सी सन्धि होती है? :–

(क) गुण सन्धि (ख) यण् सन्धि

(ग) दीर्ध सन्धि (घ) वृद्धि सन्धि

71) शयनम् का सन्धि–विच्छेद है? :–

(क) शय + नम् (ख) शे + अनम्

(ग) शेय + अनम् (घ) शय + अनम्

72) अयादि सन्धि किस सूत्र से होती है? :–

(क) एचोऽयवायावः (ख) अदेङ् गुणः

(ग) इकोयणचि (घ) सुप्तिङ.न्तं पदम्

73) वागीशः का सन्धि विच्छेद है? :–

(क) वाग + ईशः (ख) वाक् + ईशः

(ग) वाक + गीशः (घ) वाग + शः

74) संस्कृतम् (सम् + कृतम्) मे कौन सी सन्धि है? :–

(क) स्वर (ख) व्यञ्जन

(ग) विसर्ग (घ) कोई नहीं

75) जगत् + ईशः = जगदीषः में कौन सी सन्धि है? :–

(क) व्यञ्जन सन्धि (ख) स्वर सन्धि

(ग) विसर्ग सन्धि (घ) गुण सन्धि

(उत्तरमाला)

संस्कृत व्याकरण

1	ख	21	ग	41	क
2	ग	22	ऽ	42	ख
3	क	23	क	43	ग
4	घ	24	ख	44	क
5	क	25	ग	45	क
6	ग	26	ख	46	घ
7	ख	27	क	47	ख
8	क	28	ख	48	क
9	ग	29	घ	49	क
10	घ	30	ग	50	घ
11	ख	31	क	51	ख
12	क	32	ग	52	ग
13	ग	33	ख	53	क
14	क	34	क	54	ख

15	ग	35	ग	55	ग
16	ख	36	घ	56	क
17	घ	37	क	57	घ
18	क	38	ख	58	ख
19	ख	39	ग	59	क
20	क	40	घ	60	ग
61	घ	62	क	63	ख
64	क	65	ग	66	क
67	ख	68	घ	69	क
70	घ	71	ख	72	क
73	ख	74	ग	75	क

सारांश :–

इन वस्तुनिष्ठ प्रश्नों के अतिरिक्त अन्य भी बहुविकल्पीय प्रश्न पाठ्यक्रम से सम्बन्धित प्रश्न पत्रों में पूछे जा सकते हैं। जहाँ जो प्रश्नमाला दी गई है, छात्र–छात्राएँ उनसे प्रेरणा लेकर पाठ्यक्रम से सम्बद्ध और भी प्रश्नों एवं उनके उत्तरों की जानकारी प्राप्त करके अपनी बौद्धिक क्षमता को बढ़ा सकते हैं।

✠✠✠✠✠✠✠